Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

AYURVED VIJNAN
1958 G. K. U.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Samaj Foundation Chen

ain. Gurukul Kangri C

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

079408

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

COMPILE

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

COMPILED

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ५ पौष सम्वत २०१४ संख्या १

जनवरी १९५८

२६

आयुर्वेद-विज्ञान

चिकित्सा संसार में क्रान्ति लाने वाला मुख्य वैज्ञानिक पत्र

AYURVED-VIJNAN

The Leading Hindi Journal Explaining The Ayurvedic System on Scientific Lines

सम्पादक
स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

079408

विषय-सूची

१. नाडी ज्ञान विवेचन १
२. शरीर की क्षाराम्ल व्यवस्था और स्वास्थ्य ६
३. शरीरस्थ वस्तु में ओज कौन सी वस्तु है ? १४
४. शक्तिशाली ओज का आविष्कार ... ...

079408

प्रकाशक—
स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य, आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय, २२ फैज़ बाज़ार, देहली ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मुद्रक—बदलिया प्रिंटिंग प्रेस, दाईवाड़ा नई सड़क, दिल्ली

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम

१—आयुर्वेद-विज्ञान प्रत्येक अंग्रेजी मास की १ तारीख को प्रकाशित होता रहेगा।

२—डाक-व्यय सहित इसका मूल्य ३) वार्षिक, एक प्रति का मूल्य ।-) होगा।

३—पत्र मंगाने वालों को अपना पता साफ २ अक्षरों में लिखना चाहिये।

४—जिन व्यक्तियों के पास उस मास की ५ ता० तक पत्र न पहुंचे उन्हें इसकी सूचना देनी चाहिये।

५—यदि एक-दो मास के लिये पता बदलवाना हो तो उसका प्रबन्ध स्वयम् डाकखाने से कर लेना चाहिये। अधिक समय के लिये पता बदलवाना हो तो फिर हमें सूचित करना चाहिये।

६—पत्र व्यवहार करते समय ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये। अन्यथा उत्तर नहीं दिया जावेगा।

७—पत्र व मूल्य सम्बन्धी पत्र-व्यवहार मैनेजर आयुर्वेद विज्ञान के नाम से और लेख, समालोचनादि व पुस्तकादि सम्पादक के नाम से भेजना चाहिये।

८—कोई भी पत्र, पुस्तक समालोचना के लिये भेजी जाय उनकी दो प्रति भेजनी चाहिये।

९—आयुर्वेद विषयक वैज्ञानिक गवेषणापूर्ण लेखों को पत्र में सर्व-प्रथम स्थान दिया जायेगा और श्रेष्ठ सचित्र लेखकों को पुरस्कृत भी किया जायगा।

१०—वृथा के आडम्बर पूर्ण पृष्ठ-पोषक लेखों के लिये इसमें स्थान नहीं मिलेगा। किसी भी लेख को घटाने, बढ़ाने व प्रकाशित करने, न करने का सम्पादक को पूर्ण अधिकार होगा।

११—जो लेख भेजे जायें, कागज पर एक तरफ हाशिया छोड़ कर लिखे होने चाहिये।

१२—उत्तम २ अलभ्य आयुर्वेद साहित्य सम्बन्धी चित्र लेख व वनस्पतियों आदि को जो सुरक्षित भेजेंगे उनको सपारिश्रमिक मार्ग व्यय आदि सब आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय से दिया जायेगा।

१३—आयुर्वेद शास्त्र सम्बन्धी प्रश्नों को छोड़ कर किसी परामर्श सम्बन्धी या किसी रोगी के लिये रोग-सम्बन्धी प्रश्नों पर प्रति प्रश्न के लिये आयुर्वेद-विज्ञान के ग्राहक आठ आना, जो ग्राहक नहीं वह प्रति प्रश्न एक रुपये का टिकट प्रश्न के साथ भेजेंगे तभी उनके प्रश्न और उत्तर छापे जायेंगे।

विज्ञापन छापने के नियम

१—किसी भी विज्ञापन छापने वाले या बन्द करने वाले को पत्र प्रकाशन से १५ दिन पूर्व सूचना देनी चाहिये।

२—अश्लील सभ्यता के विरुद्ध विज्ञापन नहीं लिये जायेंगे।

३—कोई भी विज्ञापन जनता को धोखा देने वाला सिद्ध होने पर उसका प्रकाशन बन्द कर दिया जायगा और जब तक वह सन्तोषप्रद प्रमाण व देगा जो मूल्य आ चुका है वापस नहीं दिया जायगा।

४—विज्ञापन का मूल्य सर्वथा प्रथम लिया जायगा।

५—आधे कालम से कम विज्ञापन दाताओं को आयुर्वेद विज्ञान बिना मूल्य नहीं दिया जायगा।

६—एक वर्ष के लियें विज्ञापन देने वाले को =) रुपया कमीशन काट दिया जायगा।

विज्ञापन के दर

७—१ पृष्ठ यानी २ कालम की प्रतिबार की छपाई ४०)

आधा पृष्ठ " १	"	"	"	२४)
चौथाई ,, १।२	"	"	"	१६)
टाईटल के पीछे के पृष्ठ की			"	५०)
" तीसरे " की			"	४५)
" चौथ " की			"	६०)

८—ट्रेड डायरैक्टरी में विषय वार विज्ञापन प्रति ३) रु० के हिसाब से लिया जावेगा।

मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेद-विज्ञान

आयुर्विदेव वितते किल शास्त्र जाते पुम्भिः प्रयत्नपरकैर्भवतीह लभ्यम् ।
शक्तिं शिवं च जनता यदि कांक्षतीयम् विज्ञानमेव भजतां सततं विशेषम् ।।

वर्ष ५ | पौष २०१४ वि०, जनवरी १९५८ ई० | अंक १

नाडी-ज्ञान-विवेचन

(२)

हम पिछले लेख में प्रमाणों से यह दर्शा चुके हैं कि नाडी परीक्षा के आविष्कारक वैद्य नहीं थे, प्रत्युत नन्दी, रावण, वृषभराज आदि सिद्ध सम्प्रदाय के चिकित्सक थे और इसका आविष्कार भी उस समय हुआ जब सिद्ध सम्प्रदाय की चिकित्सा में आयुर्वेद और आयुर्वेद की चिकित्सा में रस चिकित्सा का प्रवेश हो चुका था। वे सिद्ध सम्प्रदायी चिकित्सक आयुर्वेद के मूल सिद्धान्त त्रिदोष-वाद को व्यवहारिक रूप में अपना चुके थे, तभी तो इसके आविष्कारकों ने नाडी की गति के तारतम्य में तीन दोषों के स्थानों की कल्पना की और वात, पित्त, कफ उन्हें नाड़ी की गति में भासमान् हुए ।

एक बात इसमें महत्व की यह थी कि उस समय तक व्याधियों के कारण को समझने के लिये सिद्ध सम्प्रदाय के पास अपना कोई सिद्धान्त नहीं था, क्योंकि चिकित्सा क्षेत्र में तो सिद्धों की पहुँच रस, भस्मों के आविष्कार से हुई थी, वे शरीर-रचना-सम्बन्धी ज्ञान, निदान और निघण्टु ज्ञान में बिलकुल कोरे थे। किन्तु नाडी आविष्कार के सम्बन्ध में प्रतीत कुछ ऐसा होता है नन्दी नामा आचार्य को किसी मनुष्य की मृत्यु घटना के समय धमनी का क्षीण होना दिखाई दिया और उसके बाद नाडी स्पन्दन बन्द हो गये । इसका अनुभव उसने जब जब अवसर आया किया, तभी तो उसने नाडी की गति के क्षीण होते होते मृत्यु के आगमन को देख नाडी से जीवन का सम्बन्ध अवश्य है ऐसा उसे भासमान हुआ । तभी उसने नाडी देखने की ओर ध्यान दिया और अंगुष्ठ मूल धमनी को जीव नाड़ी की संज्ञा दी अर्थात् उसे जीवन की स्थिति को बताने वाली माना । हो सकता है उन्हीं समयों में उसने रोगियों की नाडी पर भी हाथ रखकर शरीर की रोगावस्था को जांचने का प्रयत्न किया हो तो कोई आश्चर्य नहीं ।

यह ठीक है, कई व्याधियों में नाडी के स्पन्दन में लघुता, लम्वता, क्षीणता, अवरुद्ध गतिमानता देखी जाती है, इस स्पन्दन गति विभेद ने उसे अनुभव कराया हो कि इस जीव-नाडी से स्वास्थ्य और रोगों का सम्बन्ध अवश्य है । इसी ज्ञान के आधार पर इसने आगे उन्नति की हो तो आश्चर्य नहीं । आगे चलकर किसी ऐसे विद्वान् ने इस पर विचारा हो—जो आयुर्वेदज्ञ भी हो—उसने नाडी की गति से दोषों का सम्बन्ध मिलाने की चेष्टा की हो और उसे मार्ग सूझा हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो आश्चर्य नहीं। यद्यपि इस आविष्कार काल की स्थिति का हमें कोई लिखित प्रमाण नहीं मिलता, तथापि रावण, वृशभराज आदि सिद्ध सम्प्रदाय के आचार्यों द्वारा नाडी परीक्षा की श्लोक बद्ध व्याख्या जो त्रिदोष समन्वित पाई जाती हैं वह उक्त अनुमान की पुष्टि में सहायक है। इस बात को समस्त इतिहास वेत्ता मानते हैं कि सिद्ध सम्प्रदाय ही रस चिकित्सा पद्धति का आविष्कारक था। उसे शरीर रचना का ज्ञान, रोग निदान और औषध-गुण-धर्म ज्ञान कुछ नहीं था। यह तीनों विषय उसने अपने ग्रन्थों में कहीं से लेकर दिये हैं तो वह एक मात्र आयुर्वेद से ही लेकर दिये हैं, क्योंकि भारत में उस समय आयुर्वेद ही एक ऐसा शास्त्र था जो शरीर-रचना, निदान, निघण्टु में अधिक से अधिक पूर्ण था। इसीलिए सिद्ध सम्प्रदाय के आचार्यों ने जब रसों, भस्मों का शरीर पर उपयोग किया तो शरीर-रचना,रोग निदान के लिये जब जब उन्हें आवश्यकता दिखाई दी उन्होंने बिना ननुनच के आयुर्वेद की ही व्याख्याओं को यथावत् स्वीकार कर लिया। बसवराजीय, बृहद योगतरंगिणी आदि सिद्ध सम्प्रदाय के ग्रन्थ भी इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि रस चिकित्सा से भिन्न अन्य बातों के लिये सिद्ध सम्प्रदाय के आचार्यों ने आयुर्वेद ग्रन्थों को ही आधार मान लिया था। जब सिद्ध सम्प्रदायी चिकित्सकों ने त्रिदोष-वाद को यथावत् स्वीकार कर लिया तो इस सिद्धान्त का नाडी की तारतम्य गति से सम्बन्ध बाँधना मात्र ही बाकी था, जिसे नन्दी, रावण वसवराजीय आदि सिद्ध सम्प्रदाय के आचार्यों ने बड़ी उत्तमता से बांध दिया।

नाडी ज्ञान का प्रचार वैद्यों में कैसे हुआ ?:—

सिद्ध सम्प्रदायी साधू, सन्त प्रायः घुमन्त ही होते थे और उस समय के वे सिद्ध अनेक सिद्धियां भी जानते थे, टोना-टोटका, झाड़-फूंक भी खूब करते थे रसायन विद्या के तो वह ठरकी ही होते थे, यह बातें हम भस्म-विज्ञान के उपोद्घात में सप्रमाण सिद्ध कर चुके हैं। हो सकता है कुछ साधुओं को भूत-सिद्धि, यक्षणी सिद्धि भी प्राप्त हो जिसके बल पर वह भूतवक्ता, पर-मन-बोधी बन सके हों तो क्या आश्चर्य, क्योंकि उक्त सम्प्रदाय के ऐसे सिद्ध अब भी कहीं कहीं देखने को मिलते है। ऐसे सिद्ध रस चिकित्सक जब नाडी द्वारा व्यतीत काल की घटना को सही सही बताने वाले देखे गये, कइयों ने नाडी पकड़ कर व्यतीत काल की बातें जब ठीक ठीक बताईं तो उनके इस ज्ञान को देखकर आयुर्वेदज्ञ उससे प्रभावित हुए।

यह तो निश्चय है कि इन घुमन्तु सिद्ध सम्प्रदाय के साधुओं का ही प्रभाव आयुर्वेदज्ञों पर पड़ा और जिस तरह उन्होंने इनसे रस-चिकित्सा सीख कर अपनाई उसी तरह नाडी परीक्षा भी इन्हीं लोगों से सीख कर अपनाई। क्योंकि इतिहास का गहन अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि आयुर्वेदज्ञों में नाडी-परीक्षा का ज्ञान आज से एक सहस्र वर्ष पूर्व तक नहीं था। ९ वीं शताब्दी में वाग्भट हुए १० वीं में वृन्द ११ वीं के अन्त में चक्रपाणि इनके समय तक आयुर्वेद में नाडी ज्ञान का प्रवेश नहीं हो पाया था। हां! चक्रपाणि के समय रस चिकित्सा का अवश्य ही आयुर्वेद में प्रवेश हो गया था जिसका प्रमाण स्वयम् चक्रदत्त में विद्यमान है। शार्ङ्गधर के समय तो नाडी-परीक्षा आयुर्वेद निदान का एक भाग बन गई थी और आज का वैद्य समाज तो नाडी-परीक्षा का इतना समर्थक है मानो यह कोई आर्ष विज्ञान हो।

नाडी-परीक्षा विषय पर विचार के लिये जो क्षेत्र मेरे द्वारा वैद्य समाज के सामने लाया जा रहा है इस विषय पर शायद ही कोई वैद्य हो जिसने विचार करने का कभी श्रम उठाया हो, अब वैद्यों में ढूंढ खोज की प्रवृत्ति नहीं रही। न कभी वस्तु स्थिति तक पहुँचने का वह प्रयत्न ही करते हैं, वह तो जिस रूढि के भक्त हैं उसी की आराधना में सदा लगे रहते हैं, इसीलिये उन्नति के पथ से बहुत दूर रहते हैं। आज ६–७ सौ वर्षों से वैद्य नाडी परीक्षा करते आ रहे हैं और जिस नाडी पर त्रिअंगुल को टिका कर त्रिदोष का निश्चय करते हैं उस नाडी में स्पन्दन का प्रवाह कहां से आता है? और इस स्पन्दन गति का दाता शरीर का कौन सा अंग है? इसको वह आज तक सही रूप में नहीं जान पाये। यही नहीं, जिन आचार्यों ने नाडी परीक्षा का आविष्कार किया था उन्हें स्वयम् ही इस बात का सही ज्ञान नहीं था कि नाडी में जो स्पन्दन होते रहते हैं वह किन कारणों से होते रहते हैं। नाडी शब्द का प्रयोग जिन्होंने आरम्भ में किया था उन्होंने इस बात को तो समझा था कि वह अन्दर से पोली है, पोली होने के कारण ही इसे नाडी संज्ञा दी। यही नहीं प्राकृत भाषा में नाली जिसे कहते हैं संस्कृत में उसी का सुसंस्कृत रूप नाडी है यथा:—डलयोरेकत्व—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्मरणात्" नड इति माधवीया धातु वृत्तौ। तेन नाली शब्देन व्यपदिश्यते। राज निघण्टुकार ने भी नाली का अर्थ नाडी ही दिया है और उसका पर्याय धमनी माना है। नन्दी, रावण आदि आचार्यों ने भी नाडी का पर्याय धमनी स्वीकार किया है यथा:—धमनी जीव साक्षिणी। आयुर्वेदाचार्यों ने धमनी को निम्न रूप में सिद्ध किया है यथा धमध्माने धातु से उणादि में अनिप्रत्यय होकर धमनी शब्द बना है। अमरकोषकार और राज निघण्टुकार ने—"नाडी तुधमनी सिरा" कह कर इन तीनों को एकार्थवाची माना है अर्थात यह शब्द एक दूसरे के पर्याय वाची हैं। "सरणात् सिरा" चरक। द्रव के उसमें बहने से इसकी सिरा संज्ञा दी गई। यह सब आयुर्वेद की व्याख्या थी जिससे नाडी ज्ञानियों का कोई प्रयोजन नहीं था उनका तो इस नाडी ज्ञान में एक ही उद्देश्य था।

तच्चेष्टया सुखं दुःखं ज्ञेयंकायस्य पण्डितैः।

नाड़ी की गति से मनुष्य के सुख दुःख का ज्ञान प्राप्त करें, वे वस्तु स्थिति को समझे बिना इस ओर झुक गये। परन्तु क्या वे इस नाडी परीक्षा द्वारा रोग विनिश्चय में सफल हुए? ऐसा देखा नहीं जाता, सिद्धि और चीज है जिसकी सहायता से भूतवक्ता बनकर यह चाहे अपने को नाडी तत्व दर्शी कहने लगे हों, किन्तु नाडी ज्ञान वह शरीरान्तर्गत गहन ज्ञान है जिसके स्पन्दन से शरीरस्थ रोग की स्थिति को समझना होता है, जिसका आधार कुछ और ही है। जिस नाडी को हम अपनी अंगुलियों से दबाकर उसके स्पन्दन से वात पित कफ वृद्धि का अनुमान करते हैं क्या वास्तव में यह हमारा अनुमान किसी तथ्य पर आधारित है? आइये! इस पर जरा शान्तचित्त हो विचार करें। आप ऊपर देख चुके हैं कि नाडी परीक्षा का उद्गम आयुर्वेद द्वारा नहीं हुआ पर वैद्यों ने इसे रस चिकित्सावत् अपना लिया था इसीलिये यह आयुर्वेद का अंग बन गई। आयुर्वेद का अंग बन जाने पर भी आयुर्वेद शरीर वर्णन में इसको फिर भी स्थान नहीं मिला क्योंकि वृद्धत्रयी के समय में नाडी शब्द का यत्किंचित् प्रयोग पाया जाता है, दूसरे जहां कहीं हुआ भी है वहां सिरा के अर्थ में हुआ है, जीवसाक्षिणी के अर्थ में नहीं और इन सिरा, धमनियों का उद्गम हृदय नहीं था। प्रत्युत नाभि स्थान. था। यथा—पक्वाशयोर्मध्ये सिरा प्रभवा नाभिर्नाम मर्म। सु० शा० अ० ६।२६।

यावत्तु सिरा काये सम्भवन्ति शरीरीणाम्।
नाभ्यां सर्वानिबद्धास्ताः प्रतवन्ति समन्ततः॥
सिराभिरावृता नाभिश्चक्र नाभिरिवारकैः।
सु० शा० अ० ७-४-५

शरीर में ७०० सिरायें हैं वह नाभि से निकलती हैं और पहिये के आरेवत् सारे शरीर में फैल गई हैं। धमनी भी इसी सिरा का पर्याय है यथा:—सिरा विकार एवं धमनी। धमन्यश्चनाभिजाःतत्र संख्या चतुर्विश। रा. नि.। सुश्रुत शरीर के ९ अध्याय में कहा है वात, पित्त, कफ, रक्त और रस को बहाने वाली दो दो धमनियां हैं। इन्हीं आर्ष ग्रन्थों के आधार पर आगे कहा है:—

सिरा धमन्योर्नाभिस्थाः सर्वा व्याप्यतनुस्थिताः।
शार्ङ्गधर ५।५।४३

सिरा, धमनियां सब नाभि से निकल कर शरीर में व्याप्त हुई हैं और इन धमनियों का सम्बन्ध हृदय से निम्न रूप में है यथा:—तच्च हृदयस्थानं हृदयाच्चतुर्विंशति धमनी रनु प्रविश्य उर्ध्वंगा दश दश अधोगामिन्यश्च तस्त्रस्तिर्यंगाः। तत्र रस गतोधातुः। अहरहर्गच्छतीत्यो रसः। सु० शा० शोणिताध्याय। रस का स्थान हृदय है, वह रस हृदय से निकलकर २४ धमनियों में प्रवेश कर बहता है। क्योंकि शरीर में रस ही निरन्तर घूमता रहता है। चरक जी भी ऐसा ही मानते थे। यथा—रस वहानांस्त्रोतसां हृदय मूलंदश धमन्यः। च०चि० ५। रस बहाने वाले स्रोत जो धमनी नाम से कहे गये हैं जिनका मूल हृदय है वह स्रोत दस हैं। इन प्रमाणों से सिद्ध है नाडी शब्द का आर्ष ग्रन्थों में जहाँ प्रयोग हुआ है वह सिरा धमनी के रूप में हुआ है, स्पन्दन अर्थ में इसको देखने के निमित्त कहीं नहीं हुआ। दूसरे इस शास्त्र सम्मत पक्ष पर विश्वास करने वाला वैद्य समाज यह सही रूप में नहीं जान सकता कि हृदय से धमनी, सिरा का सम्बन्ध किस तरह से है और हृदय में से होकर रक्त बहता है या रस तथा हृदय की गति से धमनी स्पन्दन का क्या सम्बन्ध है। इसे भी वह ठीक ठीक नहीं जान सकता। वास्तव में १६ वीं शताब्दी से पूर्व तक आयुर्वेदज्ञ ही क्या संसार के कोई भी चिकित्सक इस बात को नहीं जान पाये थे कि नाडी में स्पन्दन का सम्बन्ध हृदय की गति से है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निदानार्थ हम जिस नाडी का उपयोग करते है उस नाडी की गति के कारण को जब हम सही तौर पर नहीं जानते तो उस नाडी की गति से रोगों की स्थिति को समझ लेते हैं क्या ऐसा हमारा कथन केवल बिडम्बना नहीं है?

यदि ज्योतिष के फलादेश समूहों में से किसी ग्रह के मिश्रित कुछ फलादेश किसी व्यक्ति के जीवन घटना में मिल जाने पर जिस तरह ज्योतिषी अपने फलादेश की सत्यता का समर्थन करते हैं ठीक इसी तरह नाडी पकड़ कर दोषों के फला देशों में से कुछ के मिल जाने पर यह कहना कि नाडी देखकर मुझे इस रोग का ज्ञान हो गया क्या रोगी पर कोरा प्रभाव डालना नहीं है?

तब क्या नाडी देखना निरर्थक है? ऐसी बात अब नहीं है, आधुनिक शरीर ज्ञान सम्पन्न स्थिति को समझकर हृदय और नाडी के परस्पर सम्बन्ध को जानकर यदि नाडी को देखा जाय तो बहुत से रोगों का उसके द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, किन्तु पिछली परिपाटी के क्रम से देखना तो अंधेरे में वस्तुएं टटोलने से अधिक महत्व नाडी का नहीं है। तब नाडी किन बातों को समझ कर देखना चाहिये? यह बातें अब हमें नव्य आधुनिक विवर्धित ज्ञान के मार्ग से देखकर समझनी चाहिये। वह निम्न है:—

हृदय और नाडी का सम्बन्ध—इस समय यह प्रत्यक्षतया दिखाया जा सकता है कि हृदय की रचना एक जल फेंकने वाले पम्प की तरह की है जिसमें कपाट (वाल्व) लगे होते हैं, जो एक ओर से जल को भीतर आने देते है और अन्दर आये जल को दबाव के साथ दूसरे कोष्ठ में धकेलते हैं जहाँ से आगे पम्पों द्वारा वह जल ऊपर चढ़ता चला जाता है। हृदय में भी ऐसा ही प्रबन्ध है, सिराओं के मार्ग से एक ओर रक्त हृदय के अलिन्द में (कोष्ठ) में भरता रहता है वहां से वह कपाट खुलने पर फुफ्फुस की ओर धकेला जाता है। उधर जो रक्त फुफ्फुस से शुद्ध होकर हृदय के निलय कोष्ठ में आता है जब यह कोष्ठ भरता है तो हृदय में संकोच होता है और निलय का कपाट खुलता है वह रक्त बृहद् धमनी में धकेल दिया जाता है। धमनियां स्थितिस्थापक होती हैं इसलिये ४–५ तोला रक्त की मात्रा जब एक बार धमनी में धकेली जाती है तो वह रक्त चाप से प्रसर कर रक्त को अपने में रख लेती है। इस प्रतिबार रक्त के आने से धमनी में तनाव होता है वह फैलती और सीधी होती रहती है इस तरह हृदय द्वारा रक्त के क्षण क्षण में धकेले जाने से जो धमनी पर चाप तनाव का धक्का लगता है वह उसी तरह तरंगित होता हुआ आगे बढ़ता चला जाता है जिस तरह स्थिर जल में पत्थर फेंकने से जल के पृष्ठ तनाब को धक्का लगता है और उस धक्के से जल पृष्ठ पर तरंगें उठ खड़ी होती हैं जो जल के चारों ओर फैल जाती हैं। ठीक इसी तरह हृदय के प्रति क्षण स्पन्दन होते रहने से जो घात प्रतिघात धमनी पर होता है उससे धमनी के आकार में जो उत्थान पतन होता रहता है उसी की तरंगें सारे शरीर के धमनी जाल में उठती गिरती रहती है जो हमें करांगुष्ठ मूल की धमनी में अधिक स्पष्ट रूप में आसमान होती है। हृदय में एक ओर से अशुद्ध रक्त का आना और शुद्ध रक्त का धमनी में जाना यह चक्रवद्ध रक्त का परिभ्रमण अहर्निश चलता रहता है, इसको सब से पहले प्रयोगों द्वारा सही रूप में विलियम हार्वे ने ई० सन १६२८ में मालूम किया था, उसी ने आगे अपने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया कि रक्त ही हृदय से चलकर सारे शरीर में घूमता हुआ फिर वह हृदय में वापस आ जाता है। उसी ने यह बात सही तौर पर मालूम करके बताई कि हृदय से जुड़ी हुई दो प्रकार की नाडियां हैं। जिन नाडियों से नीलाभ अशुद्ध रक्त हृदय की ओर आता है वह सिरा (Veins) संज्ञक है और जिन नाडियों में हृदय द्वारा शुद्ध रक्त शरीर की ओर भेजा जाता है वह धमनी (Artery) संज्ञक हैं उसी ने हृदय को चीरकर यह मालूम किया था कि हृदय के भीतर चार कोष्ठ (खाने) है जिनमें आकर रक्त भरता है और उनके भरने पर उन कोष्ठों के द्वार पर कपाट लगे हुए हैं जो हृदय के संकोच काल में खुलते हैं और रक्त संकोच के कारण आगे धमनी में चला जाता है। उसीने मालूम किया कि यह कपाट ऐसे ढंग से बनकर हृदय से लगे हैं कि रक्त उनमें से होकर जब धमनी में पहुँचा दिया जाता है तो कपाट के बन्द हो जाने पर वह रक्त फिर हृदय में वापस नहीं आ सकता। उसी ने यह भी बताया कि हृदय में रक्त को स्थानान्तरित करते समय जो संकोच प्रसार की क्रिया होती है उसी से ही नाडी स्पन्दन की तरंगें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनती रहती हैं। यह नाडी स्पन्दन बिलकुल हृदय गति के अनुरूप होता है। उसने इसी बात को सिद्ध करने के लिये किसी प्राणी की धमनी को काटकर दिखाया कि देखो प्रत्येक स्पन्दन के समय रक्त की धारा का वेग बढ़ता है और जिधर से रक्त आ रहा हो उधर की उस धमनी को दबा दिया जाय तो रक्त प्रवाह बन्द हो जाता है। इसी तरह उसने सिरा को काट कर दिखाया कि इसमें स्पन्दन नहीं होते दूसरे इसका रक्त रोकना हो तो नीचे की ओर की सिरा को दबाने पर रक्त रुक जाता है क्योंकि इसका रक्त ऊपर की ओर हृदय की तरफ बहता है।

हृदय के प्रत्येक स्पन्दन काल में कितना रक्त उसके कोठे में समाता है इसकी मात्रा भी उसने १½ छटांक के लगभग मालूम की थी और सिरा द्वारा आगत रक्त की मात्रा को भी उसने मालूम किया था जो निर्यात से कुछ कम थी। इस जाँच पड़ताल से वह इस परिणाम पर पहुंचा कि हृदय जितनी रक्त की मात्रा धमनी में भेजता है उतनी ही वह सिरा मार्ग से लेता रहता है, जब तक उसके ग्राहक और क्षेपक कोष्ठ न भरें तब तक हृदय की तालबद्ध गति बनी नहीं रह सकती। १६८८ ई० में आकर लीवेनहुक ने—जिसने सबसे पूर्व सूक्ष्म दर्शक यन्त्र स्वयम बनाकर जीवाणुओं कीटाणुओं को देखा था—रक्त परिभ्रमण का सूक्ष्म दर्शक यन्त्र से प्रत्यक्षीकरण किया और सब से पूर्व उसने उसी सूक्ष्म दर्शक द्वारा केशिका जाल में रक्त संचार का निरीक्षण किया था। किसी जीवित प्राणी का मांस काट कर उसे ध्यान से देखें तो हमें उसमें सूक्ष्म धमनियों से बहता रक्त तो दिखाई देगा, केशिकाओं के मार्ग से बहते रक्त को हम अपनी नंगी आंखों से नहीं देख सकते। किन्तु सूक्ष्म दर्शक के नीचे जीवित मांस का निरीक्षण करें तो केशिकाओं में बहता रक्त दिखाई दे जाता है। सूक्ष्म धमनियों की शाखाएं जो जाल के मानिन्द समस्त अवयवों तक फैली होती हैं वह इतनी सूक्ष्म वाहनियां हैं कि नंगी आंख से दिखाई नहीं देती उन्हीं का नाम केशिकाएं है। इन्हीं केशिकाओं की खोल में से रक्त, लस (रस) स्रवकर अवयवों और कोषाओं के अंगों तक पहुँचता रहता है और कोषाओं से वापस होने वाला रक्त फिर सिरा की केशिकाओं में अभिसरण प्रक्रिया द्वारा आगे बढ़ता रहता है और वहां से बड़ी सिरा मार्ग से होते हुए वह रक्त फिर हृदय में पहुंच जाता है।

इस प्रायोगिक जानकारी से स्पष्ट हो गया कि जो हमने अपनी शास्त्र सम्मति के आधार पर सिरा धमनी (नाड़ी) को एकार्थ माना था, वह वास्तव में एकार्थ द्योतक नहीं। नाडी (नाली) के अर्थात पोली होने के अर्थ में अवश्य एकार्थक मान सकते हैं किन्तु जब शरीर में शुद्धाशुद्ध रक्त के भ्रमण की व्यवस्था का ज्ञान हुआ और वह एक दूसरे से भिन्न मिला तो उन दोनों के भिन्न व्यवस्था के आधार पर व्यवहृत शब्द को एकार्थ में रूढ़ कर दिया जाना उचित नहीं, नया नाम गढ़ने की अपेक्षा प्राचीन शब्दों को ले लेना अधिक सुविधाजनक होता है।

क्या नाडी और नाड़ी शब्द भी एकार्थक हैं? नहीं, शरीर के जितने अंग, उपांगों का ज्ञान आयुर्वेदज्ञों ने प्राप्त किया था वह पूर्ण नहीं था, १६ वीं शताब्दी के बाद शरीर में अनेक अंगों प्रत्यंगों का ज्ञान बढ़ा और उनके गुण धर्मों को ढूंढा खोजा गया, उनमें से एक महत्वपूर्ण शरीरका अंग नाड़ी संस्थान (Nervous System) भी था। इस नाड़ी संस्थान के सम्बन्ध में हमें आयुर्वेद में सिवाय मस्तुलुंग और धमल्लिक शब्द द्वारा सिर में रहने वाले अंग के और कोई शरीर से उनके सम्बन्ध का पता नहीं लगता। इसके विपरीत सिद्ध सम्प्रदायी योग के या तन्त्र ग्रन्थों के आचार्य आयुर्वेद से अधिक जानते थे। यथा

नाड्योऽनन्ताः समुत्पन्नाः सुषुम्ना पञ्च पर्वसु।
सुषुम्ना चव्य वल्लीव मेह मध्ये व्यवस्थिता।

शारदातिलक तन्त्र

वहां लिखा है—'एताहि असुपिरा भवन्ति।' यह नाड़ियां पोली नहीं होती। इस नाड़ी संस्थान के आविष्कार में सिद्ध सम्प्रदायी आयुर्वेदाचार्यों से आगे रहे हैं, ऐसा मानना पड़ता है।

इस समय नव्य ग्रन्थ लेखकों ने उस योग और तन्त्र ग्रन्थों में दिये इन नामों को अपनाकर मस्तिष्क से आने वाले क्रिया-ज्ञानवाही सूत्र समूहों के लिये नाड़ी शब्द का व्यवहार किया है। किसी किसी ग्रन्थकार ने इसके लिये स्नायु शब्द प्रयुक्त किया है। किन्तु स्नायु शब्द का अर्थ आयुर्वेद में 'स्नायवो बन्धनः।' (मांसपेशियों को बांधने वाली कहा है) इसलिये इसकी अपेक्षा नाड़ी शब्द ज्ञानवाही तन्तुओं के लिये अधिक उपयुक्त प्रतीत हुआ। यदि इसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवहार नाड़ी मण्डल (नर्वस सिस्टम) के लिये किया जाय तो नाडी (पोली) और नाड़ी (ठोस) के अर्थ को एक अनुस्वार के अन्तर से ही जाना जाएगा, जो वैद्यों के लिये सम्भव है असुविधा की चीज हो। यदि वैद्यों ने अपना ज्ञान विज्ञान बढ़ाना है तब तो उन्हें इसका भी बोध बनाये ही रखना होगा। हम इस अप्रासंगिक चर्चा को छोड़ कर अपने विषय की ओर आते हैं।

हृदय और नाड़ी स्पन्दन—हृदय की गति और रक्त संचार के आविष्कार से यह स्पष्ट हो गया कि नाडी में जो स्पन्दन उठते हैं वह हृदयोद्भव गति के कारण हैं। किन्तु उस गति के द्वारा स्पन्दन की आकृति के निर्माण में कौन से कारण हैं? धमनी में विद्यमान रक्त की मात्रा और रक्त द्वारा उस पर पड़ने वाला चाप, तनाव और उसके प्रसार की स्थिति ही स्पन्दन का रूप बनाते हैं। नाडी परीक्षा में जो कहा है:—

वातोद्रे के गतिकुर्य्ज्जलौका सर्पयोरिव।
पित्तोद्रेकं तु सा नाडी काक मण्डूकयोर्गतिम्।
हंसस्येव कफोद्रेके गति पारावतस्य वा।
नाडीधत्ते त्रिदोषे तु गति तितर लावयो: ॥नाडीपरीक्षा

अर्थात नाडी में जो उपरोक्त गतियां मानी हैं यह गतियां धमनी में विद्यमान रक्त की मात्रा पर निर्भर हैं दूसरे गत्योद्भूत चाप,तनाव का प्रभाव भी उस पर पड़ता है और उससे जो धमनी फैलती है नीच, ऊंच, वक्र आदि उसी के अनुरूप नाडी में स्पन्दन बनते है यह स्पन्दन जो उक्त कारण से बनते है कई व्याधियों में जिनका प्रभाव हृदय पर पड़ता है और हृदय की गति में अन्तर आता है तब स्पन्दन या तरंगों की गति भी बदल जाती है। उसी अन्तर को हमने त्रिदोष से मिलाया। यही नहीं, हमने तो केवल रुजावस्था में ही नाडी की गति के अन्तर को समझने का प्रयत्न किया था किन्तु यथा कालानुसार और वयानुसार भी नाडी की गति में अन्तर आता है इसका ज्ञान उन नाडी ज्ञाताओं को नहीं हुआ था। इस समय जब कि नाडी स्पन्दन गति की संख्या को समय के साथ मिला कर वयानुसार जांचा गया तो उसमें निम्नलिखित अन्तर पाया गया:—

प्रति मिनट नाडी स्पन्दन संख्या

नवजात बालकों में प्रति मिनट			१४०
१ वर्ष तक के बालकों में	,,		१३०
१–२ वर्ष	,,	,,	११०–१२०
३–४ ,,	,,	,,	९०–१००
७–१४ ,,	,,	,,	८०

इस से ऊपर की आयु में जाकर प्राय: ७२ रहती है।

कालानुसार भी नाडी की गति में अन्तर हो जाता है यथा—निद्रा काल में नाडी की गति ५२-६०, जाग्रत में, श्रम में ११२—१२० तक या अधिक हो जाती है, और वृद्धावस्था में ५५—६५ तक रह जाती है। देखा गया है प्राय: निम्न रोगों में नाडी की स्पन्दन गति में अन्तर आया करता है यथा—कई हृदय के रोगों में, कई हृदय-कपाट की विकृति में, अनेक ज्वरों में, धमनी की रचना में विकार आने से, रक्तरस के न्यूनाधिक होने पर, अतिसार, विसूचिका में, धातु क्षीणता की स्थिति में, पाण्डु रोग में, चुल्लिकोज वृद्धि में (Hyper Thyroidism) आदि रोगों में प्रायः नाडी की गति में अन्तर आया करता है? इसे नव्य साधनों से वैद्यों को समझने की जरूरत है।

इस समय तो हृदय की ध्वनि को हम श्रवण यन्त्र (Stethoscope) कान में लगा कर अच्छी तरह सुन सकते हैं। हृदय संकोच काल में जब रक्त धमनी में प्रवेश करता है तो दब का शब्द सुन पड़ता है हृदय के प्रसार काल में लुप का शब्द होता है। इन शब्दों की उत्पत्ति काल में नाडी पर हाथ रखने से दब के समय नाडी ऊपर उठती है लुप के समय नीचे बैठती है। चूंकि तरंगों का बहाव धमनी के भीतर चलता है इसलिये धमनी की लम्बाई पर हमारी अंगुलियां रखी जाती हैं तो कभी उत्थान का धक्का तर्जनी अंगुली पर अधिक लगता है कभी मध्यमा में साधारण कभी अनामिका में वह प्रतीत नहीं होता। कभी वह उत्थान का धक्का मध्यमा पर अधिक अनामिका पर यत्किंचित प्रतीत होता है। नाडी ज्ञान आविष्कारकों ने तर्जनी के नीचे प्रतीत होने वाली तरंग को वात की, मध्यमा के नीचे प्रतीत होने वाली तरंग को पित्त की और अनामिका के नीचे प्रतीत होने वाली तरंग को कफ की मान ली। और जो धमनी को अधिक वक्र गति देकर भासमान् हो वह वात की, जो ज्यादा वेग से उठती हुई लम्बी तरंग वाली नाडी हो पित्त की और मन्द गति से शिथिल तरंग देती चले वह कफ की मान ली। यह अन्तर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वात, पित्त, कफ के विवर्धित होने पर होता है ऐसा उन्होंने अनुमात किया, किन्तु ढूंढ खोज से इसका कारण निम्न देखा गया है ।

नाडी के उत्थान का वेग धमनी की स्थिति, रक्त की मात्रा और हृदय की गति, संकोच शक्ति आदि पर निर्भर हैं। यदि धमनियों की दीवारें मोटी हो गई हैं और उनमें कठोरता आ गई हैं तो उस स्थिति में तरंग का वेग अधिक उत्थान को लिये अंगुलियों पर भारी प्रतीत होगा यदि धमनियों की दीवार मोटी नहीं हुई उनमें पूरी लचक (स्थिति स्थापकता) है तो नाडी का उत्थान अधिक ऊंचा न होकर सर्प, जलौका गति में उसकी तरंग भासमान् होगी। यदि रक्त की मात्रा कम है या हृदय को संकोच काल में अधिक जोर नहीं देना पड़ता तो उस स्थिति में तरंगोत्थान मन्द रहेगा और वह तर्जनी मध्यमा तक नहीं पहुंचेगा उसकी प्रतीति अनामिका में ही होगी और हृदय अधिक चाप के साथ पूरी मात्रा में रक्त को धमनी में धकेल रहा हो तो उसका तरंगोत्थान लम्बा होने के कारण तर्जनी में भासमान् होगा। इस दशा में नाडी भी खूब भरी हुई चलती प्रतीत होगी। हम जिस नाडी के स्फुरण से अंगुलियों पर उसका स्थान देखकर दोषों की कल्पना करते है फिर भी वास्तविक तरंग उत्थान को नहीं जान पाते। इसी बाधा को दूर करने में वैज्ञानिक सफल हो गये हैं। उन्होंने एक ऐसा नाडी स्पन्दन लेखन यन्त्र (Sphygmograph) का आविष्कार किया है जिसके लगाने से जैसा हृदय के अनुरूप धमनी में स्पन्दन का आकार बनता है वह रेखा चित्र में उतार देता है, इस नाडी लेखन यन्त्र की सहायता से उतरी तरंगों की रेखा से यह सही तौर पर जान सकते हैं कि हृदय के किस भाग में त्रुटि है। इसी तरह जब नाडी गुरु या भारी चलती है जिसे हम वात की नाडी कहते हैं यह रक्त-चापाधिक्य से पूर्ण भरी हुई गुरु होती है यह धमनी काठिन्य में होता है जिसको देखने के लिये भी रक्त-चाप-मापक यन्त्र (Sphygmomanometer) द्वारा यह जान लेते हैं कि धमनियों की दीवारों पर रक्त के धक्के का कितना प्रभाव पड़ रहा है। हृदय संकोच के समय उसे कितना बल लगा कर रक्त को धमनी में धकेलने का काम करना पड़ रहा है इसकी भी अवस्थानुसार संख्या निकाल ली गई है जो निम्न होती है।

बालकों में ७५ से ९० स० लम्बन (मिली मीटर)
किशोर में ९० से ११० ,,
युवावस्था में १०० से १२० ,,
प्रौढावस्था में १२० से १३० ,,
वृद्धावस्था में १४० से १६० ,,

यन्त्र द्वारा नापा गया रक्त चाप यदि १६० से अधिक हो तो किसी बीमारी का सूचक होता है।

इस समय हम नाडी पर हाथ रखते रखते स्वाभाविक नाडी की गति क्या है? और ज्वर में नाड़ी की गति क्या है? यह जान लेते हैं। निर्बलता, अतिसार, विशूचिका आदि में नाडी पतली क्षीण हो जाती हैं। रोगी निर्बल है या सबल इसको भी हम नाडी के क्षीण व बलवान् स्पन्दनों से जान लेते हैं। जब नाडी रुक कर बीच बीच में अवकाश देकर चलती है को इसे देखकर "स्थित्वा स्थित्वा गति याति सा नाडी मृत्युदायिनी।" इतना समझते हैं कि रोगी मरने वाला है। अवकाश देकर या स्पन्दन की एक आधी गति छोड़ कर चलने वाली नाडी सब ही मृत्यु सूचक नहीं होती। इसके कारण को समझने के उस समय साधन नहीं थे। हृदय और नाडी का पारस्परिक सम्बन्ध ज्ञात हो जाने पर इस समय नाडी द्वारा पांच बातों पर ध्यान दिया जाता है। (१) गति-संख्या (२) उत्थान पतन की तालबद्धता (३) धमनी पर पड़ने वाले चाप का बल (४) धमनी दीवारों पर पड़ने वाली तनाव की शक्ति (५) धमनी की स्थिति स्थापकता द्वारा आयतन की स्थिति। उक्त पांचों बातें जब कि व्यक्ति स्वस्थ होता है सब नियमित, सीमा के भीतर होती हैं अर्थात नाडी की गति प्रति मिनट किस अवस्था के व्यक्ति में कितनी संख्या रखती है? इसे स्मरण रखा जाता है और रोगी के वयानुसार उसके गति की गणना करके इसे ज्ञात कर लेते है कि इसकी संख्या ठीक है या बढी हुई है। बढ़ी हो या घटी हो तो रोग है वरना स्वस्थ है। दूसरे नाडी स्पन्दन तालबद्ध हो रहा है? या टूटता है। क्रम में कुछ भी अन्तर पड़ने पर यह त्रुटि कहीं निम्न कारणों में से तो नहीं—यह देखा जाता है प्रायः हृदय का अतिरिक्त संकोच के कारण अथवा अलिन्द कपाट में कोई त्रुटि आकर उसकी स्थिति स्थापकता में तो अन्तर नहीं आया? अथवा सिरा संपातिक बाधा के कारण तो ऐसा नहीं हो रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि उक्त कारणों में से कोई कारण हो तो जिसमें एक स्पन्दन लुप्त होकर अनियमितता में नाडी चले वह हृदय के संकोच के कारण होता है। यदि अलिन्द कपाटों में कठोरता आ रही हो और उनकी स्थिति स्थापकता घट रही हो तो नाडी स्पन्दन प्रायः अनियमित रूप का होने लगता है। जिसका रेखा चित्र लेने पर उसके किसी भाग में समानता नहीं पाई जाती। कभी कभी तीसरा पांचवां, सातवां स्पन्दन लुप्त होकर नाडी की चाल देखी जाती है। यह भी निलय कपाट त्रुटि से होता है किन्तु कौन से कपाट की त्रुटि है यह समझना पड़ता है। यदि श्वास लेने के समय नाडी स्पन्दन अधिक और निःश्वास के समय कम हो तो यह सिरा सम्पातिक बाधा समझी जाती है।

यदि रखी हुई अंगुली पर नाडी का स्पर्श भरपूर हो रहा हो और कुछ दबाने पर बल लेकर दबे तो इसका अभिप्राय है कि नाडी पूरी से अधिक तनी है, इस तनाव शक्ति का उत्थान पतन शीघ्रता से है या लम्बा समय लेकर, यह हृदय के बल पर निर्भर तो है किन्तु यह बल निम्न अवस्थाओं में बढ़ जाता है धमनी में प्रवेश करने वाला रक्त पुनः निलय में वापस जाने लग रहा हो या चुल्लिकाज की मात्रा रक्त में बढ़ गई हो, रक्त की मात्रा धमनी में अधिक हो या ज्वर हो रहा हो। तब इस तरह का भरपूर स्पन्दन इस बात का सूचक होता है कि संकोचिक गति के कारण रक्त का चाप बढ़ा हुआ है जिससे नाडी मोटे आकार में भरी हुई चल रही है।

बढ़े हुये रक्त चाप की स्थिति को नाडी के तनाव द्वारा भी जाँचा जाता है। नाडी के ऊपर रखी हुई तीनों अंगुलियों में से अनामिका द्वारा नाडी को धीरे धीरे दबाते हैं जितने दबाव पर जाकर स्पन्दन मध्यमा पर नहीं प्रतीत होता वह तनाव की मात्रा कहलाती हैं। इससे भी हृदय के संकोचिक रक्त चाप का ज्ञान हो जाता है। मैं कुछ काल के अभ्यास से बिना यान्त्रिक सहायता के इस चाप शक्ति और तनाव शक्ति को ठीक अनुभव करने लग गया हूँ। और रक्त-चाप बढ़ रहा है या नहीं? यह नाडी द्वारा बतलाने में समर्थ हुआ हूँ, किन्तु चापकी संख्या कितनी होगी इसका सही सही ज्ञान तो यान्त्रिक साधन से ही होसकता है। इस बात को जानने और समझने के लिये प्रति दिन प्रभात को और भोजन के दो तीन घंटे के पश्चात अपनी नाडी के स्पन्दन का अन्तर देखते रहना चाहिये (प्रभात की नाडी की अपेक्षा भोजन के ३ घंटे उपरान्त की नाडी अधिक अंगुलियों का चाप सहन कर लेती है क्योंकि उस समय रक्त में शार्करी पदार्थों की मात्रा काफी बढ़ी रहने से धमनियाँ रक्त रस से भर पूर होती हैं। इस भोजनोपरान्त के तनाव के अनुभव मध्यम मान का ध्यान में रख कर इससे अधिक चाप तनाव देने वाली नाडी यदि हो तो उस स्थिति में रक्त चाप वृद्धि का अनुमान करना चाहिये।

हृदय प्रसार के समय जो स्पन्दन निम्न तल की ओर जाता है इससे भी रक्त चाप की स्थिति का अध्ययन होता है, किन्तु नाडी द्वारा इसके निम्न धरातल की स्थिति को समझना कठिन होता है इसलिये इसके सन्बन्ध में नाडी से कोई परिणाम नहीं मिलता। नाडी देखते समय रोगी के शरीर की शंखक, कलाई, पाद गुल्फ, की धमनी को टटोल कर पहले यह देखना चाहिये कि यह कठोर तो नहीं हो गई हैं। यदि धमनियों का आकार टेढा मेढ़ा सर्पाकृति हो रहा हो और टटोलने पर कठिन प्रतीत हों तो इसका अर्थ यह है कि धमनियों की लचक कम हो गई है और उनकी दीवारें मोटी पड़ गई हैं, ऐसे व्यक्ति की नाडी में से रक्त की छनकर जाने वाली मात्रा कम हो जाती है अर्थात रक्त की मात्रा धमनी में अधिक विद्यमान रहती है धमनी में यदि मात्रा से अधिक रक्त अपने समय से अधिक रुक कर छने तो इस स्थिति में रक्त को धमनी में धकेलने के लिये हृदय को अधिक सांकोचिक बल लगाना पड़ता है और नाडी पर तीनों ही अंगुलियों के नीचे भरपूर स्पन्दन आता है, नाडी का आकार भी मोटा अंगुलियों में प्रतीत होता है नाडी अंगुलियों पर चाप भी अधिक लेती हैं। यह रक्त चाप की स्थिति इस बात की द्योतक है कि इस रक्त चाप का प्रधान कारण धमनी काठिन्य है। धमनी यदि स्थिति स्थापक है तो नाडी स्पन्दन ऊंचा उठेगा और उतना ही नीचे जायगा। इससे भिन्न उसमें जलौका गति भी पूर्णतया होगी। स्पन्दन आते समय वह टेढ़ी मेढ़ी होगी स्पन्दन गिरते समय सीधी होगी। यदि धमनी काठिन्य होगा तो नाडी का स्पन्दन ऊंचा नहीं उठेगा, नाडी भी जलौका गति कम लेगी। इससे धमनी रोग के कारण रक्त चाप का निदान करने में सुविधा होती है।

[शेष टाइटल के तीसरे पृष्ठ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर की क्षाराम्ल व्यवस्था और स्वास्थ्य

हम स्वस्थ कैसे रह सकते हैं ? शरीरस्थ किन द्रव्यों की समावस्था से स्वास्थ्य ठीक रह सकता है ? इसकी ढूंड खोज आयुर्वेदाचार्यों ने जरूर की थी और उन्होंने जो जांचा था वह यह था "दोषसाम्य मरोग्यता" यदि शरीर में दोषों की साम्यावस्था बनी रहे तो रोग नहीं होते, शरीर स्वस्थ रहता है।

जिस पूर्व काल में उक्त सिद्धान्त स्थिर हुआ था उस समय प्रायोगिक साधनों का प्रायः अभाव था बहुधा हमारे साधन आप्त वाक्य और अनुमान पर आश्रित थे। शरीर में विचरण करने वाले द्रव्य दोष थे या अन्य कोई ? उस समय इसे प्रत्यक्ष साधनों से नहीं जाना जा सका था। अनुमान से यह बात मान ली गई थी कि समस्त खाद्य पेय द्रव्य शरीर के भीतर जाकर जब वह विपाक को प्राप्त होते हैं तो षट रस रूप द्रव्य तीन रसों में बंट जाते हैं:—

कटुतिक्त कषायाणां विपाकः प्रायशःकटुः ।
अम्लोऽम्लं पच्यते स्वादुर्मधुरं लवणास्तथा ।।

और इन रस प्रधान द्रव्यों के अधिक सेवन से:—

कटुतिक्तकषयाश्च कोपयन्ति समीरणम् ।
कट्वम्ल लवणाः पित्तं स्वाद्वम्ल लवणाःकफम् ।।

से दोषों की वृद्धि होती है।

और इसके विपरीत—

स्वाद्वम्ल लवणान् वाते तिक्त स्वादु कषायकान् ।
पित्ते, कफे तिक्त कटु कषायान् योजयेद्रसान् ।।

रस प्रधान द्रव्य देने से दोषों का शमन हो जाता है। अर्थात दोषसाम्यावस्था में आ जाते हैं। खाद्य पेय द्रव्यों द्वारा शरीर के भीतर दोषों का ही सन्तुलन बिगड़ता है या किन्हीं और द्रव्यों का ? इसको सही रूप में जानने के साधन १९ वीं शताब्दी से पूर्व किसी भी चिकित्सक समुदाय को प्राप्य नहीं हुए थे। यह बात तो अब आकर ही जानी जा सकी कि खाद्य, पेय द्रव्य विपाकित होकर त्रिरस रूप में नहीं जाते प्रत्युत त्रिपोष्य (अन्नजनी, शार्करी स्नेही) रूप में जाते हैं इन्हें हम वात पित्त कफ के साथ समन्वित नहीं कर सकते।

यदि वास्तव में-क्षिति जल पावक गगन समीरा। पंचरचित यह अधम शरीरा का सिद्धान्त सही होता तो तज्जन्य दोष भी शरीर में अवश्य मिल जाते। किन्तु जिस का मूल ही न हो तो उसकी शाखा ढूंढना खपुष्प प्राप्ति की आशा करना मात्र होगा।

तब शरीर को साम्यावस्था में बनाये रखने में कौन से द्रव्यों के सन्तुलन की आवश्यकता होती है ? विद्यमान अनुसन्धानों से ज्ञात हुआ है कि (१) अन्तः स्रावी ओज सन्तुलन और (२) क्षाराम्ल सन्तुलन (३) लवण सन्तुलन यह तीनों सन्तुलित स्थिति में बने रहें तो शरीर स्वस्थ रहता है और इनमें से किसी का भी सन्तुलन बिगड़ जाय तो शरीर अस्वस्थ, रोगी, विकृत हो जाता है।

ओजों का शरीर में सन्तुलन बना रहने पर शरीर में स्वास्थ्य की स्थिति कैसे ठीक बनी रहती है ? यह विषय अधिक गहन और बड़ा है इसलिये इस पर तो आगे कभी विचार करूंगा। इस लेख में क्षाराम्ल सन्तुलन से स्वास्थ्य का सम्बन्ध कैसे है ? और इसको कैसे जाना जाता है हम इस पर ही कुछ विचार करेंगे।

शरीर के भीतर क्षाराम्ल लवण की स्थिति :—आयुर्वेदज्ञ इस बात को तो मानते थे कि अम्लका विपाक रस अम्ल ही रहता है और लवण रस मधुर रस में बदल जाता है। इसका अर्थ यह निकलता है कि शरीर में लवण अपनी स्वतन्त्र स्थिति में नहीं रहता। किन्तु हम अनेक श्लेष्म विकार के ऐसे रोगी देखते हैं जो कहते हैं बलगम नमकीन स्वाद का निकलता है। मुख का स्वाद नमकीन है, रक्त का भी यही हाल है "मधुरमिषल्लवण स्निग्धं रक्त माहुः ।" अष्टांग संग्रह। रक्त मधुर स्निग्ध कुछ कुछ नमकीन है। इन प्रत्यक्ष व आप्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि लवण मधुर रस में नहीं बदलता, प्रत्युत शरीर में वह अपने असली रूप में ही रहता है। इससे भिन्न हमारे शरीर में रक्त में क्षार का अंश भी सदा विद्यमान रहता है, और इस क्षार की उपस्थिति स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिये आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है यह ज्ञान हम आयुर्वेदज्ञों को आज तक नहीं हुआ। किन्तु उस तरह हम जानते हैं कि अपामार्ग, मूली, अर्क आदि के वृक्ष जलाकर उनकी भस्म बनाकर उसे जलमें घोलकर उसके स्वच्छ जल को जब गाढ़ा करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं तो उसमें से हमें क्षार प्राप्त होते हैं। सज्जीवृक्ष (लाणा) सज्जीखार, और यव वृक्ष से यवक्षार भी प्राप्त करते हैं। जिसका अभिप्राय यह है कि प्रत्येक बनस्पति में क्षारांश विद्यमान रहता है। हम पालक, चौलाई, वास्तुक, मेथिका, पत्रगोभी, गाजर, मूली, आलू, मटर, सेब, सन्तरा, आम, अनार, निम्बू, नारंगी, बादाम, पिस्ता अखरोट, नारियल, न्योजे, अन्न, दालें, मांस, मत्स्य, घृत, तेल, गुड़, शक्कर आदि अनेक तरह के पदार्थ खाते रहते हैं, इन खाद्यपेय वस्तुओं में कोई खट्टी, कोई मीठी, कोई खारी, नमकीन भी होती है। खारी द्रव्य शरीर में जाकर खारे ही रहते हैं या कि वह किसी और रस में बदलते हैं? इस प्रश्न पर आयुर्वेद बिलकुल मौन है। जिसका स्पष्ट अर्थ है कि हमें इसका कुछ भी ज्ञान नहीं। किन्तु यह एक शारीरिक स्वास्थ्य के लिये महत्व का आविष्कार है इसलिये इसे तो हमें जानना ही चाहिये और क्षाराम्ल व्यापार जीव रसायन की एक प्रमुख क्रिया है जो हमारे शरीर में निरन्तर चलती रहती है इसे जरूर समझना चाहिये।

अन्न, शाक, सब्जियां, फल, सूखे मेवे आदि जो भी हम खाते हैं उनमें सैंधजम (सोडियम) पांशुजम (पोटाशियम) मगनम(मेंगनीज)चून (कैलशियम),लोह आदि धातुओं के क्षार व लवणों की कुछ न कुछ मात्रा हमारे शरीर के भीतर पहुंचती रहती है और आप देखते हैं कि मनुष्य भोजन के समय अचार चटनी, चटपटी चीजों का बहुत आदी हो गया है। वह आम, इमली, निम्बू, नारंगी, अनार, आलूबुखारा आदि की खटाइयां भी खूब खाता है यह खटाइयां क्या शरीर के भीतर जाकर "अम्लोऽम्लं पच्यते" में ही बनी रहती हैं? प्रयोगों से यह सिद्ध नहीं होता।

हम रसायन-शास्त्र के प्रारम्भिक प्रयोगों द्वारा जानते हैं कि किसी भी अम्लद्रव में कोई क्षार मिला दें या किसी क्षारीय घोल में कोई अम्ल मिला दें तो इसका परिणाम यह देखने को मिलता है कि वह घोल फिर न अम्ल रहता है न क्षारीय प्रत्युत एक विशेष रस वाला लवणायम बन जाता है। जिस तरह प्रयोग शाला में क्षार और अम्ल मिलादेने पर लवण में परिणत हो जाते हैं, ठीक इसी तरह हमारे शरीर के भीतर जो भी खाद्य पेय रूप में अम्ल और क्षार भी प्रवेश करते हैं यह दोनों शरीर के भीतर पहुँच कर उसी रूप में नहीं रहते प्रत्युत दोनों के संयोग से लवणों की उत्पत्ति होती है। शरीर में बढ़ी हुई क्षारीयता या अम्लता से लवणों की रचना होती रहने से यह दोनों असन्तुलित नहीं होने पाते। यही एक साधन इनको सन्तुलन में बनाये रखता हो सो नहीं। प्रत्युत आप जानते हैं हमारे आमाशय में लवणाम्ल (नमक का तेजाब) भी बनता है। यह नमक का तेजाब भी भोजन में बढ़ी क्षारीयता को घटाता है और यदि उदरदरी में कहीं अम्लता बढ़ जाय तो अम्ल रस पूर्ण भोजन जब ग्रहणी में पहुँचता है तो ग्रहणी में आकर गिरने वाला क्लोमरस (पैंक्रियाटिकजूस) जो क्षारीय स्वभाव का होता है अम्ल रसों में मिलकर उसकी अम्लता को नष्ट कर देता है। यह प्रकृति प्रदत्त व्यवस्था शरीर में बिना बाधा के कहां कहां किस स्थान पर चलती रहती है। इसे देखा गया है कि (१) अन्न प्रणाली में (२) रक्त में (३) कोषाओं के शरीर में चलती है, हम जो आम, इमली, आदि फल खाते हैं उन फलों में प्रायः निम्न प्रकार के अम्ल होते हैं (१) निम्बुकाम्ल, (२) चिंचाम्ल (३) सेवाम्ल (४) मायाफ़लाम्ल (५) कषायाम्ल (६) काष्ठिकाम्ल (आग्जलिक एसिड) (७) चुक्राम्ल (८) दाडिमाम्ल (९) आड्काम्ल (१०) बलिकाम्ल (११) स्फुरिकाम्ल आदि। बलिकाम्ल (गन्धक का तेजाब), स्फुरिकाम्ल (फास्फरिक एसिड) यह दो अनैन्द्रिक हैं बाकी सेन्द्रिय अम्ल कहे जाते हैं। यह अम्ल पहले तो अन्न प्रणाली में ही निरम्ल कर दिये जाते हैं कोई आगे चले भी जांय तो यकृत में पहुँचकर सब निरम्ल कर दिये जाते हैं। तत्पश्चात् वह विपाकित रस रक्त में जा मिलता है। रक्त में पहुंचकर वह अम्ल क्षारों के योग से लवण बनते हैं वहां वह फिर विच्छेदित होते हैं, उनसे नये प्रकार के क्षार मुक्त होते हैं और इसी तरह नये प्रकार के अम्ल जो सदा कोषाओं के शरीर में, मांस पेशियों में बनकर रक्त में पहुंचते रहते हैं यथा—तक्राम्ल, चुक्राम्ल, चुक्रिचुक्राम्ल नवनीताम्ल, षष्टिकाम्ल (सेवसैनिकएसिड), मूत्राम्ल, स्फुरिकाम्ल, कज्जलिकाम्ल आदि। पाठक देखें जिन खटाइयों में विद्यमान अम्लों को हमने सेवन किया था वह अम्ल रक्त तक नहीं पहुंचे, बीच में ही लुप्त हो गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु रक्त में जो अम्ल पाये जाते हैं वह उदर दरी के मार्ग से नहीं गये, प्रत्युत यह अम्ल तो परिपाक रस के सात्म्यी करण समय में या श्रमकाल में या शर्करा स्नेह के दहन काल में अथवा कोषाओं के क्षय-पूर्ति काल की स्थिति में उत्पन्न हुये थे ये वह हैं।

तब रक्त में विद्यमान अम्ल किस तरह कम होते हैं? इसके निराकरण के लिये शरीर में निम्न विधान पाये जाते हैं (१) श्वसन विधि (२) निःस्यन्दन विधि (३) निराकरण विधि।

शरीर में ताप और शक्ति को स्थिर रखने के निमित्त अहर्निश शर्करी, स्नेही द्रव्यों का दहन होता रहता है। दहन (ज्वलन) क्रिया चाहे शरीर के वाहर हो या भीतर जहां भी हो वहां कज्जलिकाम्ल (क अ$_2$) की उत्पत्ति अनिवार्य है। यह अम्ल वायवीय स्वरूप का होता है। इसको स्थानान्तरित करने का प्रकृति में निम्न विधान मिलता है। रक्त की लाल कणिकाओं में जहां रंजनी (हेमोग्लोबीन) रहती है उस रंजनी में कुछ अवकाश रहता है, रक्तरंजनी में वायवीय पदार्थों को आकर्षण करने का गुण होता है, वह वायवीय रूप के पदार्थ को आकर्षित कर अपने अवकाश स्थान में रख लेती है। यह रक्त कणिकाएं जब धमनी मार्ग से कोषाओं की ओर जाती हैं तब वह फुफ्फुस कोष्ठों से अपनी रंजनी में ऊष्मजन भर कर लाती हैं। वह ऊष्मजन कोषाओं को जब देती हैं तभी कोषा में दहन प्रक्रिया चलती है। दहन काल में वह ऊष्मजन वहां पर कज्जल के साथ मिलकर कज्जलिकाम्ल वन जाता है इसे रक्त कणिका फिर अपनी रंजनी के अवकाश में आकर्षित का रख लेती हैं और सिरा मार्ग से चलकर वह फुफ्फुस में पहुंचकर वहां उसे छोड़ देती हैं और वहा से फिर ऊष्मजन भर कर हृदय द्वार से धमनी में पहुंच जाती हैं। इस रक्त कणिकाओं के अहर्निश चक्र द्वारा जितना भी कज्जलिक अम्ल उत्पन्न होता है श्वसन विधि से वह नष्ट कर दिया जाता है।

निःस्यन्दन विधि अर्थात छानना—रक्त द्रव शरीर में वृक्कों द्वारा छाना जाता है केवल वहां आंख मीच कर रक्त नहीं छाना जाता, प्रत्युत बड़ी सावधानी से रक्त के द्रव्यों का सन्तुलन देखकर जो भी द्रव्य मात्रा से अधिक हुए उन्हें रक्त से भिन्न कर लिये जाते हैं और अगर पदार्थों की मात्रा अधिक हो तो उसे घटाने के लिये वहां पवन (नाइट्रोजन) से पवनियां (अमोनियां) का भी निर्माण होता है। पवनियां वायवीय रूप का क्षार होता है जो अम्ल के साथ मिलकर शिथिल लवणों की उत्पत्ति करता है। ऐसे क्षारों लवणों को वृक्क फिर रक्त में वापस कर देता है। पवनाम्ल, मूत्राम्ल, काष्ठिकाम्ल आदि कई अम्लों को तो वृक्क अपने कोषाओं से छान कर मूत्र मार्ग से बस्ति में भेज देता है। वृक्कों का काम ही यह है कि रक्त में बढ़ी या विद्यमान क्षारीयता या अम्लता जो भी सन्तुलन से अधिक मात्रा में हो उसे छानकर निकाल लेना और पवनियां उत्पन्न कर निराकरण विधि में सहयोग पहुंचाना।

निराकरण विधिः—एक तो रक्त में वृक्कों द्वारा उद्भूत पवनियां पहुंचता रहता है दूसरे रक्त में संवद्विकज्जलेत (सोडियम वाई कार्वोनेट) संवस्फुरेत (फास्फेट) संवाम्लस्फुरेत आदि कुछ मध्यवर्ती ऐसे पदार्थ विद्यमान रहते हैं जो सदा ही जीव रसायन प्रक्रिया में अम्लों से मिलकर शिथिल लवणों की उत्पत्ति करते रहते हैं इससे भिन्न हम दाल, शाक, सब्जियों में डाल कर जो नमक खाते हैं इसी नमक में से हमारे आमाशय की कोषाएं संधलवणिद (सोडियमक्लोराइड) में से लवणजन को तोड़ कर उससे ही तो वह लवणाम्ल (नामक के तेजाव) की रचना करती रहती हैं। संधजम जब लवणजन से मुक्त होता है तो वह कज्जल के साथ मिलकर संधकज्जलेत (सोडियमकार्वोनेट) में परिणत होता रहता है यह भी क्षार धर्मी पदार्थ है जो, रक्त में सदा आमाशय कोषाओं से बनकर पहुंचता रहता है। यह सदा ही रक्त में आई अम्लता को उदासीन वनाने में पूरा सहयोग देता है। इस तरह से शरीर व रक्त में कोई भी अम्लता बढ़ रही हो उसको रोकने के उक्त साधन सदा सहायक रहते हैं और अम्लता को बढ़ने नहीं देते।

शरीर क्षराम्ल में से कौन को बनाये रखना चाहता है? शरीर में रक्त एक ऐसा मध्यवर्ती द्रव है जिसके माध्यम (आधार) से समस्त शरीर के अवयवों को पोषण सामग्री पहुंचती रहती है और शरीरावयव रक्त द्वारा आई पोषण सामग्री से अपनी क्षय-पूर्ति करते हैं, उस समय कई अनुपयोगी बाह्य वस्तुएं अवशेष रह जाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं।कुछ सात्म्यीकरण प्रक्रिया में संजनित होती हैं, उन्हें उस रक्त के माध्यम से ही वे अवयव अपने पास से हटा कर रक्त प्रवाह में धकेल देते हैं। रक्त उन अनुपयोगी द्रव्यों को लेकर उन अंगों में पहुंचा देता है जहां उन्हें भिन्न करके शरीर से बाहर निकाल देते हैं। इस तरह रक्त समस्त ग्राह्य, अग्राह्य वस्तुओं के आदान प्रदान का बड़ा भारी माध्यम है। यही नहीं प्रत्युत स्वस्थ और अस्वस्थ शरीर की स्थिति को भी यदि हम सही तौर पर जानना चाहें तो रक्त ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा हम शरीर की स्थिति का निदान अच्छी तरह कर सकते हैं। क्योंकि शरीरावयवों में अच्छी या बुरी क्षार की या अम्ल की जो भी प्रति क्रियाएं होती हैं, परीक्षाओं से जाना गया है कि उस स्थिति में रक्त की भी प्रतिक्रिया उसी के अनुरूप रहती है। अनेकों बार स्वास्थ्य और रोग की दशा में रक्त की स्थिति को जांचते रहने से पता चला है कि जब रक्त की प्रतिक्रिया कुछ न कुछ क्षारीय बनी रहे तो शरीर स्वस्थ रहता है और रोगों की दशा में उसकी प्रतिक्रिया अम्लीय मिलती है। इसी आधार पर यह सिद्धान्त स्थापित हुआ है कि जब रक्त की कुछ न कुछ क्षारीयता को लिये स्थिति बनी रहे तो स्वास्थ्य ठीक रहता है। इसी आधार पर मान लिया गया कि शरीर भी कुछ क्षारीयता में ही रहना पसन्द करता है। शरीर में क्षार बढ़ रहा है या अम्ल ? जब तक इसको प्रयत्क्ष देखने के साधन न हों तब तक किस तरह समझा जाय कि शरीर के भीतर अमुक वस्तु बढ़ रही है ? इसकी खोज की जाने लगी और रक्त को शरीर की ठीक ठीक स्थिति बताने वाला मध्यवर्ती पदार्थ समझ कर इसके द्वारा शरीर में बढ़े या घटे पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न हुआ। उसमें से निम्न विधि उपयोगी पाई गई:—

उद्जन गमन-संकेन्द्रण (हाईड्रोजन अयन संकेन्द्रण) विधिका आविष्कार:—वैद्य कहते हैं हमें आधुनिक रसायन शास्त्र पढ़ने की आवश्यकता नहीं, किन्तु इधर हम देखते हैं कि शरीर में चलने वाली प्रक्रिया जीव रसायन की प्रक्रिया दिखाई दे रही है। जीव रसायन के सिद्धान्त आधुनिक रसायन शास्त्र के आधार पर ही समझे जा सकते हैं, यह बात इस लेख से ही स्पष्ट हो रही है। जो वैद्य आधुनिक रसायन शास्त्र को नहीं पढ़े वह उक्त लेख में दिये रक्त में होने वाले या शरीर में होने वाले परिवर्तन, सम्वर्धन और विकृति के स्वरूप को समझ ही नहीं सकते। जीव रसायन का आधुनिक रसायन से घनिष्ठ सम्बन्ध हो चुका है इसके प्रत्येक सिद्धान्त की व्याख्या में रसायन शास्त्र के सिद्धान्तों का सहारा लेना पड़ता है। इसलिये जब तक वैद्य अधुना रसायन-शास्त्र को न पढ़ें वह जीव रसायन के सिद्धान्त की व्याख्या को कभी समझ नहीं सकते। यह उदजन-गमन का एक स्थान पर पहुंचना—एकत्र होना भी रसायन शास्त्र का ही एक सिद्धान्त है, जिसने क्षाराम्ल के स्वरूप को स्पष्ट किया है और उसी स्पष्टीकरण के सिद्धान्त का जब रक्त पर उपयोग हुआ तो वह बिलकुल ठीक पाया गया। जब आधुनिक रसायन शास्त्र की उन्नति के साथ विद्युत विश्लेषण विधि का आविष्कार हुआ तो इस विधि ने दर्शाया कि क्षारीय पदार्थ धनात्मक गुण रखते हैं और अम्लीय पदार्थ ऋणात्मक गुण रखते हैं। इसको उन्होंने निम्न विधि से व्यक्त किया। शुद्ध जल में यदि विद्युत की धारा बहाई जाय तो जल में कोई परिवर्तन नहीं दिखाई देता। यदि जल में थोड़ा सा कोई अम्ल डाल दिया जाय तो जल के अणुओं का विश्लेषण होने लगता है और उसमें हलचल उत्पन्न हो जाती है।

जल का अणु दो उदजन और एक ऊष्मजन के परमाणु के मेल से बना है, यह बात इस विद्युत विश्लेषण प्रत्यक्ष देखी गई। जब जल के अणुओं का विश्लेषण होने लगता है अर्थात् वह टूटने लगते हैं तो उनके टूटने पर उदजन का एक परमाणु धन धारा की ओर गमन करता है और एक उदजन तथा ऊष्मजन का मिला हुआ अणु ऋण धारा की तरफ गमन करता है। जहां विद्युत तार के सिरे होते हैं वहां समस्त जल में से विच्छेदित होकर दोनों भिन्न २ स्थान पर एकत्र होने लगते हैं। विद्युत प्रभाव से उत्पन्न इस तरह परमाणुओं अणुओं के गमन को (Ion) कहते हैं। चूंकि अम्ल स्वभावी पदार्थ ऋणात्मक होते हैं इसलिये वह विद्युत के धन केन्द्र में एकत्र होते हैं और क्षार स्वभावी पदार्थ विद्युत के ऋण केन्द्र में एकत्र होने लगते हैं क्योंकि विद्युत गमन सिद्धान्त के अनुसार धनात्मक से धनात्मक वस्तुओं में निराकरण होता है और धनात्मक ऋणात्मक में आकर्षण होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस जल में विद्युत की धारा बह रही हो यदि उस जल में उदजन परमाणुओं की मात्रा बढ़ जाय तो वह जल अम्ल स्वभावी होगा और उस जल में उदऊष्मिद कि अणुओं की मात्रा बढ़ जाय तो वह जल क्षारधर्मी होगा। इसे हम द्योतक कागज (लिटमस पेपर) से चट जान लेते हैं। यदि जल अम्लीय है तो उसमें नील वर्णी कागज को डुबोवें तो वह लाल हो जायगा। यदि जल क्षारीय है तो उसमें लाल रंग कि कागज को डुबोवें तो वह नीला हो जायगा। इन द्योतक पत्रों से हम क्षाराम्ल स्थिति को चट मालूम कर लेते हैं।

इस विद्युत विश्लेषण विधि से जल के अणुओं को जब तोड़ा गया तो एक हजार माशा शुद्ध जल में उदजन कि परमाणु की संख्या कितनी है इसको हिसाब से निकाला गया। ज्ञात हुआ है कि जो उदजन परमाणु धन धारा की ओर गमन करके धन केन्द्र पर एकत्र हुए उनकी संख्या १ करोड़ है और उनकी तोल १ माशा है। इस संख्या व मात्रा को गणित कि सूत्र ७ या १०—७ कि अंकों से व्यक्त करते हैं। इसी तरह जो उदऊष्मिद के अणु ऋण धारा के केन्द्र पर एकत्र हुए थे शुद्ध जल में इनकी भी संख्या व मात्रा इतनी ही पाई गई जितनी उदजन की थी। इन दोनों का जोड़ संकेत चिन्हों में १०—१४ आता है, उक्त हिसाब से यदि हम किसी जलीय घोल का क्षाराम्ल मान ज्ञात करना चाहें। यदि उसमें उदजन गमन संकेन्द्रण १०—५ निकले तो इसका अर्थ है उसमें उदूष्मिद गमन १०—९ है। इसीलिये वह जलीय घोल क्षारीय होगा यदि किसी जलीय घोल में १०—७ हो तो इसका अर्थ है कि उसमें उदजन और उदूष्मिद दोनों की संख्या बराबर है इसीलिये वह जलीय घोल न क्षारीय होगा न अम्लीय। शुद्ध जल इसीलिये उदासीन होता है, क्योंकि इसमें दोनों की संख्या मात्रा बराबर है। इस उदजन गमन संकेन्द्रण की प्रयोग विधि में १० मूल अंक को छोड़ देते हैं केवल ऊपर के ७ अंक से ही क्षाराम्ल की स्थिति को समझते हैं।

इस विद्युत की उदजन-गमन संकेन्द्रण विधि द्वारा प्रत्येक द्रव पदार्थ की परीक्षा की गई तो शरीर के निम्न-लिखित द्रवों में उदजन-गमन संकेन्द्रण की संख्या निम्न रही।

क्षाराम्लमान (pH)

रक्त द्रव	७.३	से	७.५
सुषुम्ना द्रव	७.३	”	७.५
मुख की लाला	६.५	”	७.५
आमाशय रस	१.२		
क्लोम रस	८.२		
मूत्र द्रव	४.८	”	८.४
दुग्ध	६.६	”	७.६
पित्त	६.८	”	७०

उक्त सारणी से ज्ञात होता है कि रक्त द्रव, सुषुम्ना द्रव, क्लोम रस यह क्षारीय स्वभावी हैं मुख की लार, आमाशय रस और पित्त यह अम्ल स्वभावी है। मूत्र और दुग्ध कभी अम्ल और कभी क्षार स्वभावी हो जाते हैं।

उक्त परीक्षाओं से मालूम किया गया है कि जब रक्त का उदजन-गमन संकेन्द्रण ७ से नीचे चला जाता है तभी शरीर का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। इसीलिये यह स्थिर-मान बना लिया गया कि रक्त की प्रतिक्रिया कुछ न कुछ अवश्य क्षारीय बनी रहनी चाहिये। जिसका अभिप्राय है कि शरीर क्षाराम्ल सन्तुलन में कुछ क्षारीयता बनी रहे इस ओर उसका झुकाव पाया जाता है।

आजकल शरीर के क्षाराम्ल सन्तुलन को जांचने के लिये उक्त विधि का समस्त अलोपैथ डाक्टर उपयोग करते हैं इससे शरीर की स्थिति का निदान ठीक ठीक हो जाता है। उदजन-गमन संकेन्द्रण विधि द्वारा रक्त की परीक्षा करनी हो तो इसे बड़ी प्रयोगशाला में ही जहां सारे साधन होते हैं—वहां देखा जा सकता है। इसलिये इसको देखने वाले विशेषज्ञ भिन्न होते हैं। इस असुविधा को देख कर वैज्ञानिक कोई ऐसा निर्देशक घोल ढूंढने में लगे थे कि यदि वह मिल जाय तो शरीर के क्षाराम्ल सन्तुलन को आसानी से जाना जा सके तो अच्छा है। बड़े परिश्रम के पश्चात् उन्होंने अन्त में निम्न क्षाराम्ल निर्देशक घोल का आविष्कार कर ही लिया।

क्षाराम्ल निर्देशक घोल

फीनोप थैलीन	०.१ माशा
लाल (रेड) मेथिल	०.२ ”

[शेष पृष्ठ १६ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीरस्थ वस्तु में ओज कौन सी वस्तु है ?

दिसम्बर १९५७ के सचित्र आयुर्वेद में श्री वैद्य नागर दास मोहन लाल पाठक का ओज-एक आयुर्वेदीय विवेचन नामक शीर्षक से लेख प्रकाशित हुआ है। आपने अपनी ओर से जो विवेचन दिया है हम उसकी आलोचना नहीं कर रहे किन्तु आपके जिज्ञासाभाव को देख कर कुछ अपना मन्तव्य प्रकट कर रहे हैं।

हमारा तो निश्चित मत है कि चरक, सुश्रुत काल में शरीरस्थ पदार्थों को और शरीरस्थ अंगों के गुण, धर्म को जानने के इतने सूक्ष्म साधन ज्ञात नहीं थे जिससे वे वस्तु स्थिति को ठीक ठीक जान सकते, इसीलिये उन्होंने आप्त और अनुमान के आधारों पर वस्तु स्थिति को समझने का प्रयत्न किया, तभी तो किसी ने एक वस्तु के स्वरूप; गुण, धर्म को कुछ बतलाया तो दूसरे ने कुछ और।

इस समय हमारे पास प्राचीन दो ही संहिताएं प्रधान रूप में है एक चरक, दूसरा सुश्रुत। इन संहिताओं की जिन्होंने व्याख्या की है वह इनके समय से बहुत पीछे हुए, जबकि परिस्थिति बहुत बदल चुकी थी। इसलिये इनके भाष्य संहिताकारों के ठीक अभिप्राय को नहीं व्यक्त करते। इन भाष्यकारों के आधार पर किसी तथ्य की व्याख्या यदि वह सत्पथ का अनुसरण नहीं करती-माननीय नहीं समझी जा सकती।

ओज क्या है ? इस पर हम दोनों आद्याचार्यों के प्रमाण देकर उस पर अपना मन्तव्य रखेंगे। चरकाचार्य का ओज के स्वरूप के सम्बन्ध में निम्न मत था:—

हृदितिष्ठति यच्छुद्धं रक्तमीषत् सपीतकम्।

ओज हृदय में रहता है, जो स्वच्छ कुछ रक्तवत् कपिल वर्णी अर्थात् धूसर वर्ण वाला है। सुश्रुत जी के ओज का स्वरूप इससे भिन्न था यथा:—

ओजः सोमात्मकं स्निग्धं शुक्लं शीतं स्थिरं सरम्।
विविक्तं मृदु मृत्स्नञ्च प्राणायतनमुत्तमम्॥

ओज जलीय स्वरूप वाला चिकना श्वेत वहन शील है। इनके इस वर्णन में वह शीत है, स्थिर है, मृदु है, विवक्त है कैसे जाना गया ? क्या इसे भक्षण कर देखा जा सकता है ? इसका समाधान न स्वयम् उन्होंने किया न पश्चात के आचार्यों ने। उक्त दोनों के वर्णन से ओज के स्वरूप में विभिन्नता दिखाई देती है और शरीर में उसके रहने के स्थान में भी अन्तर है, चरक का ओज हृदि तिष्ठति' हृदय में रहता है सुश्रुत का ओज :—

देहः सावयवस्तेन व्याप्तो भवति देहिनाम्।

यह समस्त शरीर में व्यापक रहता है। फिर ओज की उत्पत्ति किस धातु से होती है ? इसको चरकाचार्य ने नहीं बतलाया। सुश्रुताचार्य जी बताते हैं :—तत्र रसादीनां शुक्रान्तानां धातुनां यत्परं तेजः तत्खल्वोजः। शरीर में जो एक धातु से दूसरी धातु के बनने का क्रम शास्त्रकारों ने माना है उसके अनुसार वह परम तेजवान् धातु ओज २१ दिन के बाद शुक्र से बनता है अर्थात यह शुक्र धातु का सार है। चरक जी ऐसा नहीं मानते वह तो कहते हैं—

यत्सारमादौ गर्भस्य योऽसौ गर्भ रसाद्रसः।

यह ओज गर्भ का सार है और यह गर्भ उत्पन्न करने वाले रस का सार है। किन्तु गर्भोत्पादन से पूर्व 'सम्वर्तमानं हृदयं' वह हृदय में वर्तमान रहता है और धारियद् हृदयाश्रितम्। वह हृदय में स्थिर रह कर जीवन को धारण करता है। अर्थात उत्पत्ति किसी धातु से नहीं मानी। रस से रक्त, रक्त से माँस, मज्जा, अस्थि शुक्र आदि के बनने का जो क्रम आचार्यों ने माना है रस से पूर्व रक्त नहीं था वह रस से बना, इसी तरह जब तक शुक्र नहीं था तो ओज भी नहीं बन सकता, शुक्र के बनने पर ही उसका सार बन सकता है। इस सुश्रुत के वर्णन से चरक का वर्णन मेल नहीं खाता। गर्भ से पूर्व ओज हृदय में रहता है और वह उसका सार है जीवन को धारण करता है यह कथन इस बात को सिद्ध करता है कि ओज शुक्र से पूर्व था जब शुक्र से पूर्व हृदय में स्थित रहने वाला ओज हो तो चरकाचार्य के मत से शुक्र की रचना के बाद उत्पन्न होने का प्रसंग उससे मेल नहीं खाता। चरक के ओज के आश्रित जीवन है यह जीवन की उत्पत्ति से पूर्व रहने वाली वस्तु ठहरती है। "धारितंतत्र संस्थितम्" कहा है अर्थात जीवन हृदय के आश्रित है इसीलिये तो चरक ने यह माना "तत्यस्यौजसः स्थानम्" उस परम उत्कृष्ट ओज का स्थान हृदय है। अर्थात हृदय या कहिये जीवन का जब उदय होता है उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ ही ओज आता है यह धातु से उत्पन्न नहीं होता। किन्तु है यह गर्भकारी वस्तु (शुक्र) का भी सार। यह ओज जो हृदय में उसकी उत्पत्ति के साथ आता है उसकी मात्रा अष्ट बिन्दवः चरकाचार्य कहते है। कुछ व्यक्तियों का विचार है कि बिन्दु का स्थान पर तिन्दु शब्द है जिसका अर्थ है १ तोला अर्थात् हृदय में ८ तोला ओज उसके साथ रहता है। क्या हृदय में कोई ऐसी जगह है जहां आठ बून्द ओज रह सकता है? चरकाचार्य काल में यदि हृदय के कार्य व्यापार का ठीक ठीक ज्ञान हो गया होता तो वह ऐसी असंगत बात कभी न कहते। जिनके मत में बिन्दु शब्द से ८ तोला ओज होना कहा जाता है आठ तोला तो हृदय कोष्ठ में रक्त भी एक बार में नहीं समाता। जिस व्यक्ति का डील डौल अच्छा हो, हृदय का आकार बड़ा हो उसी के हृदय कोष्ठ में ७-८ तोला रक्त की समाई होती है, वह हृदय रूपी पम्प से धमनी में धकेला जाने वाला रक्त ओज नहीं बन सकता। चरकाचार्य हृदय से दस धमनियां निकली बताते हैं, यदि उन्होंने हृदय और धमनी के सम्बन्ध को चीर कर देखा होता तो कभी ऐसी अनर्गल बात न कहते। इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि न तो ओज का प्रत्यक्षीकरण चरकाचार्य को हुआ था न सुश्रुताचार्य को। किन्तु ओज शरीर में कोई सत्ता है ऐसा उन्हें वेदों के पढ़ने से ज्ञात हुआ होगा। ओज को वैदिक युग के आर्यों ने देवों से प्रार्थना कर मांगा था "ओजं मे देहि तेजो मे देहि बलंमे देहि" हे इन्द्र, अग्नि आप मेरे शरीर में ओज दें, तेज दें, बल दें। निरुक्त और समस्त वैदिक व्याख्याकारों ने ओज शब्द को तेज,बल का पर्याय माना है। चरकाचार्य भी "यच्छरीर बलदेहः" जो शरीर का बल है ऐसा कहा है। सुश्रुताचार्य भी "यत्परं तेजः" कहते हैं वाग्भट भी 'ओजस्तुतेजो धातूनां' ओज धातुओं का तेज है यह सब वैदिक भावना की पुष्टि करते हैं। आप्त प्रमाण पर पुष्प चढ़ाते हैं तब क्या ओज नामक किसी वस्तु का शरीर में अस्तित्व नहीं था? हम तो कहते हैं कि था। जिसकी विद्यमानता के कारण शरीर तेजपूर्ण, बलपूर्ण बना रहता था जिसके बने रहने पर शरीर में कान्ति, लावण्य आता था, बल, शौर्य उत्साह बढ़ा रहता था, मानसिक शक्तियों का खूब विकास होता था, बौद्धिक विचार बढ़ते थे। जिस ओज के कारण यह सब होते देखे जाते थे उस समय इसका प्रत्यक्षीकरण नहीं हुआ था। केवल अनुमान जन्य अनुभव गम्य बात थी।

अब आकर सूक्ष्म साधनों से शरीर के भीतर रहने वाले अनेक अंगों उपांगों का जब ज्ञान हुआ और उनके क्रिया-व्यापार का जब आकर पता चला उनमें से कौन सी वस्तु अंगों उपांगों में बनती हैं जिनके शरीर में स्थिरी भूत रहने पर शरीर में कान्ति, बल, तेज का प्रादुर्भाव होता है? इस बात की यदि प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा साक्षी मिले तो उसे ही वैदिक कालीन ओज मानना युक्तियुक्त होगा। आइये ?इस समय की खोजों से ढूंढें कि वह कौन सी सत्ता है जिसके शरीर में बने रहने पर तेज, बल आता है?

नई खोजों में जो चीज हमारे सामने आई है वह शरीर में अनेक प्रणाली युक्त व प्रणाली विहीन ग्रन्थियां हैं। इन ग्रन्थियों का ज्ञान किसी भी पूर्वाचार्य को नहीं हुआ था। आयुर्वेदज्ञ मुष्क जैसी स्थूल दृश्य ग्रन्थियों को देख कर भी यह नहीं जान पाये थे कि यह वीर्यजनक ग्रन्थियां हैं। वीर्य इन्हीं ग्रन्थियों में बन कर वीर्य कोष में संचित होकर फिर वहाँ से च्युत होता है। प्रत्युत वह तो वीर्य को समस्त शरीर में रमा हुआ मानते थे जैसे दूध में नवनीत। विषय काल में वीर्य मन से मथित होकर वीर्यवाही स्रोतों के मार्ग से च्युत होता है ऐसा मानते थे। यह सब अनुमान जन्य बातें थीं। इस समय के अनुसन्धानों से यह ज्ञात हुआ है कि मुष्क, मद और मेहन नाम से जो ग्रन्थियां है वह यौन सम्बन्धी स्राव बनाती हैं। विषयकाल में इन तीनों के स्राव मूत्र मार्ग से बाहर आते हैं। यदि इन यौन सम्बन्धी ग्रन्थियों के स्रावों को च्युत न होने दिया जाय तो इनके स्राव फिर सीधे रक्त में मिलते रहते हैं। यह प्रत्यक्ष जाना गया है कि जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य धारण कर अपने वीर्य को नष्ट होने से बचाते हैं, उनकी यौन ग्रन्थियों के अन्तःस्राव जब रक्त में मिलते रहते हैं तो इनकी विद्यमानता से शरीर की कोषाएं अपने कार्य व्यापार को बड़े उत्साह से करती हैं, इन स्रावों के प्रभाव से शरीर की समस्त कोषाओं का खूब विकास होता है, इसी से शरीर खूब हृष्ट पुष्ट हो जाता है, मानसिक शक्तियों का भी इन स्रावों की विद्यमानता से खूब विकास होता है बुद्धि बढ़ती है, स्मरण शक्ति बढ़ती है, शरीर में तेज, बल,लावण्य आता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुष्क, मद, मेहन ग्रन्थियों में क्या वीर्य व मद जन्म से ही बना करता है? नहीं। यह ग्रन्थियां बालक के किशोर अवस्था में जाने पर जब १४–१५वर्ष की आयु होती है उस समय तक यह ग्रन्थिया स्वयं विकसित होती रहती हैं। जैसे फलवान वृक्ष अपनी युवावस्था प्राप्त कर फलित होते हैं ठीक इसी तरह मानव प्राणी के शिशु भी युवावस्था प्राप्त करने पर ही इनकी ग्रन्थियां फलवती होती हैं,यह बात भी आद्याचार्यों को मालूम नहीं थी। हमारे आद्याचार्यों को इतना अनुभव तो हुआ कि जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य धारण करते हैं उनके शरीर में तेज कान्ति आती है, बल बुद्धि बढ़ती है किन्तु वह इस रहस्य की तह तक नहीं पहुँच सके थे कि यह यौन ग्रन्थियों के स्रावों को सुरक्षित रखने का परिणाम है। इस समय के अनुसन्धानिक विवेचन से ज्ञात हो गया है कि जो ग्रन्थियों के रस बाहर न निकल कर रक्त में सीधे मिल जाते हैं ऐसे रसों का अनुसन्धान कर्ताओं ने हार्मोन्स नाम दिया है। आयुर्वेदाचार्यों का ओज भी इसी ओर सकेत करता है और वैदिक ओज भी इसी अभिप्राय को प्रकट करता है। शुक्र सार भी वही वस्तु है जो शुक्र के बनने पर उससे उत्पन्न होकर रक्त में सीधी मिल जाती है। और चरक के "गर्भ रसाद्रसः" जिस वीर्य से गर्भ रहता हैं उसके रस का यह सार है, ऐसा कहना इसी ओर इसका संकेत है।

हार्मोन्स शब्द जिन अन्तः स्रावी ग्रन्थि रसों के लिये रूढ़ हुआ है वैदिक ओज भी इन्हीं अन्तः स्रावी ग्रन्थि रसों के लिये रूढ़ होना चाहिये। यह वैदिक भावना को तो पुष्ट करता ही है शुक्र और गर्भ रस का सार होने से आयुर्वेदाचार्यों के ओज स्वरूप की सही व्याख्या प्रकट करता है। इसीलिये मैंने अपने लेखों में हार्मोन्स का पारिभाषिक शब्द ओज को ही माना है इसे उक्त अर्थ में ही प्रयुक्त करता हूँ।

शास्त्रीय, आप्त, अनुमान को प्रत्यक्ष के साथ यदि इस विधि से समन्वय का प्रयत्न हो तो मेरे विचार में जितना अंश प्रत्यक्ष के साथ मेल खा जाय उससे मिलाकर नई व्यख्या बना लेने से आयुर्वेद की अनेक त्रुटियों को दूर किया जा सकता है। अपने पूर्व पुरुषों की त्रुटियों को छिपाने से आयुर्वेद का उद्धार नहीं हो सकता। उनको प्रकट करने, उनमें संशोधन करने से ही सुधार और उन्नति हो सकती है।

[शेष पृष्ठ १३ का]

डाई मैथिल एसिडो ऐजो वन्जोल	०.२ "
नील (इण्डो) ब्रोमो थाइमोल	०.४ "
इण्डो थाइमोल	०.५ "
विशुद्ध अल्कोहल	१०० "

सब को अल्कोहल में मिला कर रख लो। परीक्षा के समय उक्त घोल का १ बूंद किसी शरीर के १०० माशा द्रव में मिला कर हिलावो यदि उक्त द्रव का वर्ण निम्न-लिखित रूप में बदल जाय तो उसका उदजन-गमन-संके-न्द्रण उसके रंग से मालूम कर लो।

वर्ण	क्षाराम्लमान (pH)	क्षाराम्ल प्रतिक्रिया
लाल	२	अम्लीय
नारंगी	४	"
पीला	६	"
पीत हरा मिश्रित	७	उदासीन
हरा	८	क्षारीय
नीला	१०	"

इस प्रयोग में भी शरीर के द्रव को १०० माशे के लगभग निकाल कर उसकी परीक्षा करते हैं,किन्तु इतना द्रव निकालना प्रायः कठिन होता है। इसीलिये वैज्ञानिक इस खोज में रहे कि कोई इससे भी सरल विधि उदजन-गमन-संकेद्रण के जानने की ज्ञात हो। इसी ढूँढ खोज में उन्होंने वैद्युतिक विधि मालूम कर ली है। आजकल तो इस वैद्यु-तिक विधि से ही एक बूंद रक्त या शरीर का कोई द्रव्र लेकर विद्युत-मापक-यन्त्र में रख कर उदजन-गमन संकेन्द्रण की स्थिति को जान लेते है और उससे चट पता लग जाता हैं कि शरीर का क्षाराम्ल सन्तुलन किस स्थिति में हैं।

मधुमेह जैसे कुछ रोगों में या कोई उपसर्गी ज्वरों के आक्रमण समय में शरीर के भीतर चुक्राम्ल, द्विचुक्रिक अम्ल, नवनीताम्ल, षडैनिक अम्ल आदि उत्पन्न होकर शरीर की प्रतिक्रिया को अम्लीय बना देते हैं। इस बात का निदान करने के लिये हमें शरीर के क्षाराम्ल सन्तुलन को सब से प्रथम समझना होता है। अब यह निदान का मुख्य अंग बन गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्तिशाली ओज का आविष्कार

हमारे शरीर में क्लोम, चुल्ली, उपवृक्क, पीयूष, अंशुका आदि अनेक ग्रन्थि स्वरूप अंग हैं जिनका काम है विशेष विशेष कार्य कर ओज (रस) का निर्माण करना। यह ओज अपनी अपनी ग्रन्थियों में उत्पादन होकर वहीं से सीधे रक्त में मिलते रहते हैं। अर्थात् वह ग्रन्थियां ओज उत्पन्न कर आगत रक्त में स्वयं उसे मिला देती हैं इन ओजों के रसस्थ बने रहने पर अस्थि, मांस, नाडी, नाड़ी, रक्त, बाल, खाल आदि समस्त शरीर निर्माता कोषाओं का ठीक कार्य-व्यापार चलता रहता है और उससे समस्त ज्ञानेन्द्रियों का मानस क्षेत्र का सहीं विकास होता रहता है यह रक्त में मिले हुए ओज शरीर की क्षय-पूर्ति वृद्धि में परम सहायक हैं इनके अभाव में शरीर की क्षय-पूर्ति-वृद्धि रुक जाती है यह अच्छी तरह से व्यवहारिक रूप में देख समझ लिया गया है।

जीव रसायन-विज्ञान में अब इतनी अधिक उन्नति हो चुकी है कि और इन जीवोद्भवी द्रव्यों की आन्तरिक रचना किस प्रकार की है? इसको रसायन शास्त्री अच्छी तरह समझने में समर्थ हो गये हैं। इसी विज्ञान के वल पर उन्होंने इन जैवोद्भवी सेन्द्रिय द्रव्यों को अपने रसायन-शाला में निर्माण कर डाला है। अभी अभी सूचना आई है कि जो पेन्सिलीन को यह अपनी औषध निर्माण शाला में पेन्सिलीनम्नटाटम् नामक कीटाणुओं की कृषि बढ़ा कर उनसे पेन्सिलीन तयार कराई जाती थी। उसके आन्तरिक अणु गठनको मालूम करके अव कृत्रिम विधि से पेन्सिलीन तैयार कर ली गई है जो प्राकृतिक पेन्सिलीन में कई दोष देखे जाते थे यह कृत्रिम पेन्सिलीन उन से मुक्त है।

इसी तरह अमेरिका में दी अपजौन कम्पनी सेन्द्रिय ओजों का कुछ समय से निर्माण कर रही है। उसने जो ओज बनाये हैं उन्हें मुर्गी, भेड, अजा वत्स्यों को खिलाकर देखा गया है। इन ओजों को उन प्राणियों के चारे में मिला कर दिया जाने पर उनके शरीर की वृद्धि बड़ी शीघ्रता से होती है और समय से पूर्व ही वे बच्चे युवावस्था प्राप्त कर लेते हैं। उस कम्पनी ने कार्टीजोन आदि कई ओज ऐसे भी निर्मित किये हैं जो आम सन्धि वात, श्वास, हेज्वर आदि बीमारियों में सफल सिद्ध हो रहे हैं। उस कम्पनी के वैज्ञानिकों ने अब एक ऐसा ओज तैयार किया है जो पहले कार्टीजोन (उपवृक्कोज) से १२० गुना अधिक शक्ति शाली है। यह ओज अभी तक तो सूचीवेध से शरीरस्थ किये जाते थे किन्तु उसने प्रयोग कर देखा कि यह योग यदि मुख मार्ग से दिया जाय तो १६० गुना लाभ दायी सिद्ध हुआ है। अर्थात् यह ओज आमाशय में पहुंच कर लवणाम्ल प्रभाव से नष्ट नहीं होता प्रत्युत उसका गुण और बढ़ जाता है और यह ओज आम सन्धि वात में पूरा लाभ करता है।

[शेष पृष्ठ ८ का]

उक्त नाडी ज्ञान की पुष्टि के लिये चिकित्सक को अन्य यान्त्रिक साधनों का भी उपयोग करना चाहिये जिससे नाडी ज्ञान का अनुभव बढ़े।

"उष्णा वेगवती नाडी" को देखकर इसे ज्वर है "भवेत क्षीण गति नाडी" देखकर इसे धातु क्षीणता है।

अब इतने ज्ञान से वैद्यों को सर्वज्ञ नहीं बनना चाहिये। अभी चार दिन की बात है एक रोगी आया कहने लगा स्वामी जी! आप मेरा उपचार करिये। मैंने उससे कहा क्या कष्ट है बताओ। कहने लगा नाडी देख लो। यदि मैं उसे कहता मुझे नाडी देखना नहीं आता या नाडी से रोग का पता ठीक ठीक नहीं लगता तो उसका मेरे प्रति बैठा विश्वास हिल जाता। यही सोच कर उसकी नाडी पकड़ी चेहरा देखा, आंख देखी, पेट देखा, जिह्वा देखी, फुफ्फस परीक्षा की सब देख दाखकर उसे बताया तुझे अमुक अमुक कष्ट दिखाई देते हैं। अनेक चिन्हों के सहारे मैंने जो उसका निदान किया वह बड़ा प्रसन्न होकर कहने लगा आप तो नाडी देखना ही नहीं चाहते थे। फिर नाडी देखकर सब कुछ बता दिया। आप नाडी द्वारा रोग समझ लेते हैं यही सुनकर तो आपके पास आया था, अब आप हमारी चिकित्सा करिये। पाठको! क्या मैंने उसके रोग को नाडी परीक्षा द्वारा समझा था? यह कई अंशों में असत्य था। अनेक साधनों के साथ यह भी निदान में एक सहायक साधन है। दर्शन स्पर्शन प्रश्नैः को मिलाकर सबकी सहायता ली और ज्योतिष के फलादेशवत् उसे बता दिया। लगा तीर, बस फिर क्या था, काम बन गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं० डी-७२०

विद्युत् की भट्ठियां और औषध निर्माण की मशीनें !!

हम अभी तक धातु भस्में उपलों की अग्नि में तय्यार करते हैं। उपलों की आंच देने में यह त्रुटि सदा रहती रही है कभी आंच कम कभी अधिक लग जाती है, इसके नियन्त्रण के जो भौतिक साधन बताये हैं उन्हें अपनाने पर भी यह त्रुटि दूर नहीं होती, इसीलिये अन्य साधन ढूंढने पड़े। उनमें से विद्युत् की भट्ठियां सर्वोत्तम सिद्ध हुईं। विद्युत्भट्ठी में ताप नियन्त्रण की पूर्ण व्यवस्था होती है, जितनी भी मात्रा में आंच देना चाहें आप प्रसन्नता से दे सकते हैं। प्रत्येक धातु भस्में बनाने पर देखा गया है कि उन्हें एक जैसी आंच नहीं चाहिये। किस धातु भस्म को कितनी आंच देना है? इसका सही-सही ज्ञान आप हमारे लिखे भस्म विज्ञान नामक ग्रन्थ में प्राप्त कर सकते हैं।

और वह भस्में विद्युत् भट्ठी पर हा एक मात्रा में आंच देकर बन सकती है इसका अनुभव लिया जा रहा है और उस पर एक भिन्न ग्रन्थ तैयार हो रहा है। हमने ऐसी विद्युत् भट्ठियां निर्माण की हैं जिन पर धातु भस्म और कूपी-पक्व रस दोनों ही बन सकते हैं। छोटे बड़े कई आकार की भट्ठियां तय्यार करके उन पर अनुभव ले रहे हैं जो वैद्य इन भट्ठियों का उपयोग करेंगे वह निश्चिन्त बैठे हुए भस्में व कूपी-पक्व रस निर्माण कर सकते हैं। जिन्हें भट्ठी लगाने की इच्छा हो वह पत्र-व्यवहार करें।

और आज-कल औषधियों की मांग इतनी बढ़ गई है कि हाथ से औषधियां कूट, पीस कर उतनी जल्दी रस, वटी तय्यार नहीं होतीं जितनी मशीनों से होती हैं। हाथ तो लगातार घंटा, आधा घंटा काम कर सकते हैं फिर थक जाते हैं पर मशीन तो लगातार ८-९ घंटा या जितनी देर चाहें उन्हें चलावें क्या वह थकने वाली हैं? फिर खूबी सबसे बड़ी हमारी मशीन में यह है कि जिस तरह आयुर्वेद के ग्रन्थों में औषधियों की कुटाई, पिसाई और घोटाई (भावना) का जो विधान दिया है जिससे औषधियों का सार भाग गरम न हो कर वह नष्ट नहीं होते, बिल्कुल उसी विधि के अनुसार हमारी मशीनों से कुटाई, पिसाई घुटाई होती है और औषधियां घुट कर इतने सूक्ष्म अणु-अंशों में आ जाती हैं कि जिनका प्रभाव शीघ्र होता है। प्रत्येक मशीन बिजली की शक्ति से चलने वाली है। मशीनें निम्न हैं:—

चट्टू मशीन, ढोल मशीन, खरल मशीन, गोली मशीन, टिकिया मशीन, पालिश मशीन, आसव छानने की मशीन फिल्टर आदि। अधिक मात्रा में औषध निर्माण-कर्ता यह मशीनें हमारे कारखाने में आकर देखें और सारी व्यवस्था समझ कर अपने यहां यह मशीनें लगाएं।

निवेदक---मैनेजर पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी,
६०--६१ अकाली मार्केट, अमृतसर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ५ माघ सम्वत २०१४ संख्या २

फरवरी १९५८

आयुर्वेद-विज्ञान

चिकित्सा संसार में क्रान्ति लाने वाला मुख्य वैज्ञानिक पत्र

AYURVED-VIJNAN

The Leading Hindi Journal Explaining The Ayurvedic System on Scientific Lines

सम्पादक
स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

विषय-सूची

१. समझ की बलिहारी १७
२. जैवसिद्धान्त (Germs theory) का विकास ... १९
३. रक्ताणुओं की उत्पत्ति का अद्भुत क्रम २२
४. कुलास्थिराल (Cholesterol) का महत्व ... २५
५. हृद् शल्य चिकित्सा का चमत्कार २७
६. व्याधि-क्षम दुग्धोत्पादन २९
७. एलोपैथी चिकित्सा इस ५० वर्ष में कितनी आगे बढ़ी ? ... ३२
८. जैव विनाशी कागज़ ... ...

प्रकाशक—
स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य, आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय, २२ फैज़ बाज़ार, देहली।

मुद्रक—बदलिया प्रिंटिंग प्रेस, दाईवाड़ा नई सड़क, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम

१—आयुर्वेद-विज्ञान प्रत्येक अंग्रेजी मास की १ तारीख को प्रकाशित होता रहेगा।

२—डाक-व्यय सहित इसका मूल्य ३) वार्षिक, एक प्रति का मूल्य ।-) होगा।

३—पत्र मंगाने वालों को अपना पता साफ २ अक्षरों में लिखना चाहिये।

४—जिन व्यक्तियों के पास उस मास की ५ ता० तक पत्र न पहुंचे उन्हें इसकी सूचना देनी चाहिये।

५—यदि एक-दो मास के लिये पता बदलवाना हो तो उसका प्रबन्ध स्वयम् डाकखाने से कर लेना चाहिये। अधिक समय के लिये पता बदलवाना हो तो फिर हमें सूचित करना चाहिये।

६—पत्र व्यवहार करते समय ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये। अन्यथा उत्तर नहीं दिया जावेगा।

७—पत्र व मूल्य सम्बन्धी पत्र-व्यवहार मैनेजर आयुर्वेद विज्ञान के नाम से और लेख, समालोचनादि व पुस्तकादि सम्पादक के नाम से भेजना चाहिये।

८—कोई भी पत्र, पुस्तक समालोचना के लिये भेजी जाय उनकी दो प्रति भेजनी चाहिये।

९—आयुर्वेद विषयक वैज्ञानिक गवेषणापूर्ण लेखों को पत्र में सर्व-प्रथम स्थान दिया जायेगा और श्रेष्ठ सचित्र लेखकों को पुरस्कृत भी किया जायगा।

१०—वृथा के आडम्बर पूर्ण पृष्ठ-पोषक लेखों के लिये इसमें स्थान नहीं मिलेगा। किसी भी लेख को घटाने, बढ़ाने व प्रकाशित करने, न करने का सम्पादक को पूर्ण अधिकार होगा।

११—जो लेख भेजे जायें, कागज पर एक तरफ हाशिया छोड़ कर लिखे होने चाहिये।

१२—उत्तम २ अलभ्य आयुर्वेद साहित्य सम्बन्धी चित्र लेख व वनस्पतियों आदि को जो सुरक्षित भेजेंगे उनको सपारिश्रमिक मार्ग व्यय आदि सब आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय से दिया जायेगा।

१३—आयुर्वेद शास्त्र सम्बन्धी प्रश्नों को छोड़ कर किसी परामर्श सम्बन्धी या किसी रोगी के लिये रोग-सम्बन्धी प्रश्नों पर प्रति प्रश्न के लिये आयुर्वेद-विज्ञान के ग्राहक आठ आना, जो ग्राहक नहीं वह प्रति प्रश्न एक रुपये का टिकट प्रश्न के साथ भेजेंगे तभी उनके प्रश्न और उत्तर छापे जायेंगे।

विज्ञापन छापने के नियम

१—किसी भी विज्ञापन छापने वाले या बन्द करने वाले को पत्र प्रकाशन से १५ दिन पूर्व सूचना देनी चाहिये।

२—अश्लील सभ्यता के विरुद्ध विज्ञापन नहीं लिये जायेंगे।

३—कोई भी विज्ञापन जनता को धोखा देने वाला सिद्ध होने पर उसका प्रकाशन बन्द कर दिया जायगा और जब तक वह सन्तोषप्रद प्रमाण न देगा जो मूल्य आ चुका है वापस नहीं दिया जायगा।

४—विज्ञापन का मूल्य सर्वथा प्रथम लिया जायगा।

५—आधे कालम से कम विज्ञापन दाताओं को आयुर्वेद विज्ञान विना मूल्य नहीं दिया जायगा।

६—एक वर्ष के लिये विज्ञापन देने वाले को =) रुपया कमीशन काट दिया जायगा।

विज्ञापन के दर

७—१ पृष्ठ यानी २ कालम की प्रतिबार		की छपाई	४०)
आधा पृष्ठ " १	"	"	" २४)
चौथाई ,, १।२	"	"	" १६)
टाईटल के पीछे के पृष्ठ की		"	" ५०)
" तीसरे " की		"	" ४५)
" चौथे " की		"	" ६०)

८—ट्रेड डायरैक्टरी में विषय वार विज्ञापन प्रति ३) रु० के हिसाब से लिया जावेगा।

मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेद-विज्ञान

आयुर्विदेव वितते किल शास्त्र जाते पुम्भिः प्रयत्नपरकैर्भवतीह लभ्यम् ।
शक्तिं शिवं च जनता यदि कांक्षतीयम् विज्ञानमेव भजतां सततं विशेषम् ।।

वर्ष ५ | माघ २०१४ वि०, फरवरी १९५८ ई० | अंक २

समझ की बलिहारी

इसी दिसम्बर के जय आयुर्वेद जोधपुर के सम्पादकीय स्तम्भ में "महासम्मेलन का नेतृत्व" शीर्षक के नीचे सम्पादक द्वय ने जो विचार व्यक्त किये हैं उन्हें पढ़ कर आश्चर्य होता है । आप फर्माते हैं–'यों तो संस्था का विधान इसकी नीति निर्देशक है ही, परन्तु इसके नेता भी संस्था के विधान के अन्तर्गत रह कर नीति का संचालन करते हैं ।' जिस व्यक्ति ने आज से २८ वर्ष पूर्व महामण्डल का नेतृत्व संभाला था वह व्यक्ति विधान के अन्तर्गत रह कर उसकी नीति का कितना संचालन करता रहा है ? इसका आपको जरा भी ज्ञान होता तो "भिन्न रुचिर हि लोके" का राग न अलपाते ।

आगे आप फर्माते हैं––"सम्मेलन में इस समय दो विचार धारायें चल रही हैं । एक है––शिव शर्मा वाद, तथा दूसरा है रामनारायण वाद । प्रथम वाद बहुत अर्से से सम्मेलन पर प्रभुत्व पा चुका है और द्वितीय वाद इस पथ का अनुगामी बन रहा है । प्रथम वाद अधिकार पूर्ण है, तो दूसरा अर्थ पूर्ण ।" उक्त कथन से––यह आप मानते हैं कि शिव शर्मा इस समय भी महामण्डल में अधिकार पूर्ण है, जब वह आज तक अधिकार पूर्ण है तो आप कृपा कर के बतलाइये कि इस २८ वर्ष में वह स्वयं कितनी बार प्रधान पद पर आसीन रहा और कितनी बार अपने साथियों को उसने प्रधान पद पर आसीन कराया ? इतने लम्बे समय के नेतृत्व में इस संस्था द्वारा उसने वैद्य समाज के संरक्षण के लिये क्या कुछ किया ? कितने आयुर्वेद विद्यालय उसने स्थापित कराये ? कितना रुपया उसने विद्यालय के लिये एकत्र किया ? विधान के अनुसार उसने संस्था का किस योग्यता से संचालन किया ? क्या प्रस्ताव पास कराना ही वैद्य समाज की भलाई का काम है ? यदि प्रस्तावों से ही जय आयुर्वेद के पृष्ठ काले होकर राजस्थानी वैद्यों को लाभ हो रहा हो तो आपको बधाई मिलनी चाहिये ।

आगे आप फर्माते हैं—"आज वैद्य समाज के सामने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक ही उद्देश्य है—आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा घोषित कराना, इस उद्देश्य की पूर्ति की ओर हमारा सम्मेलन प्रयत्नशील हैं।'' यही प्रयत्न कि सम्मेलनावसर पर प्रस्ताव पास करा देना? कागजी घोड़ों पर चढ़ कर दिल्ली फतह करना तो सम्मेलन के नेताओं का सदा से ही काम रहा है, अब आपका सहयोग मिला तो आशा है दिल्ली पर अधिकार मिलते देर नहीं लग सकती। संसद सदस्यों के सामने व्याख्यान झाड़ने में भी यदि सम्मेलन प्रयत्नशील है तो शिवशर्मा का एक व्याख्यान आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति घोषित नहीं करा सकता। हां अब आप उसकी कुछ सहायता करिये तो शायद कुछ काम बन जाय।

संस्थाओं के विधान का क्या महत्व है? शिव शर्मा ग्रुप विधान पर कितना चलता रहा है? इसको सम्पादक द्वय--शिव शर्मा द्वारा चलाये मान हानि के केस को पढ़ कर भी नहीं जान सके। इससे जान पड़ता है कि सम्पादक द्वय विधान के ज्ञान से कोरे ही हैं। जो विधान के महत्व को नहीं समझने न विधान सम्बन्धी बातों को समझते हैं ऐसे व्यक्ति सम्पादक के पद पर आसीन होकर वैद्य समाज का कैसे पथ प्रदर्शन कर सकेंगे?

आगे आप फर्माते हैं—'हमने दोनों ओर के खतरों से वैद्य समाज को आगाह कर दिया है।' कौन से खतरे! इसे आप जरा साहस के साथ बतलाते तो वैद्य समाज को इस का कुछ ज्ञान भी होता।

आगे आप फ़र्माते हैं—'आज सम्मेलन नेतृत्व के दो रास्ते हैं-(१) शिव शर्मा की कटु आलोचना का पथ (२) रामनारायण शर्मा का विनम्र याचना का पथ।'

शिव शर्मा २८ वर्ष से महामण्डल का नेता बना चला आ रहा है उसकी कटु आलोचना करने का अवसर कब और कैसे उत्पन्न हुआ? यह आलोचना किसी व्यक्तिगत द्वेष के कारण हुई या इसमें संस्था का हित निहित था? इसका ज्ञान शिव शर्मा मान हानि- केस को पढ़ कर भी आप को नहीं हुआ। न आप ने इसे समझने का ही कष्ट उठाया और पं० रामनारायण शर्मा का विनम्र पथ इसलिये नहीं उठ रहा कि वह ख्याति संचय की कामना से इस पथ की ओर अग्रसर हो रहे हैं। उनका व्यवसायिक कार्य इस सीमा से बहुत आगे निकल गया है। न वह सम्मेलन प्रधान पद के इच्छुक हैं न वह छिपकर नीति निर्देशन करना चाहते हैं। उनका एक ही उद्देश्य है जिस व्यक्ति ने इस २८ वर्ष में कुछ नहीं किया, जिसका ग्रुप आज भी महामण्डल पर अधिकार जमाये हुए हैं उसके पंजे से महामण्डल को मुक्त करना, बस। यदि यह भावना आपकी दृष्टि में बुरी है तो आपका ईश्वर ही आपको सत्पथ प्रदान कर सकता है।

महामण्डल पर अधिकार पूर्ण ग्रुप महामण्डल के धन को किस तरह व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये उपयोजित कर रहा है यह शिव शर्मा की सफाई के पत्रिका में प्रकाशित लेखों को पढ़ कर भी जय आयुर्वेद के सम्पादकों की आंखें नहीं खुलतीं तो उनकी आंखें कौन खोलेगा? आपको मालूम हो कि सम्मेलन पत्रिका में व्यक्तिगत झगड़े को कभी स्थान नहीं दिया गया। आज हिन्दी और अंग्रेजी में महामण्डल के धन से शिव शर्मा के वक्तव्य प्रकाशित होते रहते हैं और उसे कोई पूछने वाला नहीं। अधिवेशनों में इसलिये ५०-५० वैद्य इकट्ठे करके लाये जाते है कि यदि किसी ने विधान सम्बन्धी बात उठाने का साहस किया तो हम अधिवेशन की कार्यवाही आगे नहीं चलने देंगे। दिल्ली के इसी स्थायी समिति के अधिवेशन में उन्होंने खुल्लम खुल्ला यह बातें स्थानिक नेताओं से साफ साफ कहीं। यही नहीं इस ग्रुप के व्यक्ति आयुर्वेद विद्यालय भी स्थापित होने देना नहीं चाहते यह बात इसी २८ नवम्बर के अधिवेशन में देखी गई। यह प्रयत्न किया गया कि दिल्ली में नहीं कहीं और जगह आयुर्वेद विद्यालय स्थापित हो। सम्मेलन को भी दिल्ली से टालने का प्रयत्न किया गया और रेफरेन्डम कराने तक की धमकी दी गई।

महामण्डल की हित कामना का दम भरने वाला यह अधिकारपूर्ण ग्रुप वैद्यों की भलाई का कोई वास्तविक कार्य होने लगे तो उस में रोड़ा क्यों अटकाने लगता है? क्या महामण्डल की निष्क्रियता में ही उन का कोई स्वार्थ निहित हैं? यह बात 'जय आयुर्वेद' के सम्पादक द्वय एवं आयुर्वेद महामण्डल के सदस्यों के विचार करने की है।

सत्तारूढ़ ग्रुप की संस्था सम्बन्धी अनीतियों को शिवशर्मा मान हानि केसों में भली भांति सिद्ध किया जा चुका है। इन निर्णयों को पढ़ कर भी सम्पादक द्वय की आंखें नहीं खुलीं तो इस को समझ की बलिहारी न कहें तो और क्या कहें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैव-सिद्धान्त (GERMS THEORY) का विकास

चरक और सुश्रुत के समय जब कि आयुर्वेदिक पद्धति को दृढ़ीभूत किया जा रहा था अनेक विचार सिद्धान्त में परिणत हो रहे थे, उन्हीं दिनों रोगों की उत्पत्ति के कारणों पर भी विचार हुआ था। चरक का १२ वां वातकलाकलीय अध्याय बतलाता है कि उस समय की उक्त परिषद् में विवाद के बाद यह निश्चय हुआ था कि प्रत्येक रोग के होने में तीन दोष कारण हैं। इन्हीं के कोप से रोग और शान्त रहने से आरोग्यता प्राप्त होती है। इसी परिषद् के निर्णय को उस समय के समस्त आगत ऋषियों ने स्वीकार किया था किन्तु इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लेने पर भी हम देखते हैं कि वह इस पर पूर्णतया विश्वास नहीं करते थे। इसमें दो कारण थे (१) जिस परिषद् में बैठ कर इसका निर्णय हुआ था वहां उसका किसी ने प्रत्यक्षीकरण तो किया नहीं था केवल अनुमान के आधार पर उसे बहुमत मिला था इसीलिये वह मान्य हो गया था। उन्हें समय समय पर जब जब रोगियों को देखने का अवसर मिलता था अन्य कारणों की ओर भी उनका ध्यान जाना स्वाभाविक था। उनमें से एक कारण कृमि (जैव) भी थे। अदृश्य कृमियों द्वारा अनेक रोग होते हैं इस ओर केवल चरक का ही ध्यान नहीं गया था प्रत्युत हम देखते हैं कि सुश्रुत जी का भी विश्वास था कि रोगोत्पत्ति में अदृश्य कृमि भी कारण हैं और यह कृमि शरीर के भीतर रक्त में, स्रोतों में, त्वचा में, रोम कूपों में वास करते हैं इसका अनुभव उन्होंने किया था।

उस समय कृमि शब्द सूक्ष्म, अदृश्य जन्तुओं के लिये भी प्रयोग किया गया था। चाहे रेंगने वाले दृश्य कृमि हों या बिना हाथ पांव के गोल मठोल सबों के लिये ये ही एक कृमि शब्द प्रचलित था। इन सूक्ष्म कृमियों के सम्बन्ध में ग्रन्थकार कहता है:—

स्थानं रक्त वाहिन्यो धमन्यः संस्थानं,
अणवो वृत्ताश्चा पादाश्च वर्णताम्रश्च। चरक
ते सरक्ताश्च कृष्णाश्च स्निग्धाश्च पृथवस्तथा। सुश्रुत

इन आचार्यों ने ही इस पर विश्वास नहीं किया था प्रत्युत पश्चात के आचार्य भी इसी तरह अपने अनुभव के आधार पर विश्वास करते थे कि कृमि भी रोगों के कारण हैं यथा:—

रक्तवाहो सिरास्थाना रक्तजा जन्तवोऽणवः।
अपादा वृत्त ताम्राश्च। वाग्भट
केशादा लोम-विध्वन्सा लोम द्वीपा उदुम्वराः।
षट्ते कुष्ठैक कर्माणाः सह सौरस मातरः। वाग्भट

यदि हमारे आचार्य पूर्णतया त्रिदोष-वाद पर विश्वास करते तो रोगोत्पत्ति में अन्य कारणों की ओर उनका ध्यान कभी न जाता। दूसरे यदि त्रिदोष-वाद प्रत्यक्ष कर लिया गया होता तो इस कृमिवाद का आगे कोई न कोई खण्डन करता किन्तु हम इसके विपरीत यह देखते हैं कि प्रत्येक आचार्य ने कृमि-वाद को यहां तक कि टीकाकारों ने भी इसकी पुष्टि की है यथा:—

अस्माकं शरीराणि व्रणमुखेन,
अन्न पानादि द्वारेण प्रविष्टाः। सायनाचार्य
मक्षिकोप सर्पणात् व्रणे कृमयः पतन्ति। डल्हण।

पूर्वाचार्यों ने तो इस कृमिवाद को अपने अनुभव से जाना था। वह किस तरह? एक बालक की आंख दुखनी आई उसके साथ खेलने वाले बालकों की आंखें भी एक दो दिन के बाद दुःखनी आ गई। एक बालक को मसूरिका (माता) निकली दो चार दिन में पास पड़ौस के बालकों में भी उसी मसूरिका रोग का संचार होते देखा गया। एक व्यक्ति को जुकाम हो गया पास में बैठने वाले व्यक्ति को भी एक दो दिन के बाद जुकाम होते देखा गया। यद्यपि उस समय उक्त रोगों के संचार साधनों पर प्रत्यक्षतया देखने जानने के साधन प्राप्य नहीं थे किन्तु एक स्वस्थ व्यक्ति रोगी के पास बैठता उठता जब उसी बीमारी में ग्रसित होता पाया गया और ऐसे प्रमाण उन्हें अनेक स्थलों पर मिले तो उनका विश्वास इस कृमि-वाद पर बंध गया। तभी तो उन्होंने निश्चयात्मक रूप में कहा—

कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एवच।
प्रसंगाद गात्र संस्पर्शा न्निश्वासात् सहभोजनात्।
सह शय्या सनाच्चापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात्॥
औपसर्गिक रोगाश्च संक्रानन्ति नरान्नरम्। सुश्रुत

कुष्ठ, ज्वर, यक्ष्मा, अभिष्यन्द आदि अनेक रोग दूसरे रोगी के स्पर्श से लग जाते हैं या फैलते हैं। यह अनुभव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन आचार्यों को आज़ से दो सहस्र वर्ष पूर्व के समय में हुआ था किन्तु प्रत्यक्षीकरण के साधन न प्राप्य होने के कारण यह सिद्धान्त आगे न बढ़ सका। इसीलिये यह यश भारतीय चिकित्सकों को न मिला। वास्तव में उस पूर्व के युग में किसी व्यक्ति को यह भी अनुभव नहीं था कि अपनी इन ज्ञानेन्द्रियों से परे की वस्तुओं को भी प्रत्यक्ष किया जा सकता है। इसीलिये तो जहां हमारे यह भौतिक साधन काम नहीं देते थे वहां हम अपनी छठी ज्ञानेन्द्रिय को उसे जानने समझने के लिये आगे करते थे किन्तु उस ज्ञानेन्द्रिय के पास सिवाय कल्पना क्षेत्र में विचरण करने के और कोई साधन न था, कल्पना के लिये भी आधार होना चाहिये, वह थी हमारी परम्परा, आप्त वाक्य अनुमान आदि ऐसे साधन जो सच्चाई के समीप भी ले जा सकते थे और उससे दूर भी रख सकते थे। इसीलिये यह पूर्णतया विश्वसनीय नहीं माने जाते थे। तभी तो त्रिदोष-वाद के रहते कृमिवाद सामने आया।

यदि डच, फ्रेञ्च और अंग्रेज आज से तीन सौ वर्ष पूर्व भारत पर आक्रमण न करते और उसे अपने अधिकार में न कर लेते तो सच मानों भारत आज भी तिब्बत निवासियों की ही स्थिति में होता जहां आज तक ज्ञानोन्नति का प्रभाव नहीं पहुंच पाया है। यह विदेशी यदि भारत पर अधिकार न करते तो हमारा इस पृथ्वी के अन्य देशों के विवर्धित ज्ञान से वैसा ही सम्पर्क होना जैसा तिब्बत का भारत व चीन से है।

तीन सौ वर्ष से इन विदेशवासियों के विशेष सम्पर्क में आने पर आज भी हमारा वैद्य समाज प्रत्यक्षीकरण के साधनों से उसी तरह कोरा है जैसे तिब्बती। यहां और वहां वही हजारों वर्ष का पुराना रूढ़ीवाद दृढ़ता से अपना उपचार करता चला आ रहा है। लामा गुरु का मल मूत्र आज भी रोग निवारण की परम औषध है। रूढिवादिता में वैद्यों की दशा इससे कम नहीं है। आज भी हम रूढ़िवादिता के खूंटे से अपने को बांधे हुये प्रत्यक्षवाद को झूठा बताने का प्रयत्न करते हैं। सूक्ष्म दर्शक यन्त्र के द्वारा दिखाई देने वाले दृश्य को हम मायाजाल, भ्रमजाल बताते हैं कितनी शोचनीय स्थिति है। प्रत्यक्षीकरण साधनों के बिना वैद्य कभी भी वस्तु स्थिति को नहीं पा सकते। हमारे दर्शनकार जब प्रत्यक्ष को निर्भ्रम मानते हैं और कहते हैं 'प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्।' फिर वैद्य समाज का इसे न अपनाना क्या आयुर्वेद के अस्तित्व को खतरे में नहीं डाल रहा ?

१६ वीं शताब्दी से पूर्व संसार हम से निकृष्ट स्थिति में था, इस विश्व के मानव प्राणी के इतिहास पर दृष्टि डालने से स्पष्ट है कि जिस स्थिति में आज वैद्य समाज है इससे भी हीनावस्था में उस समय विश्व की सभ्य कहाने वाली जातियां थीं। १६ वीं शताब्दी से पूर्व जब तक प्रत्यक्षीकरण के साधन हाथ नहीं आये थे वे लोग भी कल्पना से ही काम लेते थे। उदाहरण के लिये इसी कृमिवाद को लीजिये। रोगों की उत्पत्ति में अणुरूप कृमि भी कारण होंगे इसे १६ शताब्दी से पूर्व किसी को गुमान तक नहीं था। यही नहीं, आयुर्वेदज्ञों ने तो उनके ज्ञान से १६सौ वर्ष पूर्व यह अनुभव कर लिया था कि ऐसे अदृश्य कृमि भी हैं जो शरीर में घुस कर रोग उत्पन्न करते हैं। शेष विश्व के मानव तो १६ शती से पूर्व तक इस ज्ञान से शून्य थे।

सब से पूर्व १६७१ ई० में कर्चर (Kircher) नामक एक यूरोपीय कैथलिक पादरी ने अदृश्य कृमियों के अस्तित्व को मालूम किया था। वह समय सूक्ष्म दर्शक यन्त्र के आविष्कार का था। उस यन्त्र से सूक्ष्म पदार्थ देखने पर बहुत बड़े आकार के दिखाई देते थे इसी कौतूहल को देख कर लोग सूक्ष्म दर्शक खरीद रहे थे उनमें से यह भी एक था। यह पादरी उस सूक्ष्म दर्शक से छोटे से छोटे कृमियों का निरीक्षण करता था तब उसे ऐसे सूक्ष्म कृमि भी दिखाई दिये जो उस सूक्ष्म दर्शक द्वारा कठिनाई से दिखाई देते थे। इसकी चर्चा उसने रविवारीय प्रार्थना के बाद जन समाज में की और कहा—देखा ईश्वर ने कितने सूक्ष्म जीव उत्पन्न किये हैं जो आंख से नहीं देखे जा सकते हैं यही ईश्वर की पहली सृष्टि थी। ईसाईयों में यह धारणा पायी जाती है कि गन्दी मोरी के कीड़े, फलों के कीड़े, पनीर में उत्पन्न होने वाले सूक्ष्म कृमि ही ईश्वर की सब से आदि सृष्टि है।

१६८३ ई० में ल्यूवेनहुक नामक एक डच खोजी ने अपने बनाये सूक्ष्म दर्शक यन्त्र से सही तौर पर जीवों को देखा। उसका बनाया हुआ यन्त्र बहुत अच्छा था, उसने दांतों की मैल में, विष्ठा में, जल में अनेक तरह के जीव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखे, उसने इस सम्बन्ध में जितनी जानकारी प्राप्त की थी इंगलैण्ड की रायल सोसाइटी को दी, उसे एक बार पेचिस हुई उस मल में उसने कीटाणु देखे किन्तु उसे इस बात का भान नहीं हुआ कि इस पेचिस में कारण भी यही कीटाणु हैं। हमने आयुर्वेदीय अणव: कृमि का ही कीटाणु पर्याय दिया है।

सूक्ष्म दर्शक का आविष्कार होने पर उसका प्रचार योरुप में हुआ किन्तु लगभग सौ बरस तक जैव विज्ञान और रोगों से इनके सम्बन्ध पर किसी व्यक्ति ने कोई खोज की हो ऐसा पता नहीं चलता। १७६१ ई० में प्लेनसिज़ (Plencez) नामक एक आष्ट्रियन वैज्ञानिक ने यह विचार प्रकट किये कि कुछ रोग जैवों द्वारा उत्पन्न होते हैं और हर एक रोग के जैव भिन्न भिन्न होते हैं। उसने यह सम्भावना बताई कि यह कीटाणु सूक्ष्म होने के कारण हवा मार्ग से एक बीमार मनुष्य से दूसरे मनुष्य तक पहुंच सकते हैं। और शरीर में पहुंचकर वही रोग उत्पन्न करते हैं जो रोगवाहक व्यक्ति में था। यूरुप में डबल रोटी बनाने का रिवाज उस समय था, आटे में जो खमीर उठता था, इसी व्यक्ति ने बताया कि इस खमीर को उठाने में एक प्रकार के कीटाणुओं का हाथ है किन्तु उस समय इतने सूक्ष्म साधन हाथ नहीं आये थे कि उनके द्वारा अपने कथन को प्रत्यक्ष कर दिखलाया जा सकता। वह तो प्रत्यक्ष प्रयोगवाद के आरम्भ का युग था और ईसाई मत का योरुप में प्रचार होने से यह माना जाता था कि सूक्ष्म कृमि बिना माता पिता के स्वत: उत्पन्न हो जाते हैं।

उन्हीं दिनों इटली के उत्तरी प्रान्त स्केण्डियानों का निवासी लेंजारो स्पैलैन्जानो सूक्ष्म दर्शक यन्त्र खरीद कर जैवों की सृष्टि का निरीक्षण करने लगा। उन्हीं दिनों १७६५ ई० के आस पास इंगलैंड निवासी नीडहम पादरी ने अपने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि सूक्ष्मदर्शी जैव बिना माता पिता के स्वत: उत्पन्न होते हैं। स्पैलेंजानो भी मांस, मटर आदि चीजों को उबाल कर बोतल में बन्द कर उनकी परीक्षा करता रहा और सूक्ष्म दर्शक से देखता जाँचता कि यह कीटाणु बिना माता पिता के कैसे उत्पन्न होते हैं। उसके प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया था कि जिन बोतलों में बिना उबाले हुए जल में मांस आदि रखे थे उन्हीं में कीटाणु विद्यमान रहे। उबाले और सुरक्षित वस्तु में जीवाणु उत्पन्न नहीं हुए, न उसमें अपने आप कीटाणु उत्पन्न हो सकते हैं। उसके द्वारा इस प्रयोग के आधार पर लिखे लेख ने पादरियों में हलचल मचा दी।

स्पैलैन्जानो ने ही अपने प्रयोगों द्वारा यह देखा था कि कुछ कीटाणु आपस में चिपके से दिखाई देते हैं फिर एक से दो हो जाते हैं वह यह नहीं जान सका था कि इनका यह वृद्धि का क्रम है। उन्हीं दिनों डी सोसरे (De Saussure) नामक एक अध्यापक भी सूक्ष्म दर्शक से कीटाणुओं की गतियों का अध्ययन करता करता ठीक तौर पर जान सका कि जो कीटाणु परस्पर दो कीटाणु से जुड़े लगते हैं वह वास्तव में एक कीटाणु से दो भागों में विभक्त होते समय ऐसा रूप बनाते हैं फिर वही कीटाणु देखते २ एक से दो बन जाते हैं। स्पैलेंजानो ने भी बाद में इस सत्यता को अपने प्रयोगों द्वारा जांच लिया था। उस समय का प्रयोगवाद कोई व्यवस्थित रूप का प्रयोगवाद नहीं था। सूक्ष्म दर्शक के आविष्कार से लोगों में सूक्ष्मदर्शी वस्तुओं को देखने की उत्सुकता ही प्रयोग के लिये प्रेरित कर रही थी। किन्तु १८ वीं शताब्दी के अन्त तक जैव-विज्ञान कुछ भी आगे नहीं बढ़ सका। बल्कि १९ वीं शताब्दी के मध्य आकर इतने समय में स्वतन्त्र रूप से लोगों द्वारा जो सूक्ष्मदर्शी जैवों के निरीक्षण में प्रयोग होते रहे और उस सम्बन्धी जानकारी बढ़ती गई उसी के परिणाम स्वरूप १८६० ई० के बाद व्यवस्थित प्रयोग विधियों से इसे देखा समझा जाने लगा।

079408

भारत में सूक्ष्म दर्शक यन्त्र अंग्रेजों के आगमन से बहुत पीछे आये। जब यहां कालेज खुले तब ही उन कालेजों की प्रयोगशालाओं में लाकर लगाये गये। जिसकी सहायता से सूक्ष्म जगत में मनुष्य का प्रवेश होता है वैद्य समाज को वह सूक्ष्मदर्शक आज तक दुर्लभ रहे हैं फिर भला वह इस सूक्ष्म जगत को कैसे जान सकते? जब प्रत्यक्षीकरण के साधन ही पास में न हों तो उस तक कैसे पहुँचा जा सकता है?

जिस व्यक्ति ने जैव विज्ञान को व्यवस्थित रूप दिया वह फ्रांस का निवासी लुई पाश्चर और जर्मनी का निवासी काच (Kach) था। लुई पाश्चुर (Lui Pasteur)

[शेष पृष्ठ २८ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्ताणुओं की उत्पत्ति का अद्भुत क्रम

शरीर की व्यवस्था एक जनराज्य के तुल्य है। जनराज्य का अर्थ है सारे देश के जन मिल कर परस्पर सहयोग से योग्य व्यक्तियों को चुन कर सारे देश का प्रबन्ध उनके हाथ में देते हैं और उनके द्वारा इस बात का प्रबन्ध होता है कि देश का कोई भी जन या समुदाय दुःखी न होने पावे। सब को भोजन, वस्त्र आदि सुख सुविधा के साधन पहुंचते रहें। सारे देश के फैले जनसमुदाय का प्रबन्ध चलाने के लिये उन्हें फिर प्रत्येक काम का विभाग बनाना पड़ता है और उन विभागों का प्रबन्ध कुछ विशेष जनों के हाथ में दे दिया जाता है वे सब मिल कर अपने अपने विभागों द्वारा समस्त कार्य का समुचित प्रबन्ध करते हैं। बिलकुल यही बात हम शरीर के भीतर व बाहर सब जगह देखते हैं। शरीर रूपी जन राज्य के बाहरी विभाग हैं हाथ, पैर कर्मेन्द्रियां, ज्ञानेन्द्रियां आदि। जिनके सुपुर्द एक एक काम किया हुआ है आंख देखती है और वह देखकर क्या करना है किधर जाना है इस ओर ध्यान बनाये रखती है। नासिका गन्ध द्वारा इस बात का ध्यान रखती है कि असह्य गन्ध पूर्ण कोई वायु शरीर रूपी राज्य के भीतर प्रविष्ट करने न पावे। रसना स्वाद से खाद्य वस्तु को देख कर उत्तम उपयोगी वस्तु को शरीर के भीतर जाने देती है। हाथ उठाने धरने खाना बनाने कौर मुंह में डालने आदि का अनेक काम करते हैं, पैर चल फिर कर वहां पहुंचते हैं जहां से शरीर के लिये कोई वस्तु लाने का प्रयोजन होता है। इसी तरह शरीर के भीतर भी भोजन को चबाने, उसे गलाने और उसका रस बनाने के विभाग इलहदा २ है। जो शरीरोपयोगी खाद्य तैयार किया जाता है उस तैयार खाद्य में से उपयोगी अंश को ग्रहण करने वाला विभाग इलहदा है जहां सार सार ग्रहण कर फोक फोक भिन्न कर दिया जाता है। इससे आगे फिर सारे शरीर के जनों तक भोजन पहुंचाने वितरण करने का भी प्रबन्ध है और एक एक परिवार के या जनों के द्वारा त्यागे मलों को लेकर ऐसे स्थान पर पहुंचाने का भी प्रबन्ध है जहां वह भिन्न करके शरीर से बाहर निकाल दिये जाते हैं। इन सारे प्रबन्धों का ध्यान रखना सारी व्यवस्था के संचालन का काम करना किसी एक आत्म सत्ता के बूते का यह काम नहीं। यह काम तो सर्व जन हिताय सर्व जन सुखाय की दृष्टि से परस्पर के सहयोग द्वारा अनेकों आत्म सत्ता के समूह से ही चल सकता है और प्रत्यक्ष में चलता दिखाई दे रहा है। फिर उसे एक आत्म सत्ता वाला कैसे कहा जा सकता है। जब शरीर का एक एक कण स्वतः चैतन्य हो और उस कण कण को शरीर से भिन्न कर के जब उसे चैतन्य रखा जा सकता हो तो वह फिर नित्यः सर्व गतः स्थाणु देह व्यापी सत्ता कैसे मानी जाय? शरीर की क्षय पूर्ति के जो व्यापार चलते रहते हैं यह व्यापार एक जीवात्मा मानने से उसकी संगति का कोई मेल नहीं बैठता।

इस समय हमारे सामने ऐसे सूक्ष्म साधन आ गये हैं जिनसे शरीर के सूक्ष्म से सूक्ष्म अवयवों कोषाओं को ही नहीं देखा जा सका है प्रत्युत उनके भीतर चलने वाले जीवन रसायन के व्यापार को भी सही रूप में देखा जा रहा है। और आजकल वैद्य नहीं किन्तु दूसरे प्रतिस्पर्द्धी चिकित्सक हमारे शरीर का रक्त निकाल कर महीनों उसे जैसा का तैसा बनाये रखते हैं। बैंक में उसे जमा रखते हैं फिर उपयोग करते हैं। और वह एक बूंद में कितने रक्ताणु, श्वेताणु, प्लेटाणु विद्यमान हैं इन्हें गणना करके सही सही बतला देते हैं। यह रक्ताणु, श्वेताणु निर्जीव नहीं प्रत्युत सजीव कणिकाएं होती हैं। और इनके कार्य व्यापार ऐसे हैं जिनको बिना जीवन शक्ति रहते किया नहीं जा सकता। रक्ताणु फुफ्फुस में पहुंच कर कज्जल द्विऊष्मिद को अपनी रंजनी से मुक्त करते हैं और वहां से फिर ऊष्मजन (प्राणप्रद) वायु को उस रंजनी में भर कर रक्त प्रवाह के साथ शरीर की एक एक कोषाओं तक पहुंचाते हैं और उन कोषाओं को ऊष्मजन देकर वहां से कज्जल द्विऊष्मिद भर कर फिर फुफ्फुस में पहुंचाते हैं इस तरह यह इनका शरीर रक्षा का व्यापार अहर्निश चलता रहता है। रक्ताणु यदि निर्जीव हो तो वह इस कठिन व्यापार को कभी नहीं कर सकते। यही नहीं यह रक्ताणु शरीर की सजीव कोषाओं से उत्पन्न होते हैं, बढ़ते हैं, मरते हैं। जन्म मरण का व्यापार सजीव जगत में ही चलता है निर्जीव जगत में यह व्यापार नहीं होता। इसलिये शरीर एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मा वाला नहीं कहा जा सकता प्रत्युत अनगणित आत्माओं के समूह का यह एक विशाल राज्य है जिसके भीतर व बाहर उन सारी कोषाओं के सहयोग से जीवन को स्थिर रखने उसके चलाने की व्यवस्था मिल कर बनी है और उन सब के सहयोग से ही यह शरीर रूपी राज्य व्यवस्थित रूप में चलता रहता है। इसका प्रमाण क्या ? इसी बात को बताने के लिये हम रक्ताणुओं की उत्पत्ति को वैद्य समाज के सामने रख रहे हैं कि वह देखे यह व्यवस्था किस तरह परस्पर के सहयोग से चल रही है।

रक्ताणुओं की उत्पत्ति कहाँ पर होती है ? हम आयुर्वेदज्ञ इस बात को नहीं जान सके थे कि रक्त की भी कणिकाएं होती हैं हम तो समझते थे 'रसाद्रक्तं' रस से रक्त बनता है।

सखल्वाप्योरसो यकृत् प्लीहानो प्राप्य रागमुपेति। सुश्रुत रञ्जकं तु यकृत् प्लीहांस्तद्रस शोणितं नयेत्।

यह रस यकृत प्लीहा में जाकर लाल होता है यकृत प्लीहा उस रस को जब रंजन करते हैं तब वह रस लाल (शोणित) बन जाता है। हम रक्त को रसका परिवर्तित रूप मानते थे उसकी कणिकाएं शरीर में कहां उत्पन्न होती हैं हम नहीं जानते थे। यह ठीक है यकृत में रक्त को रंजन करने वाले द्रव्य की रचना होती है यह रक्त रंजनी ही रक्त कणिकाओं को लाल बनाती हैं किन्तु लाल बनने वाली वस्तु रस नहीं होती। वास्तव में हमारे पास इस व्यवस्था को देखने समझने के सूक्ष्म साधन नहीं थे। यकृत में तो कई ओर से रक्त इसलिये अधिक पहुँचता है क्योंकि वह रक्त का संस्कार कर उसे स्वच्छता प्रदान करता हैं और प्लीहा में इसलिये रक्त अधिक पहुँच कर वहां एकत्र रहता है क्योंकि वहाँ अपूर्ण, अधबनी, निर्बल, अल्पवयस्क कणिकाओं को नष्ट किया जाता है और छांट छांट कर वह रक्त कणिकायें आगे प्रवाह में छोड़ी जाती हैं। जो पूर्ण वयस्क कार्यक्षम होती हैं वह भेजी हैं इन दोनों अंगों में सदा रक्त की मात्रा इसीलिये अधिक बनी रहती है। इस बात को प्राणियों को मारने के बाद उनके यकृत प्लीहा को देखने से स्पष्ट देखा जाता है। इसी बात को देखकर हमारे आचार्यों ने अनुमान कर लिया था कि रस जब पृथक् प्लीहा में पहुंचता है तो यहाँ उसकी रंगाई होती है इन अंगों में जो रक्त अधिक मिलता है वह रस रंजित होकर फिर परिभ्रमण में जाता है। ऐसा समझना केवल अनुमान मात्र था, वस्तुतः यह बात नहीं।

रक्तोत्पत्ति कहां पर कैसे होती है ? यह बात प्रत्यक्ष साधन मिलने के बाद ही जानी जा सकी है। आप यदि किसी मुर्गी के ६-७ दिन के अंडे को इस ढंग से तोड़ दें कि उसके भीतर का कलल टूटने या विकृत न होने पावे तो आप देखेंगे इसके भीतर पीत लोंदे पर एक स्थान पर हृदय और कुछ रक्त वाहनियां उत्पन्न हो चुकी होंगी। हृदयगति शील दिखाई देगा और उन वाहनियों में रक्ताणु उतने ही स्थान में परिभ्रमण करते दिखाई देंगे। नंगी आंखों से यह दृश्य चाहे पूर्ण रूप में विस्तार के साथ न दिखाई दे पर दिखता निर्भ्रम है। यदि हम इस लोंदे को सूक्ष्म दर्शक के नीचे रख कर देखेंगे तो रक्त वाहनियों में रक्त कणिकाओं की उत्पत्ति के स्थल तथा वहां से छूटकर उनके बहने को भी स्पष्ट देखा जा सकता है।

जो कुछ मुर्गी के गर्भ (अण्डे) में हम देखते हैं ठीक यही व्यवस्था मानवीय गर्भ में पाई जाती है यह तो हम मानते हैं कि "शुक्र शोणित संयोगे गर्भः संजायते नरः।" शुक्र और रज (डिम्ब) अणुओं का संयोग जब गर्भाशय के भीतर होता है तो उन दोनों के मेल से गर्भ स्थापन होता है। गर्भ स्थापन के कारण शुक्र, रज निर्जीव नहीं होते यह सजीव होते हैं इनकी तीव्र गति को हम सूक्ष्म दर्शक में अच्छी तरह देख सकते हैं, इस प्रत्यक्ष के प्रमाण ढूंढने की आवश्यकता नहीं। इन दोनों के संयोग से गर्भ कोषा बनती है। वह गर्भ कोषा कैसे बढ़ती है ? इसको पूर्व काल में प्रत्यक्ष नहीं किया जा सकता था। वह कोषा फिर एक से दो, दो से चार रूप में द्विगुणित चतुर्गुणित होती चली जाती हैं इसको कोष विभाजन क्रम कहते हैं। जैसा पिता है ऐसे ही रूप, गुण, स्वभाव की रचना क्यों होती है ? इसको भी देखा समझा गया है। शुक्र शोणित की रचना के भीतर पैत्रिक संस्कारों की एक माला जालवत् फैली होती है उन्हीं संस्कारी कणिकाओं द्वारा कोषा को वृद्धि के समय मार्ग दर्शन मिलता रहता हैं। गर्भ की इस २० दिन तक की स्थिति को आयुर्वेद में कलल संज्ञा (Blastula) दी हुई है। २१ वें दिन उस भ्रूण पर भ्रूणवेष्ट (Mesoderm) बनता है और इस भ्रूणवेष्ट पर उसी तरह हृदय और रक्त वाहनियों का प्रादुर्भाव होता है जैसा कि हमने अण्डे के गर्भ में देखा है। जैसे जैसे हृदय और उससे संलग्नित स्रोतों का जाल बढ़ता है इन्हीं वाहनियों की आन्तरिक कोषाओं में सर्व प्रथम रक्त कणिकाओं की उत्पत्ति होती है। यह वाहनियां (धमनियां)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्तव में रक्तवाही स्रोतों का मूल होता है जिसका काम रक्त को बहाना, आगे ले जाना है किन्तु गर्भ में अंगों की रचना से पूर्व हृदय और रक्त "देहस्य रुधिरं मूलं" शरीर का मूल अंग होने से सर्व प्रथम उत्पन्न होता है इसका आचार्यों ने अनुभव अवश्य किया था।

हृदय की रचना २१ वें दिन के बाद आरम्भ होकर छठे सप्ताह तक पूर्ण हो जाती है और वह गति शील हो जाता है। इधर वाहनियों में जो रक्त कणिकाएं उत्पन्न होती हैं वह भ्रूण के रक्त खातों में संचित होती रहती। जब हृदय गति शील होता है और वाहनियां भी फैल कर सारे भ्रूण को आवेष्ठित कर लेती हैं तो वह रक्त फिर खातों से निकल कर वाहनियों में आ जाता है और उन रक्त वाहनियों में भ्रमण करने लगता है। १½ महीने के बाद उस भ्रूण में यकृत प्लीहा की रचना आरम्भ हो जाती है और ३ मास तक यह दोनों अंग बन कर काम करने में समर्थ हो जाते हैं। जब तक यकृत प्लीहा की रचना पूर्ण नहीं होती और वह कार्यक्षम नहीं होते तब तक तो वाहनियां रक्त कणिकाओं का उत्पादन करती रहती हैं। ३ मास के बाद यकृत कार्य क्षम होकर रक्त कणिकाओं को जन्म देने लगता है और ५ मास के भ्रूण में प्लीहा पूर्ण कार्यक्षम;होकर रक्ताणुओं का उत्पादन प्रारम्भ कर देती है। इसके साथ ही प्रागस्थियों से जब अस्थियां बनने लगती है तो उन अस्थियों की मज्जा कोषाओं में भी रक्ताणुओं की रचना होने लग जाती है। अर्थात् पहले तो रक्ताणुओं का उत्पत्ति स्थल स्रोत थे, फिर यकृत प्लीहा हुए फिर अस्थि मज्जा बनी। जब तक बालक गर्भ में रहा यकृत प्लीहा रक्ताणु उत्पादन करते रहे। जहां बच्चा गर्भ से बाहर आया इसके बाद यकृत, प्लीहा अपना अपना वास्तविक काम संभालने लगते हैं और उनमें रक्तोत्पादन बन्द हो जाता है।

इन रक्ताणुओं की उत्पत्ति व्यवस्था आरम्भ में तो स्रोतों द्वारा थी फिर उसका स्थान यकृत ने लिया फिर प्लीहा और फिर अस्थि मज्जा ने लिया। जन्म पूर्व तक यकृत प्लीहा इस कार्य का सम्पादन करते रहे जन्म के बाद जब अस्थि विकास हुआ उसमें मज्जा कोषाएं बनीं और उन्होंने यह काम सम्भाल लिया। अस्थि मज्जा की कोषाएं फिर जावन भर रक्त कणिकाओं का उत्पादन करती रहती हैं। इस व्यवस्था को देखकर विस्मय होता है कि देखो! स्रोतों का काम है तरल वस्तुओं को अपने भीतर से बहाना उस तरल वस्तुओं के अंशांश भागों को अपने स्तरों से चूने देना ताकि शरीर की प्रत्येक कोषा को आवश्यक खुराक पानी मिलता रहे। रक्तोत्पादन इनका काम नहीं था पर इन्होंने किया यकृत का काम रक्तरंजनी का उत्पादन, पित्तोत्पादन, त्रिपाक रसों का शोधन परिमार्जन, विषों का निर्विषीकरण आदि कार्य हैं। प्लीहा का काम है रक्ताणुओं को संचय करके रखना, रक्ताणुकी छंटनी करना अयोग्य, अकार्यकर, टूटे फूटे जीर्ण शीर्ण रक्ताणु को मार डालना उनकी रंजनी मुक्त कर यकृत के पास भेजना, पित्तरंजनी बनाना, लोह को मुक्त करके संचित कर रखना आदि किन्तु सहयोग के नाते शरीर में जब कि एक वस्तु के निर्माण की आवश्यकता है और उसके निर्माण कर्त्ता अभी शरीर में उत्पन्न ही नहीं हुए तो उस काम को दूसरे अंगों ने पूर्ण किया, फिर उस अंग के बाद अन्य अंगों का विकास हुआ तो यह भी इस आवश्यक कार्य का सम्पादन करने लगे, इस तरह के पारस्परिक सहयोग से शरीर की कोषाओं में ऐसी व्यवस्था पाई गई कि आवश्यकता के समय उसकी पूर्ति दूसरे अंग करते देखें गये। यथा मान लीजिए चोट लगी और एकाएक शरीर से बहुत सा रक्त निकल गया। अथवा शरीर की मज्जा में कोई विकार उत्पन्न हो गया और वहां रक्ताणुओं का उत्पादन घट गया या बन्द हो गया तो इस स्थिति में यकृत प्लीहा फिर सक्रिय हो उठते हैं उनके भीतर रक्ताणु उत्पादक कोषाओं को पुनः प्रेरणा मिलती है कि वे रक्ताणुओं की कमी को शीघ्र पूर्ण करें, वह फिर रक्ताणुओं को उत्पन्न करने लग जाते हैं और जब तक अस्थि मज्जाकोषाएं रक्ताणूत्पादन में समर्थ नहीं होती तब तक यह अंग रक्ताणुओं का उत्पादन करते रहते हैं।

शरीर की रचना की व्यवस्था ऐसी है कि जिस आरम्भिक कोषाओं से जब विशेष अंगों की कोषाएं प्रादुर्भूत हो जाती हैं तो उनसे सजाति वर्ग की ही कोषाओं का उत्पादन चलता है। मांस से मांस की, त्वचा से त्वचा की, वाल से वाल की अस्थि, नाड़ी आदि से इन्हीं सजातीय कोषाओं की उत्पत्ति होती रहती है और शरीर के जितने भी अंग हैं वह एक दूसरे से जुड़ कर शरीर के आकार में फैले हुए हैं इन अंगों की कोषाएं स्थानान्तरित नहीं हो सकतीं सदा एक दूसरे से संलग्न ही बनी रहती हैं। किन्तु रक्ताणु, श्वेताणु ऐसी शरीर की एक स्वतन्त्र सजीव कणिकाएं हैं जो जन्म के बाद प्रौढ़ होते ही रक्त प्रवाह में धकेल दी जाती हैं और वह समस्त शरीर की कोषाओं को भोजन, और पानी हवा पहुँचाने का काम करती हुई सदा एक प्रहरी के तुल्य जीवन व्यतीत करती, शरीर रक्षा के निमित्त अपनी बलि चढ़ाती रहती हैं। यह व्यवस्था कितनी आश्चर्यजनक है जिसका ज्ञान हम वैद्यों को इस नव्य युग के उदय होने पर हो सका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुलस्थिराल (CHOLESTEROL) का महत्व

हमारे शरीर के अवयवों, अंगों में विद्यमान रहने वाली अनेक चीजें पाई जाती हैं उनमें से एक महत्व की चीज कुलस्थिराल भी है। वैद्य इस नये नाम को पढ़कर शायद आश्चर्यचकित हों। पर उन्हें अपने विचारों में परिवर्तन करना होगा और यह मानना होगा कि विश्व में ज्ञान विज्ञान की मात्रा बढ़ रही है उसीका यह परिणाम है कि हमारे शरीर के भीतर ऐसी ऐसी वस्तुओं को जाना और भिन्न किया जा सका जिनका हमें स्वप्न में भी ज्ञान नहीं था उन्हीं में से यह एक कुलस्थिराल भी है।

यह कुलस्थिराल क्या है? हमारे शरीर की क्षय पूर्ति वृद्धि तीन वस्तुओं (१) अम्लजनीय (२) शार्करी (३) स्नेही से होती है। स्नेहों में घृत तेल चर्बी आदि समस्त चिकनाई देने वाले द्रव्य स्नेहाम्ल और मधुरिन (ग्लिसरीन) दो यौगिक पदार्थों के मेल से बनते हैं, स्नेह की अणुरचना में १८ कज्जल के, ६६ उदजन के और एक अणु ऊष्मजनका सम्मिलित होता है जो दो परमाणुओं का बना होता है ये सब स्नेहाम्ल और मधुरिन के यौगिक होते हैं और उनके मिलने से बनते हैं। इन स्नेहों के स्वरूप को किस तरह जाना जाय? विद्वानों ने इसकी परीक्षा निकाली है वह निम्न हैं (१) कोई भी स्नेह लो वह वर्ण रहित होते हैं तेलों में वर्ण स्नेह का अपना नहीं होता वानस्पतिक अंश से आता है जिसे दूर कर देने पर वही वनस्पति घृत बन जाता है (२) इनमें गन्ध भी नहीं होती। (३) यह जल में नहीं घुलते। (४) हलाहल (अल्कोहल) ईथर, क्लोरोफार्म, बैन्ज़ीन, कज्जल द्विवलिकाइद में घुल जाते हैं(५)पानी में डालकर उबालने से या बिकरों के सम्पर्क में रखकर गरम करने पर उनका उद विश्लेषण होता है(६) पित्त या क्षारीय घोलों में इन्हें डालकर मथने से साबुनी करण होता है, और वह पायसी रूप धारण करता है। इन्हीं स्नेहों में मिले हुए कुलस्थिराल का सबसे पहले पता चला। रसायन शास्त्रियों ने इन स्नेहों से भिन्न करके उसके स्वरूप को जानने और उसको पहिचानने का प्रयत्न किया तो वह निम्न परीक्षा से जाना जा सका:—(१) कुलस्थिराल निर्गन्ध वस्तु है (२) यह स्वरूप से बड़ा स्वच्छ मोती जैसा चमकीला प्लेटों की आकृति का इसका अणु होता है (३) इसे हली (स्पिरिट)=मद्यसार में डाला जाय तो उसमें विद्यमान जल के एक अणु को यह ग्रहण कर स्फटकीकृत (रवारूप) हो जाता है किन्तु इसे फिर जलीय क्वथनांक पर रखा जाय तो पुनः वह जल का अणु छोड़ देता है (४) जल में नहीं घुलता। कुछ उष्ण हलाहल, ईथर में घुल जाता है। (५) इसके मणिभीय रूप को १०८ श० का उत्ताप दें तो वह द्रव हो जाता है इसकी अणु रचना में कज्जल के २७, उदजन के ४५ तथा उदजन ऊष्मजन का मिला अणु सम्मिलित है।

क्या यह हमारे शरीर में विद्यमान रहता है? सूक्ष्म अनुसन्धानों से ज्ञात हुआ है कि इसकी उपस्थिति प्रत्येक कोष के आवरक में पाई जाती है। यकृत में, रक्त में इसकी मात्रा सबसे अधिक रहती है। रक्त में तो यह रक्त कणिकाओं में भिन्न रहता है, तो रक्त-रस में भिन्न। इससे भिन्न नाड़ी मण्डल सुषुम्ना व मस्तिष्क के श्वेतांश में इसकी काफी उपस्थिति पाई जाती है। पित्त और पित्ताशय प्लीहा के अवयवों में भी यह उपस्थित रहता है। पित्त में तो घुला यह आंतों में और वहां से रक्त में पहुँचता रहता है। जो स्नेही पदार्थ हम खाते हैं उदरदरी में जाकर पित्त के योग से वह स्नेहाम्ल तथा मधुरिन में विभक्त होकर रक्त में पहुँचता है। रक्त में विद्यमान स्नेहाम्लों के साथ ही यह भी क्रियाशील रहता है। जितना भी कुलस्थिराल शरीर के अवयवों में पाया जाता है तथा रक्त-रस में रहता है, इसकी विद्यमानता से शरीर को अनेक लाभ मिलते हैं इसको भी अच्छी तरह देखा व समझा गया है। ज्ञात हुआ है कि (१) कुलस्थिराल जो कोष के आवरक में सदा विद्यमान रहता है उसी की उपस्थिति से कोषाएं कोषाद्यम (प्रोटोप्लाज्म) का निर्माण करने में पूर्ण समर्थ रहती हैं इसकी कमी से कोषाद्यम की क्रिया घट जाती है। (२) कोषाओं का जो जीवन व्यापार क्षय पूर्ति के रूप में चलता रहता है और कोषाद्यम में जो विषैले पदार्थ उत्पन्न होते रहते हैं यह उनको हटाने में कोषावरण की सहायता करता है। (३) मस्तिष्क सुषुम्ना-काण्ड के कार्य-व्यापार के समय उन्हें स्थिर रखकर आन्तरिक व्यवस्था को बनाये रखने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में पूर्ण सहायक है। इसीलिये तो मस्तुलुंग (मस्तिष्क) के श्वेत भाग में सुषुम्ना में इसकी मात्रा सदा ही काफी बनी रहती है अर्थात् यह उसकी रचना का एक अंग है (४) यह हमारी त्वचा के कोषाओं की कला में विद्यमान रह कर शीतोष्ण सहन करने में उसे सक्षम बनाये रखता है। (५) स्नेह के सात्म्यीकरण, दहन समय जब वह रूपान्तरित होते हैं यौगिक विच्छेद के समय उसे सक्रिय रखता हैं। (६) त्वचा के नीचे स्नेह सग्रह के स्थानों में स्नेहाम्लों और मधुरिनों को पुन: मिलाकर स्नेह के रूप में ले जाने और संग्रहीत करने में त्वक् कोषाओं की सहायता करता है। (७) यह मुख्यतया खाद्योजांश(विटामिन)डी के निर्माण में सदा रूपान्तरित होता है और इस विटामिन डी द्वारा अस्थि निर्माण के लिये चून स्फुरेत (कैल्शियमफास्फेट) चून दुग्धेत को सक्रिय रूप प्रदान करता है तभी तो चूनजम् अस्थि भवन के निर्माण के योग्य होता है।

खाद्योजांश डी के रूप में यह सीधा बदलता है या बीच के किसी अन्य यौगिक में जाकर बदलता है इस बात की खोज होने पर पता चला कि यह कुलस्थिराल से उर्गास्थिराल (Ergosterol) या अस्थिराल (Sterol) में बदलता है फिर भी वह खाद्योजांश डी में बदल जाता है। इसी ढूंढ खोज से ज्ञात हुआ कि स्नेह के साथ जहां कुलस्थिराल विद्यमान रहता है उसी के साथ उर्गास्थिराल अस्थिराल भी विद्यमान रहता है। जिसका मतलब यह लिया गया है कि कुलस्थिराल से जैसे जैसे उर्गास्थिराल बनता है और वह पराकासनी रश्मि (अल्ट्रावायलेटरे) प्रभाव से खाद्योजांश डी में बदलता रहता है और आगे यह खाद्योजांश डी बनकर चूनस्फुरेत को सक्रिय बनाने में अपने को उसके साथ तन्मय कर देता है तब चून के यौगिक अस्थि भवन के निर्माण योग्य होते हैं। इससे सिद्ध होता है कि अस्थि निर्माणार्थ कुलस्थिराल की विद्यमानता आवश्यक है।

यह कुलस्थिराल खाद्यपेय द्रव्यों के मार्ग से ही शरीर में पहुँचता है या कि स्वयम् शरीरावयवों की कोषाएं भी इसे निर्माण कर सकती है ? सूक्ष्म अनुसन्धानों से ज्ञात हो गया है कि यह मानव शरीर में ही नहीं अन्य प्राणियों के अंगों में उसी तरह विद्यमान रहता है जैसा कि मानव प्राणी के अंगों में पाया जाता है इससे भिन्न अण्डे के पीतांश में स्नेहों में भी विद्यमान रहता है। वनस्पतिक तेलों में जब उन्हें पराकासनी रश्मि में रखा जाय तो वहां उत्पन्न होता है। इसी तरह प्रत्येक प्राणी भी पराकासनी रश्मि शोषण कर स्वयम् भी कुलस्थिराल की रचना अपने शरीर में करते रहते हैं। इस तरह यह कुलस्थिराल एक महत्व का पदार्थ होने से मनुष्य शरीर की कोषाएं स्वयम् भी बनाती हैं और बना बनाया प्राणियों के शरीर से वनस्पतियों से भी प्राप्त करती रहती हैं।

इसकी शरीर में कितनी मात्रा सदा विद्यमान रहती है ? इस बात की भी खूब खोज हुई मालून हुआ कि जो व्यक्ति कृश होते हैं उनके भीतर इसकी मात्रा साधारणतया न्यून होती है किन्तु जो मोटे मेदस्वी होते हैं उनके शरीर में इसकी मात्रा सदा अधिक रहती है। सूक्ष्म हिसाबों से देखा गया है और प्रतिघन शतांश लम्बन (मीटर) रक्त में इसकी विद्यमान मात्रा को जांचा गया है वह १५० से २०० सहस्रांश धान्य साधारणत: रहती है जिसमें से आधी मात्रा रक्त कणिकाओं में और आधी रक्त रस में विद्यमान रहती है कभी २ इसकी रक्त रस में मात्रा बढ़ जाती है वह २५० से ३०० सहस्रांश धान्य तक पाई जाती है।

निम्न व्यक्तियों या रोगियों में इसकी मात्रा अधिक मिलती है (१) अधिक मक्खन, मलाई अण्डा, यकृत, मगज खाने वालों में (२) गर्भवती स्त्री में शायद यह द्रव्य गर्भस्थ बालक के कोषवर्धनार्थ अधिक उपयोग में आता हो ऐसा समझा जाता है। (३) पित्ताश्मरी के बनने में (४) कर्कट व्रणों (केन्सरव्रणों) के प्रादुर्भूत काल में (५) चुल्लिका ग्रन्थि के विकारी होने पर (६) मधुमेह के रोगियों में।

अब तो मधुमेह की साध्यासाध्यता को जानने के लिये रक्त में विद्यमान कुलस्थिराल की मात्रा से ही उसका निश्चय होता है। कुलस्थिराल की मात्रा जब रक्त में बढ़ी होती है तो रक्त रस बिल्कुल दूधिया रहता है और जिस का रक्त दूधिया रहता है ऐसे रोगियों में उपद्रव भी बढ़े हुए देखे जाते हैं अकस्मात हृद्गति अवरोध प्राय: इसी कुलस्थिराल की वृद्धि से हुआ करता है। क्योंकि रक्त रस

[शेष पृष्ठ ३१ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

卐 हृद्-शल्य चिकित्सा का चमत्कार 卐

पटियाला मन्त्रालय के पोष्ट आफिस में सेवाचन्द नामक एक पोष्टमैन काम करता हैं। उसको आज दो वर्ष से हृदय कपाट की विकृति का कष्ट चला आ रहा था, वह बेचारा इस रोग से बड़ा ही परेशान रहता था, और इस कष्ट के कारण प्रायः छुट्टियां लेता रहता था। कभी कभी घर बैठा बैठा अखबार पढ़ कर कष्ट का समय व्यतीत करता था। एक दिन एक अखबार में राष्ट्रपति आइजन होवर के हृद्रोग विशेषज्ञ डा० पाल डडली ह्वाट का "हृदयरोग से बचने के उपाय" नामक एक लेख का शीर्षक उसने पढ़ा। फिर लेख भी पढ़ा, उसमें बतलाया गया था कि अमेरिका में हृदय के अमुक अमुक रोगों की सफलता के साथ शल्य क्रिया हो रही है और जीवन से निराश व्यक्ति पुनः जीवन का सुख प्राप्त करने लग रहे हैं। इस लेख को पढ़कर उसने अपनी हृद्-रोग की दुःखद कहानी डा० ह्वाइट को लिख भेजी। दुखी मनुष्य जिस तरह हाथ पैर मारता है और जीवित रहने की इच्छा करता है, सेवाचन्द ने ऐसा ही प्रयत्न किया। उसका पत्र डा० ह्वाइट ने जब पढ़ा दयार्द्र हो उठे, उन्होंने उसे उत्तर दिया कि तुम दिल्ली के लेडी हार्डिंग मेडिकल कालेज की प्रोफेसर डा० पद्मावती को मेरे पत्र को साथ लेकर मिलो और उनकी जांच पड़ताल का परिणाम भेजो, ताकि जाना जा सके कि तुम्हारे हृदय कपाट की शल्य चिकित्सा हो सकती है या नहीं। इस पत्र के मिलते ही उसे कुछ जीवन की आशा की सुनहरी किरणों का भान हुआ। गरीब होने के कारण आर्थिक कठिनाई की ओर उसका बार बार ध्यान जाता था पर उसने साहस कर छुट्टी ली और दिल्ली आकर डा० पद्मावती के पास पहुंचा, डा० ह्वाइट का उन्हें पत्र दिया। डा० पद्मावती ने उसके हृदय की अच्छी तरह परीक्षा लेकर निदान-पत्र लिख कर दे दिया कि यह निदान-पत्र डा० ह्वाइट को भेज दो। उसने यह निदान-पत्र डा० ह्वाइट को भेज दिया। डा० ह्वाइट निदान-पत्र पढ़ इस निश्चय पर पहुंचे कि इसकी शल्य-चिकित्सा की जाने पर यह ठीक हो सकता है। डा० ह्वाइट ने उसे परामर्श दिया कि तुम्हारी बिमारी शल्य उपचार से दूर हो सकती है। तुम अमेरिका आने जाने का खर्च सम्भव है बर्दाश्त न कर सको इसलिये इटली अमेरिका की अपेक्षा सस्ता है वहां पहुंचो, तुम्हारा उपचार हो जायगा। उसने सारी सूचना इटली के शल्य चिकित्सक को भेज दी। पर उस बेचारे के पास पैसा कहां था जो इटली पहुंचता निराश होकर बैठा रहा। एक दिन फिर बैठा बैठा अखबार पढ़ रहा था उसने शीर्षक देखा "हृद्रोग विशेषज्ञ डा० अन्द्रे एफ० कोरनाण्ड को नोबल पुरस्कार।" डाक्टर साहब को हृदयरोग के शल्य चिकित्सा पर नोबल पुरस्कार मिला था। सेवाचन्द को सूझी इन्हें बधाई क्यों न भेज कर अपनी दुःखद कहानी इनके सामने रखूं। उसने अपने विचारों को कार्य रूप में परिणत किया, उन्हें बधाई का एक सुन्दर पत्र लिखा और अपनी कष्ट कहानी भी अन्त में लिख दी। १५ दिन बाद ही डा० कोरनाण्ड का उसे बड़ा ही सहानुभूतिपूर्ण उत्तर मिला। जिसमें लिखा था चिन्ता मत करो तुम्हारे अमेरिका पहुंचने और शल्योपचार पर खर्च होने वाली रकम का प्रबन्ध कर रहा हूँ। थोड़े दिन बाद ही मेरीवेली प्रतिष्ठान नामक पेन्सलवेनियां की एक संस्था ने उसे सूचित किया कि अमेरिका आ ने जाने और शल्योपचार पर व्यय होने वाली सारी रकम का भार यह संस्था उठा रही हैं, मेरा यह पत्र लेकर दिल्ली में अमेरिकी राजदूत श्रीएल्सवर्थ बंकर से मिलो। वह तुम्हें अमेरिका भेजने में सहायता करेंगे। वह मेरीवेली प्रतिष्ठान का पत्र पाकर गद्गद् हो गया, उसे अब इस असाध्य रोग से छुटकारा पाने का पूरा विश्वास हो गया। वह छुट्टी लेकर दिल्ली पहुंचा। मिस्टर बंकर ने उसके अमेरिका आने जाने का प्रबन्ध कर दिया।

लोग तो कहेंगे कि यह भाग्य की बात है, हम कहते हैं उसके प्रयत्न समझदारी, सूझ बूझ की यह करामात है जो धनहीन को चिकित्सा के लिये १०००० मील दूर अमेरिका पहुंचाने में सहायक हुई। वह २ जुलाई १९५७ को फिलाडेल्फिया के हानेमान अस्पताल में शल्योपचार के लिये भर्ती कर लिया गया। ५ जुलाई को उसे शल्य शय्या पर पहुंचाया गया। रेवरेण्ड डा० चार्ल्स पी० बेली ने अपना हस्त कौशल दिखलाने के लिये अनेक हृद्विशेषज्ञ डाक्टरों को आमन्त्रित किया था उनमें भारत से गये तीन हृद रोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेषज्ञ बनने वाले (डा० कामताप्रसाद सिन्हा पटना, डा० देशमुख नागपुर, डा० राव मद्रास) भी थे। इन सबों की उपस्थिति में सेवाचन्द का वक्षस्थल चीर कर फुफ्फुस की ओट से उसे सामने निकाला गया और डाक्टर वेली ने हृदय की गति पर अपनी निगाह गड़ाई। उन्होंने देखा निलय कपाट का मार्ग तंग हो गया है, रक्त जब हृदय धमनी में धकेला जाता है तो वह सारा रक्त धमनी में नहीं पहुंचता, हृदय कोष्ठ में बहुत सा रक्त वापस ही रह जाता है, उन्होंने हृदय को चीर कर निलय कपाट के मार्ग को चौड़ा करके टांके लगा दिये इस शल्य क्रिया के समय पूरे आधा घण्टा हृदय की गति बन्द रही और सेवाचन्द मृतवत् पड़ा रहा। इसके पश्चात् डा० वेली ने शल्योपचार समाप्त होने पर हृदय की मालिश शुरू की। मालिश करते करते हृदय गतिशील हो गया, और नियमित स्पन्दन होने लगे तब डा० वेली ने उसे फुफ्फुस के भीतर बैठाकर समस्त वक्षस्थल को टांके लगा कर सी दिया। २५ दिन में सेवाचन्द के क्षत भर गये और वह सदा के लिये हृदय रोग से मुक्त हो गया।

एक और प्रश्न – हम सब एकात्मवादी हैं और यह मानते हैं कि शरीर में चेतना उस "ममैवांशे जीव लोके जीव भूतः सनातनः" से है, जब वह एक बार निकल जाती है तो फिर उसे कोई मनुष्य वापस नहीं ला सकता। सेवाचन्द का जब हृदय निकाल कर चीरा गया तो उसका शरीर आधे घण्टे तक चेतनाशून्य पड़ा रहा और हृदय को ठीक करके उसे फिर गतिशील बनाया गया तो उसकी गति के साथ जीवन की ज्योति का फिर उदय हो गया। रक्त संचार का क्रम चल पड़ने पर धीरे धीरे सारे शरीर में चेतना फैलती गई और आधे घण्टे के भीतर सेवाचन्द के शरीर की समस्त जीवन व्यवस्था व्यवस्थित हो गई। इस शल्य के चमत्कारी दृश्य से एकात्मवाद का हमारा सिद्धान्त कल्पना क्षेत्र का एक वाद ही रह जाता है, इसकी वस्तु सत्ता सदा के लिये लुप्त हो जाती है। जीवन भी भौतुकी घटनाओं का एक परिणाम है हमें इस बिन्दु की ओर खींच लाता है।

रेवरेण्ड डाक्टर चार्ल्स पी० वेली के इस हस्तकौशल को देख कर उन्हें यदि देवता कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं। हमारे वैदिक ऋषि और आर्य इन्द्र, द्यौ आदि देवताओं को सदा दुख दूर करने के लिये और जीवन का सुख देने के लिये उनकी आराधना करते थे और उनकी कृपा से उनके दुःख दूर होते होंगे शत्रुओं से देवता उनके जीवन की रक्षा भी करते होंगे यह वही जानें किन्तु आज यदि इस पृथ्वी पर ऐसे व्यक्ति विद्यमान हों जो अपनी विद्या बुद्धि को जन समाज के कल्याणार्थ बांट रहे हों और अपने अलौकिक गुणों से अन्यों को जीवनदान दे रहे हों तो क्यों न उन्हें दैवी गुण सम्पन्न देवता माना जाय।

हम आयुर्वेदज्ञ अपने को उन ऋषियों की सन्तान मानने का दावा करते हैं जो परोपकाराय सतां विभूतयः थे। किन्तु हमें किसी रोग दुःख निवारण की कोई अद्भुत औषध ज्ञात हो जाती है तो हम उसे अपनी सन्तान को बताने में संकोच करते है। इस तरह अपनी संकुचित भावना कृपण मन के कारण उन्नति पथ से भ्रष्ट हो गये हैं और पारस्परिक सहयोग से वंचित हो रहे हैं इसलिये तो रसातल की ओर जा रहे हैं। क्या हम संसार के अन्य चिकित्सकों की ओर देख कर अपनी इस मोहमयी निद्रा को भंग नहीं कर सकते ?

[शेष पृष्ठ २१ का]

किसी वैज्ञानिक के घर पैदा नहीं हुआ था न काच। प्रत्युत एक चमड़ा रंगने वाले के घर पैदा हुआ था। परन्तु इस सूक्ष्म दर्शक ने अनुसन्धान की ओर उसकी इतनी जबर्दस्त रुचि खींची कि वह वैज्ञानिक बन गया। काच भी इसी तरह सूक्ष्म दर्शक की कृपा से वैज्ञानिकों की श्रेणी में जा पहुँचा और इसी ने सब से पहले १८८४ ई० में क्षय रोग के कीटाणुओं का पता लगाया था और इसने इन्हें भिन्न करके इनकी कृषि करने की विधि भी मालूम की। तब से लेकर आज तक जैव विज्ञान में इतनी उन्नति हुई है इतनी अधिक मनुष्य को जानकारी मिल गई है कि 'भूतो न भविष्यति'। अब तो यह जैवी जगत् पर पूरी तरह नियन्त्रण रखने में ही सफल हो गया है। इस समय तो इन जैवों से भी सूक्ष्म पराजैवों (Rickettsia) और इनसे भी सूक्ष्म वीरसाणु (Virus) या विषाणुओं तक मनुष्य की पहुँच हो गई है और यह भी जाना जा सका है कि इन वीरसाणुओं द्वारा प्रतिश्याय, फ्लू, श्वाज, मोतियाबिन्द, गठिया, तीनों मसूरिका, अलर्कविष, ज्वरी विसर्प, पीतज्वर, बाल पक्षाघात, कक्षा, रोमान्तिका, कर्णफेर, गर्दनतोड़ ज्वर, त्रिदिनीय ज्वर, चर्मकील, रोहे (कुकरे) ग्रन्थि ज्वर आदि २०-२२ बीमारियां होती हैं अभी कितनी के यह कारण होंगे यह आगे चल कर ही जाना जा सकेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याधि-क्षम दुग्धोत्पादन

प्रत्येक प्राणी का जीवन बड़ा ही संघर्षमय रहता है, दृश्य रूप में उदरपूर्ति के लिये जो संघर्ष प्रत्येक प्राणियों को करना होता है इसे तो हम देखते अनुभव भी करते हैं किंतु अदृश्य रूप में उदरपूर्ति के लिये जो संघर्ष हमारे शरीर की कोषाओं के साथ जैवी जगत का होता रहता है इसका ज्ञान हमें नहीं होता। इसका तो हमें रूप ही व्याधि की शकल में दिखाई देता है। व्याधियां भी तो तभी होती हैं जब शरीर उस व्याधि उत्पादक शक्ति को रोकने में अक्षम रहता है। क्योंकि:—

न सर्वाणिशरीराणि व्याधिक्षमत्वे समर्थानि भवन्ति।

चरक

प्रत्येक व्यक्ति के शरीर व्याधियों को रोकने या उन्हें नष्ट कर देने की क्षमता नहीं रखते। जो रखते हैं उनमें वह व्याधियाँ होती ही नहीं। जो क्षमता अपने भीतर नहीं रखते उनमें ही व्याधियां उत्पन्न हो जाती हैं। जिनको व्याधियाँ हो जाती हैं हमारी उपचार पद्धति उस क्षमता को उत्पन्न करने की एक विधि मात्र है इसका अनुभव हमारे आचार्यों को भी हुआ था, तभी तो उन्होंने कहा:—

व्याधि क्षमत्वं व्याधिबलविरोधित्वं व्याध्युत्पादन प्रतिबन्धकत्वमिति यावत्। चक्रपाणि

व्याधि के विरुद्ध शरीर में क्षमता उत्पन्न करना व्याधि के बल को रोकने की शरीर में क्षमता उत्पन्न करना ही व्याधि को रोकने का सर्वोत्तम उपाय है। हमारे आचार्य इस रहस्य को अपने अनुभव से मालूम कर सके थे। अधिक विस्तार से प्रत्यक्षीकरण के साधन न होने से वह इसे अधिक न जान सके। अब आकर इस बात का ठीक ठीक पता लगा है कि जैवोद्भवी कारणों से ही अनेक भयंकर व्याधियां होती हैं अर्थात् ऐसे सूक्ष्म प्राणी भी इस विश्व में भरे पड़े हैं जो दूसरों के शरीर पर ही अपना जीवन निर्वाह करते हैं, इन्हीं सूक्ष्म प्राणियों में वह जीवाणु कीटाणु भी हैं जो मनुष्यों के शरीर में घुस कर शरीर की कोषाओं को खाने लगते हैं तभी शरीर की कोषाएं उनका सामुख्य लेती हैं। मरने के लिये या दूसरे के पेट में जाने के लिये संसार का कोई प्राणी तयार नहीं होता, इसी लिये तो जब यह व्याधि जनक जीवाणु कीटाणु हमारे शरीर के भीतर घुस कर शरीरावयवों को मारने, खाने लगते हैं तभी हमारे शरीर के भीतर इनसे लड़ने के लिये संघर्ष होता है। जिनका शरीर सक्षम होता है अर्थात् इन जैवों को अन्दर घुसते ही मार डालता है वह व्यक्ति उस व्याधि के लिये सक्षम होते हैं। जिनके भीतर जाकर वह जैव बढ़ते है और शरीर की कोषाओं का संहार करते चले जाते हैं तभी हमें वह शरीर के भीतर चलने वाला संघर्ष व्याधि के रूप में दृश्यमान् होता है। जब हम जीवन असमर्थ हो जाते है तो चिकित्सक की शरण में जाते हैं कि वह इस जीवन संघर्ष में हमारी रक्षा करे।

नव्य अनुभव—इस समय के अनुसन्धानों से ज्ञात हो गया है कि प्रत्येक प्रकार की व्याधियां जो जीवाणुओं या कीटाणुओं के शरीर में प्रवेश से होती हैं सबके रूप चिन्ह भिन्न भिन्न होते हैं। वह समस्त जीवाणु और कीटाणु जब शरीर के भीतर घुस कर वहां बढ़ने लगते हैं उस दशा में शरीर की रक्षक कोषाएं उन्हें आसानी से बढ़ने नहीं देतीं न रहने देती हैं वहां तो तब बड़ा भारी संग्राम लगा होता है। देखा गया है प्रायः प्रत्येक जीवाणु, कीटाणु इस संघर्ष काल में जब कि उनके लिये भी जीवन मरण का प्रश्न होता है वह अपने बचाव का उपाय करते हैं और शरीर के रक्षकों से बचने के लिये ऐसे पदार्थ अपने शरीर से उत्पन्न कर वहां त्यागने लगते हैं जिन्हें जैवी-विष (Toxins) कहा जाता है समस्त जीवाणुओं कीटाणुओं के शरीर से उत्पन्न होने वाला यह जैवी विष एक ही प्रकार का नहीं होता प्रत्युत जितने प्रकार के जीवाणु, कीटाणु होते हैं उतने ही प्रकार का यह जैवी विष होता है।

मान लीजिये एक व्यक्ति को कुत्ता खाँसी, या रोहणी या मन्थर ज्वर हैं वह व्यक्ति जब स्वयं इन बीमारियों से बच जाता है या चिकित्सक की औषधि से राजी हो जाता है तो देखा गया हैं कि उस व्यक्ति के शरीर के भीतर की कोषाओं में उस जैवी विष के विरोध में प्रति विष उत्पन्न करने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है। अनेक जैवी रोगों में तो वह क्षमता जीवन भर भी बनी रहती है कुछ जैवी रोगों को रोकने की यह क्षमता कुछ काल तक रह कर फिर लुप्त हो जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी बात को देखकर व अच्छी तरह समझ कर यह प्रयत्न किया गया कि अश्व गौ, शशक आदि प्राणियों में भी क्या यह क्षमता उत्पन्न की जा सकती है ? इन भिन्न भिन्न प्रकार के जैवों को जीवित या मार कर उनको इन प्राणियों के शरीर में प्रवेश कराया गया और उनके रक्त रस की परीक्षा की गई तो ज्ञात हुआ कि गौ, अश्व आदि प्राणियों में जब इन जैवों को जीवित या मार कर उनके भीतर लगातार सूची वेध से प्रवेश कराया जाता है तो उनके रक्त-रस में इन व्याधियों को रोकने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है और जिन प्राणियों का रक्त-रस इस प्रकार किसी जैवी रोग के लिये सक्षम बना दिया जाता है तो वह रक्त रस यदि किसी मनुष्य शरीर में प्रवेश कर दिया जाय जिसे वही जैवी रोग हो रहा है, तो इस सक्षम रक्त रस के शरीर में पहुंचने पर उस मनुष्य शरीर में उस सक्षम रक्त रस प्रभाव से वैसा ही रक्त रस उत्पन्न हो जाता है और वह व्यक्ति उस रोग से बच जाता है। अर्थात् उसके शरीर में जो रोगोत्पादक कीटाणु विद्यमान थे शरीर की कोषाएं सक्षम रक्त-रस प्राप्त कर वह भी सक्षम बन गईं और उन्होंने उन कीटाणुओं को मार डाला।

इन्हीं अनुभवों के आधार पर रक्त-रस (Serum) मसूरी (Vaccine) चिकित्सा का प्रचलन आरम्भ हुआ और यह चिकित्सा काफी सफल रही। तभी तो इस समय मसूरिका, जलसंत्रास (अलर्क), पीतज्वर, तन्द्रिक, प्लेग, कुत्ता खांसी, फुफुसप्रदाह, विशूचिका, उपमन्थर, क्षय आदि अनेक रोगों के लिये उक्त विधियों द्वारा सक्षम रस या मसूरी तयार करके शरीर में पहुँचाते हैं यह रस मनुष्य को सक्षम बना देते हैं यह रोगों से बचने के लिये कृत्रिम विधान काफी समय से चल रहा है।

क्या प्राणियों के दुग्ध भी इसतरह सक्षम बनाये जा सकते हैं ? जहां साधन प्राप्त हैं वहीं परीक्षा ली जा सकती है। हम जैसे वैद्यों के पास किसी प्रकार के साधन नहीं हैं, न हम अपनी योग्यता बढ़ाते हैं, न विद्यमान प्रयोगिक साधनों का उपयोग ही सीखते हैं फिर भला हम कैसे किसी बात की सचाई को पा सकते हैं ?

अमेरिका में उत्तरी मध्यवर्ती राज्य पिनेसोटा नामक स्थान के विश्व विद्यालय में कोई २० के लगभग वैज्ञानिक आज दस वर्ष से इस बात का अनुसन्धान कररहे हैं कि जिन गौओं का हम दूध पीते हे उन दुधारू गौओं को भिन्न भिन्न रोगोत्पादक जैवों को अधमरे करके या पूर्णतया मार कर उनका सूचीवेध दिया जाय तो उसका दुग्ध पर क्या प्रभाव होता है ? क्या वह दुग्ध भी सक्षम बन सकता है ? या नहीं। इसकी वह सब जांच कर रहे हैं।

जैवी व्याधियां एक दो तो हैं नहीं। इस समय के अनुसन्धानों से सिद्ध हो गया है कि यह व्याधियाँ पचासों हैं और उन सबके द्वारा बनने वाले विषों के रूप भी भिन्न भिन्न होते हैं इसी लिये उन सबों से जो प्रतिविष उत्पन्न होते हैं वह सब भी भिन्न भिन्न रासायनिक रचना रूप के होते हैं और यह भी प्रयोगों से जांचा गया है कि एक ही प्राणी को एक वार में एक व्याधि से ही सक्षम बनाया जा सकता है, एक साथ कई जैवी व्याधियों से वचाव के लिये सक्षम नहीं बनाया जा सकता। हां भिन्न भिन्न समयों में आगे पीछे उसी एक प्राणी को दूसरी जैवी व्याधि से तथा पुन: तीसरी से इस तरह अवश्य कई व्याधियों से बचाव की क्षमता उत्पन्न की जा सकती है। इसी आधार को लेकर कोई ८०० सौ दुधारु गौओं पर प्रयोग किये जाने लगे। कुछ गौओं को एक रोगोत्पादक अर्धमृत या पूर्ण-मृत जैवो के सूचीवेध दिये जाने लगे, कुछ गौओं को दूसरी व्याधि के उत्पादक अर्धमृत या पूर्णमृत जैवों के सूचीवेध दिये जाने लगे। इस तरह ८०० गायों पर २० संचारी व्याधियों के जैवों का मृत अर्धमृत अंश प्रयोग कर कुछ दिन के बाद शशक, वण्टमूषक, मुर्गी, चूहे आदि प्राणियों को पहले एक एक रोगोत्पादक जैवों को उनके शरीर में प्रवेश करा कर उन्हें रोगी बनाया गया और जब वह प्राणी बीमार हो गये तब उन्हें उन गौओं का दूध पीने को दिया गया। ६-७ वर्ष तक तो यह प्रयोग मनुष्येतर प्राणियों पर होते रहे। और उसका परिणाम यह देखने को मिला कि जिन्हें रोगी बनाया जाता था उन्हें दूध पिलाया जाय तो उस दूध के पीने से उन प्राणियों के शरीर में व्याधिक्षमता उत्पन्न हो जाती थी इसी प्रभाव से वह प्राणी राजी हो जाते थे। फिर यह देखा गया कि स्वस्थ प्राणियों को कुछ दिन वह व्याधि सक्षम दूध पिलाया गया तत्पश्चात उनके शरीर में व्याधिजनक वही जैवों का सूचीवेध दिया गया वह व्याधिजनक जैव शरीर में जाकर अपनी स्थिति दृढ़ नहीं बना सके। वह शरीर के भीतर अपने केन्द्र में पहुंचने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

०२५४०८
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से पूर्व ही मार डाले गये। इसलिये वह प्राणी इन रोगोत्पादक जैवों का सूचीवेध लेकर भी बीमार नहीं हुए जब इस तरह के लगातार प्रयोगों से अच्छे परिणाम प्राप्त होते रहे तब उसके बाद वहां के अस्पतालों में विशेष जैवी व्याधियों से ग्रसित व्यक्तियों को उन्हीं जैवी विरोधी दुग्ध का पान कराया जाने लगा। तीन वर्ष तक लगातार अनेक लोगों पर रोग नाशक इस दुग्ध का उपयोग कर जब उसका परिणाम ठीक मिला तब उसको प्रकाशित किया गया।

इन प्रयोग कर्ताओं में डा० विलियम ई० पेटर्सन तथा डा० वैरी कैम्पवेल प्रमुख हैं इनका कहना है कि इन दस वर्षों के लगातार प्रयोगों से सिद्ध हो गया है कि मृत जैवों के सूचीवेध देने पर उन गौओं के थनों की दुग्धोत्पादक ग्रन्थियों में उन जैवों की प्रतिरोधक क्षमता सब से अधिक सञ्चित हो जाती है. जो दूध के साथ आ जाती है। और सबसे बड़ी बात यह है कि इस सक्षम दूध की रचना रूप में कोई विकार या परिवर्तन नहीं होता, न दुग्ध के पोषक गुणों में कोई अन्तर पड़ता है। वह कहते हैं कि एक व्यक्ति को फुफुसप्रदाह (न्यूमोनिया) हो गया है उसे पेन्सिलीन, स्ट्रैप्टोमायसीन के सूचीवेध देने की कोई आवश्यकता नहीं, आप फुफुस प्रदाही कीटाणु जनक सक्षम दूध का सेवन बतौर आहार के ४-५ दिन कम से कम नित्य प्रति ३ पाव दूध पिलाते रहिये। बस, इसी बीच में रोग दब जायगा। और मनुष्य शरीर में इस रोग का प्रतिविष बढ़कर उसे सक्षम बना देगा और रोगी ४-५ दिन में ही भला चंगा हो जायगा। इस तरह वहां कई जैवी व्याधियों में लगातार प्रयोग करके उसके परिणाम देख लिये गये हैं और यह भी देखा गया है कि यदि इस सक्षम दूध को वैज्ञानिक विधियों से जैव रहित करने का प्रयत्न किया जाय तो इससे दुग्ध में विद्यमान क्षमता नष्ट हो जाती है, हां दुग्ध का चूर्ण बनाने पर वह नष्ट नहीं होती।

प्रयोगों का यह क्रम अभी चल रहा है और उक्त वैज्ञानिकों का यह विश्वास है कि इस तरह के रोग सक्षम दुग्ध का उत्पादन बढ़ेगा और यह दुग्ध जन समाज में वितरण किया जाता रहेगा तो मसूरिका राहिणी, न्यूमोनिया आदि अनेक व्याधियों से मनुष्य का छुटकारा हो जायगा। संसार में किस तरह चिकित्साक्षेत्र में नित्य नये ज्ञान का विकास हो रहा है पर हमारे अत्माभिमानी वैद्य अपने पूर्वजों की प्राप्त सम्पत्ति को पाकर जिस तरह गणेश वाहन हल्दी की गांठ प्राप्त कर पन्सारी बने फिरते हैं, यही दशा आज हमारे वैद्यों की है। काल जिस द्रुत गति से आगे बढ़ता जा रहा है यदि इस ज्ञान के विकास में हम पीछे रह गये तो वह दिन दूर नहीं जब भारत में ही हमें पूछने वाला कोई न दिखाई देगा।

[शेष पृष्ठ २६ का]

में स्नेह और कुलस्थिराल की मात्रा के बढ़े रहने से रक्त गाढ़ा हो जाता है और गाढ़े रक्त का प्रभाव हृदयगति पर होता है और अकस्मात हृद्गत्यरोध का आक्रमण हो जाता है।

अब अनेक हृदरोग विशेषज्ञों का मत है कि हृद्गत्यावरोध से होने वाली मृत्यु संख्या में जो वृद्धि देखी जाती है उसमें प्रधान कारण रक्त में कुलस्थिराल की मात्रा बढ़ना है।

क्या कलस्थिराल की मात्रा अवस्थानुसार घटती बढ़ती है? परीक्षाओं से देखा गया है कि मनुष्यों के रक्त में २० वर्ष की अवस्था से कुलस्थिराल की मात्रा बढ़ने लग जाती है और ५५-६० वर्ष की आयु तक यह बराबर कुछ न कुछ बढ़ती ही रहती है। ५५ वर्ष के बाद यदि वह मनुष्य स्थूल नहीं तो इसकी मात्रा घटने लगती है।

कुलास्थिराल के साथ उर्गास्थिराल, अस्थिराल, फुंगस्थिराल भी पाये जाते हैं जो इसके सहयोगी हैं और यह सदा इसके रूप से रूपान्तर प्राप्त कर इसी के साथ विद्यमान रहते हैं। अर्थात् जहां कुलस्थिराल होगा वहां यह सब भी कुछ न कुछ सूक्ष्म मात्रा में अवश्य विद्यमान होंगे। किन्तु क्या यह सब कुलस्थिराल वत् शरीर में बढ़ते हैं? नहीं। इसका कारण यह है कि यह आगे से आगे खाद्योजांश डी खाद्योजांशए आदि अनेक यौगिकों में सदा रूपान्तरित होते रहते है इसलिये इनकी मात्रा बढ़ने नहीं पाती। किन्तु जहां कहीं यह स्थिर हो जायं तो फिर यह नष्ट नहीं होते। किंग, रोजन हाईन, वेब्सटर आदि पुरातत्व अनुसन्धान कर्ताओं ने जो मिस्र में ममिया (मृत देह) प्राप्त की थीं उनके मस्तिष्कों में उर्गास्थिराल कुलस्थिराल उसी उसी असली रूप में प्राप्त हुआ जैसा कि जीवित प्राणी के मस्तिष्कमें देखा जाता है। इससे ज्ञात होता है कि इन्हें प्राणिज अंश के साथ सुरक्षित रखा जाय तो इसके यौगिक नष्ट नहीं होते।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कुलस्थिराल शरीर में अस्थि निर्माण के लिये ही नहीं मस्तिष्क जैसे शरीर के प्रधान अंग की रचना के लिये भी महत्व का पदार्थ है और मस्तिष्क के कार्य व्यापार की व्यवस्था को स्थिर रूप में बनाये रखना भी इसी यौगिक के हाथ में है इसीलिये यह महत्व का है। वैद्यों को इसे देखने समझने के साधन जानने चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एलोपैथीचिकित्सा इस ५० वर्ष में कितनी आगे बढ़ी ?

अमेरिका में लगभग ७ हजार अस्पताल है जिनमें रोगियों के लिये १५ लाख से अधिक शय्याओं की व्यवस्था है, वहां प्रति वर्ष २ करोड़ १० लाख से अधिक रोगियों को उन अस्पतालों में भर्ती किया जाता है। उन सारे अस्पतालों का सम्बन्ध १०८ ऐसी प्रयोगशालाओं से है जहां रोगों पर प्राप्त हुई सफलताओं की सूचना उन समस्त अस्पतालों को मिलती रहती है और नित्य नई सफल औषध का उपयोग करके वे डाक्टर रोगियों के कष्टों को दूर करते हैं।

जो चिकित्सक अनुसन्धान के कामों पर लगे हैं ऐसे चिकित्सा विज्ञान के पारदर्शी २० अनुसन्धान कर्ताओं ने मिल कर—इस ५० वर्षों में अलोपैथी चिकित्सा कितनी आगे बढ़ी है, किस किस व्याधियों के निवारण का उसने कितना ज्ञान प्राप्त कर लिया है ? इसकी एक सूची तैयार की है जिसे न्यूयार्क यूनीवर्सिटी बैलव्यू मेडिकल सेण्टर के अस्पताल की हीरक जयन्ती के अवसर पर पढ़ा गया उसका शीर्षक है "मानव समाज की चाह-स्वास्थ्य एवं शान्ति" वह सूची चार भागों में बंटी हुई है उसमें पहले भाग में बताया गया है कि वृद्धों में होने वाले १७ पुराने रोग जैसे मधुमेह, रक्तचाप, अर्धांग, रक्ताल्पता, आमसन्धि वात, अस्थि सन्धि वात, श्वास आदि रोगों के कारणों की काफी जानकारी प्राप्त हो चुकी है और कुछ रोगों की रोकथाम में काफी सफलता प्राप्त हुई है।

दूसरे भाग में बताया गया है ३० पुरानी बीमारियों जैसे राजयक्ष्मा; सहज हृदरोग, वातरक्त, आम वात ज्वर आदि रोगों को आंशिक रूप में दूर करने के साधन ज्ञात हो सके हैं। आशा है आगे चल कर पूर्ण रोक थाम के साधन प्राप्त हो सकेंगे।

तीसरे भाग में कर्कटव्रण (कैंसर) के कारण भी वीरसाणु है जिसका ज्ञान बड़ी कठिनता से हुआ है। मोतियाबिन्द भी वीरसाणु जन्य रोग है इसका ज्ञान भी बड़ी ढूंढ खोजों से हुआ। इन्फ्लूएन्जा (फ्लू) जब १९१८ में संसार व्यापी हुआ था उस समय सारे संसार में इसकी चपेट से २ करोड़ व्यक्ति मर गये थे। प्रत्येक व्यक्ति वर्ष में ५-७ बार प्रतिश्याय (जुकाम) से अवश्य पीड़ित होता है यह सब वीरसाणु जन्य रोग हैं। मसूरिका, पीतज्वर, अलर्क विष, बालपक्षाघात, श्वास, गर्दनतोड़ ज्वर, चित्राली ज्वर, कर्णफेर, रोमान्तिका, गिलायु, रोहे आदि भी वीरसाणु जन्य रोग हैं। यह आकर अब इसका सही ज्ञान हुआ। जैवी रोगों का ज्ञान इससे पूर्व हो चुका था तभी उनके निवारण की पचासों औषधियां ज्ञात हो गई है किन्तु वीरसाणुओं का ज्ञान नया नया होने से अभी तक इन का उपचार ज्ञात नहीं हो सका, अब आशा बंध गई है कि वह समय दूर नहीं जब जनसमाज को जुकाम, फ्लू जैसे व्यापक रोगों से बचाया जा सकेगा।

इस सम्बन्ध में अभी तक राइबो न्यूक्लाइक एसिड एक ऐसा रासायनिक पदार्थ मालूम हो सका है जो कोषाओं के भीतर पहुंचकर वीरसाणुओं की वृद्धि को रोकता है। ऐसे ही रासायनिक पदार्थों के निकट भविष्य में आविष्कार होने की बहुत आशा है जिनसे वीरसाणु रोगों को फैलने से रोका जा सकेगा। न्यूमोनियां, विषमज्वर, उपदंश, क्षय, मस्तिष्क नाड़ि शोथ आदि अनेक रोगों की तो इतनी अच्छी औषधियां बाजार से प्राप्त हो रही है जो उक्त रोगों की व्यथा से पूर्ण मुक्ति दिला देती हैं। चौथे भाग में बताया गया है कि सक्रिय-रश्मि पूर्ण तत्व (आइसोटोप्स) रश्मि ग्राही यन्त्र (गाइगर कौण्टर) तथा कर्कट वीरसाणु दर्शक यन्त्र आदि के आविष्कार ने अन्धकार के निगूढ़ वातावरण को भेद कर ज्ञान की प्रखर किरणें दे दी है। शरीर की कोषाओं को शरीर से भिन्न करके उनको जीवित रखने के नये साधन उपलब्ध हो गये हैं। १८ पवनाम्ल ८ खाद्योजांश कुछ रासायनिक द्रव्य तथा ओजों का सन्तुलन कोषाओं की क्षयपूर्ति वृद्धि के लिये अनिवार्य देखा गया है, यह बात अभी ठीक २ जानी जा सकी हैं। वृक्क शोथ, रक्त चाप वृद्धि के बहुत कुछ तथ्य ज्ञात हो गये हैं और आशा है इनकी चिकित्सा विधि भी शीघ्र ज्ञात हो जायगी। हृदयरोग, धमनी रोग सम्बन्धी अनेक साधन ऐसे ज्ञात हो चुके हैं जिनसे इन रोगों की चिकित्सा भी सुलभ हो जायगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक मनुष्य की चमड़ी काटकर उसे मनुष्य के शरीर में प्यौंद लगा देना, चमड़ी काट कर ८ दिन तक उसे जीवित बनाये रखना आदि महत्व के आविष्कार युग परिवर्तक हैं। शल्य चिकित्सा में तो महान क्रान्ति होती दिखाई देती है यान्त्रिक हृदय लगा कर असली हृदय के व्यापार को बन्दकर उसकी त्रुटियों को दूर किया जाने लगा है। इस ५० वर्ष के लेखे जोखे की सूची पढने पर ज्ञात होता है कि विदेशों में पारस्परिक सहयोग से जो अनुसन्धान हो रहे हैं उनकी गति बड़ी तीव्र है। ५० वर्ष में ही जब वह चिकित्सा क्षेत्र में इतनी उन्नति कर सके हैं तो आगे के ५० वर्षों में तो इसकी अपेक्षा कई गुणा उन्नति होने की आशा है। इधर हम अपने वैद्य समाज पर दृष्टिपात करते हैं तो क्या दिखाई देता है कि वह पतनोन्मुख हो रहा है। उसके आविष्कार जो आज से दो सहस्र वर्ष पर्व हुए थे उनको आगे बढ़ाने के साधन उसे नहीं मिले वह जहां का तहां पड़ा है। वह तब से लेकर आजतक चिकित्सा क्षेत्र में कोई उन्नति नहीं कर सका। न इस समाज में संगठन है, न सहयोग की भावना है, न काम करने की समझ। फिर इस पर तुर्रा यह कि यह अपने को सर्वज्ञ मानता है आत्माभिमानी इतना है किसी से कुछ सीख लेना अपना अपमान समझता है। क्या यह इसके बुरे दिन आने के लक्षण नहीं ?

झुन्झुनूं जिला वैद्य सम्मेलन

प्रधान कार्यालय पिलानी (राजस्थान)

झुन्झनू जिला वैद्य सम्मेलन का षष्ठाधिवेशन जेजूसर में बाबा श्री जयरामदास जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर स्वास्थ्य प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया था। सम्मेलन का उद्घाटन आयुर्वेद विभाग के इन्सपेक्टर श्री चन्द्रशेखर जी ने सम्मेलन के कार्यों की प्रशंसा करते हुए किया। श्री किरोड़ीमल शर्मा की अध्यक्षता में होने वाली चिकित्सा परिषद में अनेक वैद्यों ने अपने गुप्त प्रयोग प्रकट किये। सम्मेलन में वैद्यराज श्री मणिराम जी की हीरक जयन्ती' मनाने आदि के ६ प्रस्ताव स्वीकृत हुए।

—कैलाशचन्द्र शर्मा, संयुक्त मंत्री।

जैव विनाशी कागज

जैवों (जीवाणु, कीटाणुओं) की स्थिति का अच्छी तरह ज्ञान प्राप्त हो जाने पर उनकी रोकथाम के उपाय जानना कठिन नहीं रहा। इसी ज्ञान के आधार पर आगे बढ़ते हुये वैज्ञानिकों ने अनेक जैव विनाशी वस्तुओं का आविष्कार कर डाला उनमें एक यह कागज भी है।

हम सबों को काम करते समय कुछ न कुछ चोट रगड़ लग ही जाती है खाल के छिल जाने या जख्म हो जाने पर मवादोत्पादक कीटाणु उसमें चट घुस जाते हैं और जख्म में दर्द पैदा हो जाता है फिर उससे मवाद बहने लगता है। जीवाणु कीटाणु इतने सर्व व्यापी होते हैं कि शायद ही इनकी उपस्थिति से कोई स्थान खाली हो, जहां खरोंच लगी है सम्भव है त्वचा पर वहीं चिपके हों जो जख्म होते ही अन्दर घुसने का उन्हें अवसर मिल जाता है। इनसे बचाव का साधन तो यही है कि जहां खरोंच लगे या जख्म हो जाय उसे बिलकुल स्वच्छ रखो निर्जैव बनाये रखो, दो दिन में यह ठीक हो जाएगा किन्तु प्रत्येक व्यक्ति इस बात की समझ नहीं रखता इसीलिये वैज्ञानिकों ने कागज को औषधियों में भिगो कर उसे ऐसा बना दिया है कि लगे हुए जख्म या खरोंच पर वह कागज चिपका दिया जाय तो जिन कीटाणुओं से पूय उत्पन्न होकर जख्म बिगड़ने का भय रहता है वह जाता रहता है। यह कागज जहाँ चिपका होगा वहां सारे ही कीटाणु इसमें लगी औषध के प्रभाव से नष्ट हो जाते हैं। यह कागज अभी रूस के वैज्ञानिक आई० कालविन ने आविष्कार किया है। उनका कहना है यदि इस कागज के टुकड़े को नाक में रख लिया जाय तो जुकाम पैदा करने वाले वीरसाणु भी नष्ट हो जाते हैं और जुकाम से बचाव रहता है। और उनका कहना है इस कागजका औषध के रूप में प्रयोग करने पर यह ठण्डी से बचाता है। सो कैसे ? यह बात ठीक २समझ में नहीं आई।

दुर्बल व्यक्तियों में अधिक ठण्डी के मौसम में प्रतिश्याय, निमोनिया आदि के प्रति क्षमता शक्ति घट जाती है। यही कारण है कि दुर्बल व्यक्ति अधिकतर ठण्डी में इन रोगों का शिकार हो जाते हैं। जैव विनाशी कागज के नाक में रखे होने से इन रोगों के जीवाणु शरीर के अन्दर प्रविष्ट होने से पूर्व ही मर जायेंगे अतः रोग क्षमता भले ही कम हो जावे पर शरीर में रोगोत्पादक जीवाणुओं के अभाव के कारण ऐसा मनुष्य ठण्डी में होने वाले इन रोगों की आशंका से बच जायगा। सम्भव है उक्त वैज्ञानिक के कथन का संकेत इस तथ्य की ओर हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्युत् की भट्ठियां और औषध निर्माण की मशीनें !!

हम अभी तक धातु भस्में उपलों की अग्नि में तय्यार करते हैं। उपलों की आंच देने में यह त्रुटि सदा रहती रही है कभी आंच कम कभी अधिक लग जाती है, इसके नियन्त्रण के जो भौतिक साधन बताये हैं उन्हें अपनाने पर भी यह त्रुटि दूर नहीं होती, इसीलिये अन्य साधन ढूंढने पड़े। उनमें से विद्युत् की भट्ठियां सर्वोत्तम सिद्ध हुईं। विद्युत्भट्ठी में ताप नियन्त्रण की पूर्ण व्यवस्था होती है, जितनी भी मात्रा में आंच देना चाहें आप प्रसन्नता से दे सकते हैं। प्रत्येक धातु भस्में बनाने पर देखा गया है कि उन्हें एक जैसी आंच नहीं चाहिये। किस धातु भस्म को कितनी आंच देना है ? इसका सही-सही ज्ञान आप हमारे लिखे भस्म विज्ञान नामक ग्रन्थ में प्राप्त कर सकते हैं।

और वह भस्में विद्युत् भट्ठी पर ही एक मात्रा में आंच देकर बन सकती है इसका अनुभव लिया जा रहा है और उस पर एक भिन्न ग्रन्थ तैयार हो रहा है। हमने ऐसी विद्युत् भट्ठियां निर्माण की हैं जिन पर धातु भस्म और कूपी-पक्व रस दोनों ही बन सकते हैं। छोटे बड़े कई आकार की भट्ठियां तय्यार करके उन पर अनुभव ले रहे हैं जो वैद्य इन भट्ठियों का उपयोग करेंगे वह निश्चिन्त बैठे हुए भस्में व कूपी-पक्व रस निर्माण कर सकते हैं। जिन्हें भट्ठी लगाने की इच्छा हो वह पत्र-व्यवहार करें।

और आज-कल औषधियों की मांग इतनी बढ़ गई है कि हाथ से औषधियां कूट, पीस कर उतनी जल्दी रस, वटी तय्यार नहीं होतीं जितनी मशीनों से होती हैं। हाथ तो लगातार घंटा, आधा घंटा काम कर सकते हैं फिर थक जाते हैं पर मशीन तो लगातार ८-९ घंटा या जितनी देर चाहें उन्हें चलावें क्या वह थकने वाली हैं ? फिर खूबी सबसे बड़ी हमारी मशीन में यह है कि जिस तरह आयुर्वेद के ग्रन्थों में औषधियों की कुटाई, पिसाई और घोटाई (भावना) का जो विधान दिया है जिससे औषधियों का सार भाग गरम न हो कर वह नष्ट नहीं होते, बिल्कुल उसी विधि के अनुसार हमारी मशीनों से कुटाई, पिसाई घुटाई होती है और औषधियां घुट कर इतने सूक्ष्म अणु-अंशों में आ जाती हैं कि जिनका प्रभाव शीघ्र होता है। प्रत्येक मशीन बिजली की शक्ति से चलने वाली है। मशीनें निम्न हैं :--

चट्टू मशीन, ढोल मशीन, खरल मशीन, गोली मशीन, टिकिया मशीन, पालिश मशीन, आसव छानने की मशीन फिल्टर आदि। अधिक मात्रा में औषध निर्माण-कर्ता यह मशीनें हमारे कारखाने में आकर देखें और सारी व्यवस्था समझ कर अपने यहां यह मशीनें लगाएं।

निवेदक---मैनेजर पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी,

६०--६१ अकाली मार्केट, अमृतसर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ५ फाल्गुन सम्वत २०१४ संख्या ३

मार्च १९५८

आयुर्वेद-विज्ञान

चिकित्सा संसार में क्रान्ति लाने वाला मुख्य वैज्ञानिक पत्र

AYURVED-VIJNAN

The Leading Hindi Journal Explaining The Ayurvedic System on Scientific Lines

सम्पादक
स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

विषय-सूची

१. सत्य की उपेक्षा क्यों (श्री द्वारिकेश मिश्र) ३३
२. जैव सिद्धान्त ही त्रिदोषवाद का कारण था ४०
३. गमा रश्मि का भयंकर परिणाम ४६
४. आयुर्वेदिक फार्मेसी वालों की कठिनाइयों के सम्बन्ध में श्री जी. एम. पारिख का भाषण ४८

प्रकाशक—
स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य, आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय, २२ फैज़ बाज़ार, देहली ।

मुद्रक—बदलिया प्रिंटिंग प्रेस, दाईवाड़ा नई सड़क, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम

१—आयुर्वेद-विज्ञान प्रत्येक अंग्रेजी मास की १ तारीख को प्रकाशित होता रहेगा।

२—डाक-व्यय सहित इसका मूल्य ३) वार्षिक, एक प्रति का मूल्य ।–) होगा।

३—पत्र मंगाने वालों को अपना पता साफ २ अक्षरों में लिखना चाहिये।

४—जिन व्यक्तियों के पास उस मास की ५ ता० तक पत्र न पहुंचे उन्हें इसकी सूचना देनी चाहिये।

५—यदि एक-दो मास के लिये पता बदलवाना हो तो उसका प्रबन्ध स्वयम् डाकखाने से कर लेना चाहिये। अधिक समय के लिये पता बदलवाना हो तो फिर हमें सूचित करना चाहिये।

६—पत्र व्यवहार करते समय ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये। अन्यथा उत्तर नहीं दिया जावेगा।

७—पत्र व मूल्य सम्बन्धी पत्र-व्यवहार मैनेजर आयुर्वेद विज्ञान के नाम से और लेख, समालोचनादि व पुस्तकादि सम्पादक के नाम से भेजना चाहिये।

८—कोई भी पत्र, पुस्तक समालोचना के लिये भेजी जाय उनकी दो प्रति भेजनी चाहिये।

९—आयुर्वेद विषयक वैज्ञानिक गवेषणापूर्ण लेखों को पत्र में सर्व-प्रथम स्थान दिया जायेगा और श्रेष्ठ सचित्र लेखकों को पुरस्कृत भी किया जायगा।

१०—वृथा के आडम्बर पूर्ण पृष्ठ-पोषक लेखों के लिये इसमें स्थान नहीं मिलेगा। किसी भी लेख को घटाने, बढ़ाने व प्रकाशित करने, न करने का सम्पादक को पूर्ण अधिकार होगा।

११—जो लेख भेजे जायें, कागज पर एक तरफ हाशिया छोड़ कर लिखे होने चाहिये।

१२—उत्तम २ अलभ्य आयुर्वेद साहित्य सम्बन्धी चित्र लेख व वनस्पतियों आदि को जो सुरक्षित भेजेंगे उनको सपारिश्रमिक मार्ग व्यय आदि सब आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय से दिया जायेगा।

१३—आयुर्वेद शास्त्र सम्बन्धी प्रश्नों को छोड़ कर किसी परामर्श सम्बन्धी या किसी रोगी के लिये रोग-सम्बन्धी प्रश्नों पर प्रति प्रश्न के लिये आयुर्वेद-विज्ञान के ग्राहक आठ आना, जो ग्राहक नहीं वह प्रति प्रश्न एक रुपये का टिकट प्रश्न के साथ भेजेंगे तभी उनके प्रश्न और उत्तर छापे जायेंगे।

मूल संशोधन

आयुर्वेद विज्ञान के जनवरी १९५८ अंक में 'शरीर की क्षाराम्ल व्यवस्था और स्वास्थ्य' शीर्षक लेख में कुछ पाठ अशुद्ध छपा है। कृपया पाठक उसे निम्न विधि से सुधार कर पढ़ें।

पृष्ठ १२, कालम दो, लाईन २६-२७-२८ को निम्न प्रकार से पढ़ें।

उदजन का एक परमाणु ऋण धारा की ओर गमन करता है और एक उदजन तथा ऊष्मजन का मिला हुआ अणु धन धारा की ओर गमन करता है।

(मूल पाठ में इससे विपरीत छपा है)

पृष्ठ १३ पैरा २ को निम्न प्रकार पढ़ें।

इस विद्युत विश्लेषण विधि से जल के अणुओं को जब तोड़ा गया तो देखा गया कि एक करोड़ लीटर जल में ऋण धारा की ओर गमन करके ऋण केन्द्र पर एकत्रित हुये उदजन परमाणु (अर्थात उदजन गमन) का तोल एक ग्राम (लगभग १ माशा) है। इस मात्रा को गणित के सूत्र $\frac{1}{10000000}$ अथ वा $\frac{1}{10^7}$ अर्थात $१०^{-७}$ के अंकों से व्यक्त करते हैं। इसी तरह जो उदूष्मिद के अणु (ion) घन धारा केन्द्र पर एकत्रित हुये थे उनकी मात्रा भी उतनी ही पाई गई जितनी उदजन की थी। इन दोनों का गुणनफल (अर्थात $१०^{-७} \times १०^{-७}$) $१०^{-१४}$ आता है। देखा गया है कि किसी भी घोल के विद्युत् विश्लेषण से उदजन गमन और उदूष्मिद गमन का गुणनफल $१०^{-१४}$ ही आता है। इस प्रकार यदि किसी घोल में उदजन गमन का अनुपात $१०^{-५}$ हो तो उसमें उदूष्मिद गमन अनुपात $१०^{-९}$ होगा। इसलिये वह जलीय घोल अम्लीय होगा।

सुविधा की दृष्टि से इस उदजन गमन अनुपात जैसे $१०^{-५}$ को व्यक्त करने के लिये मूलांक १० और ५ के साथ लगे घटाने के चिन्ह (—) इन दोनों को छोड़ कर केवल ५ अंक से व्यक्त करते हैं और इसे pH अथवा क्षाराम्ल मान कहते हैं। क्षाराम्लमान ७ हो तो घोल न क्षारीय होगा न अम्लीय जैसे उदासीन जल। यहं क्षाराम्ल मान ७ से जितना अधिक हो घोल उतना क्षारीय होगा तथा ७ से जितना कम हो घोल उतना अम्लीय होगा।

(सम्पादक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेद-विज्ञान

आयुर्विदेव वितते किल शास्त्र जाते पुम्भिः प्रयत्नपरकैर्भवतीह लभ्यम् ।
शक्तिं शिवं च जनता यदि कांक्षतीयम् विज्ञानमेव भजतां सततं विशेषम् ।।

वर्ष ५ | फाल्गुन २०१४ वि०, मार्च १९५८ ई० | अंक ३

सत्य की उपेक्षा क्यों ?

(श्री द्वारिकेश मिश्र)

बार वार इस बात का निवेदन किया गया है कि यह समय ऐसा है जब अन्य सब वातों को भूलकर सब लोग आयुर्वेद हित कि लिए निर्माण कार्य में लग जावें,यह अनुकूल समय चूके तो आयुर्वेद का ह्रास ही ह्रास है,परन्तु यह स्थिति निश्चय ही बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण है कि कुछ लोग इस निवेदन पर ध्यान नहीं देना चाहते और बेढंगे प्रचार के द्वारा समाज में विवाद की स्थिति ही बनाये रहना चाहते हैं । आयुर्वेद जगत में वैद्य रामनारायण और श्री शिवशर्मा का विवाद एक ऐतिहासिक महत्व पा गया परन्तु अब उसके पीछे की लकीर पीटना विवेक शीलता की वात नहीं है । उस विवाद के निर्णय की प्रतिक्रिया में जो बवण्डर सा उठा था, वैद्य रामनारायण जी ने उसका संवरण किया । निर्णय और मामले की जिरह को वैद्य समाज की सेवा में ज्यों का त्यों रख देना, सर्वथा उचित ही था क्योंकि यह विवाद विभिन्न प्रकार की चर्चाओं का विषय बन गया था और निर्णय एवं वादी पक्ष के बयानों को ज्यों का त्यों यदि प्रकाश में न लाया जाता तो कुछ महाशय निर्णय को जिन काल्पनिक आधारों का रंग देते, वह वास्तव में विचित्र होता । उस प्रकाशन के बाद जो सभायें हुई उनमें से कुछ की व्यक्तिगत जानकारी हमें है, और हम कह सकते हैं कि वैद्य रामनारायण जी ने लोगों की उमड़ती हुई भावनाओं का संतुलन किया । उन्होंने अपने वक्तव्य में भी यही आग्रह किया था कि हमें विवादों की चर्चा को छोड़कर विधायक कार्यों में लग जाना चाहिए । फिर जहां तक हमने देखा उस ओर से, कम से कम इस विवाद के विषय में, कोई टीका-टिप्पणी नहीं हुई थी । जब सब हो चुका तो उस पर बालू के तर्कों पर मन के किले खड़े करने की जरूरत नहीं थी । फिर भी पण्डित शिवशर्मा ने और पत्रिका सम्पादक ने,इस विषय को वक्तव्यों और टीका-टिप्पणी के रूप में, फिर से उभाड़ने और उभाड़ते रहने का क्रम आरम्भ कर दिया । यह स्थिति देखकर यह सम्भवाना बलवती हो जाती है, कि कुछ लोगों को अपने अर्जित गौरव और नेतागिरी को सुरक्षित रखना अधिक प्रिय है, आयुर्वेद के भले के लिए वे इतना भी त्याग नहीं करना चाहते,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि सचाई को भी चुप होकर बर्दाश्त कर लें। इसके विपरीत कुतर्कों पर आधारित ऐसे उत्तेजनापूर्ण प्रचार में वे संलग्न रहना चाहते हैं, जिससे इस संघर्षकाल में भी वैद्य जगत में पारस्परिक विवाद बढ़ते रहें और वातावरण पर रोष के पुंज छाये रहें, सबल ऐक्य स्थापित न हो सके और वैद्य समाज का ध्यान निर्माण कार्यों की ओर न लगकर, इन विवादों की सर्दी गर्मी में ही रमता रहे ताकि उनकी नेतागिरी सुरक्षित बनी रहे। ऐसे प्रकरणों से, राज्य को भी यह बहाना लगे हाथ मिलता रहता है कि वैद्य तो एक हैं नहीं और वैद्यों में रचनात्मक कार्य होता नहीं, फिर सरकार आयुर्वेद के लिए कैसे कुछ करे?

समझ में नहीं आता कब और कैसे इन प्रवृत्तियों में सुधार होगा? किन शब्दों में हम अपने भाइयों से आग्रह करें कि कम से कम से उस विज्ञान की रक्षा के नाम पर जिसके लिए हमारे कोटि कोटि पूर्वजों ने तपस्यायें की हैं और जिस पर हमारे वर्तमान एवं भविष्य के वैद्यों की जीविका निर्भर है, अपने हठ का और अपने खोखले आत्माभिमान का त्याग करके वास्तविकता के धरातल पर खड़े होकर सद्विवेक से काम लेवें। जो कुछ उन्होंने किया या जो कुछ हुआ, उसका इतना भी प्रायश्चित करने को वे क्यों तयार नहीं होते कि सत्य के सामने मौन हो जावें? यदि उनका यह विश्वास है कि उन्होंने कोई दोष नहीं किया तो उनका यह भी विश्वास होना चाहिए कि वैद्य समाज उनके साथ अन्याय नहीं करेगा। वैद्य समाज के आंखें है, विवेक है और हृदय भी है।

उस विवाद के निर्णय के बाद पण्डित शिवशर्मा ने निर्णय पर जो टीका-टिप्पणी अपने धाराप्रवाह वक्तव्यों में की है, हमें उस पर दुःख भी होता है और दया भी आती है। पण्डित शिवशर्मा से किसी ने प्रार्थना तो की नहीं थी कि आप वैद्य जगत् के इस प्रसंग को अदालत में ले जाइए। तब तो वे लोगों के समझाने पर भी नहीं माने थे। उस समय उनकी विवेक बुद्धि में यह बात नहीं आई थी कि यह वैद्यों का मामला है और इसको वैद्यों के सामने रखकर उनके ही न्याय पर छोड़ना चाहिए। जब उस समय पण्डित शिव शर्मा ने वैद्य समाज की परवाह नहीं की आज क्यों वे अपने कुतर्कों से वैद्य समाज के मस्तिष्क को विकृत करने का असफल प्रयास कर रहे हैं?

हां, यदि उस विवाद में और उसके निर्णय में वास्तव कोई ऐसी बात हो गई होती, जिसको पण्डित शिवशर्मा अपने वक्तव्यों द्वारा दिखाना चाहते हैं, उनके पास अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिए कुछ यथार्थ तथ्य होते और उन्हें वे अपने वक्तव्यों के द्वारा प्रकाश में लाते तो हम उनका हृदय से स्वागत करते। परन्तु वे वक्तव्यों में तथ्यों की किस चमत्कार पूर्वक, तोड़ मरोड़ कर रहे हैं यह आगे के विश्लेषण से स्पष्ट हो जायगा।

हम नहीं चाहते थे कि यह प्रसंग इस रूप में आगे बढ़े, परन्तु जब हम देखते हैं, समाज में विधायक कार्यों को उत्साह के साथ प्रोत्साहन और सहयोग देने के स्थान पर और समाज में निर्माणात्मक वातावरण बनाने के स्थान पर विवादों की विकृति से ऐसी क्षुब्ध स्थिति निर्मित की जा रही है जिससे वैद्य समाज उसी में उलझा रहे और अपने विकास और महा सम्मेलन की ओर से उदासीन ही बना रहे, तो विवशतापूर्वक हमें उन वक्तव्यों के सम्बन्ध में कलम उठानी पड़ रही है, जिनके द्वारा सत्य के चित्र को ही बदलने का प्रयास किया जा रहा है और वैद्य समाज में एक विचित्र स्थिति का निर्माण हो रहा है।

नवम्बर ५५ में श्री शिव शर्मा जी ने एक संक्षिप्त वक्तव्य प्रकाशित किया था, उसका निम्न अंश अपने मुंह बोलता है:

"यदि कोई व्यक्ति श्वेत वस्त्र पहन कर निकले और कोई उस पर कीचड़ फ़ेंक दे, तो न तो वह दूसरे पर कीचड़ फेंकता है, और न वहां बैठकर स्वयं कपड़े धोने लगता है। वह कपड़े धोबी को सम्भाल देता है। इस प्रकार मैले लेखों द्वारा धवल यश पर फेंके गये कर्दम को दूर करने का भी सुप्रबन्ध है ही——न्यायालय।

हमारे सदस्य बन्धु दो प्रकार के हैं। एक सत्य जानना चाहते हैं, दूसरे तमाशा देखना चाहते हैं। न्यायालय दोनों की इच्छा पूर्ति करता हैं। वहां सत्य का निर्णय भी निश्चयात्मक होता है और हमारे तमाशबीन महारथियों को तमाशा भी अच्छा दीखता है।"

इसके अतिरिक्त न्यायालय का निर्णय झगड़े को समाप्त कर देता हैं। पत्रों में उत्तर न तो कभी समाप्त होते हैं और न कोई ऐसा निर्णय ही होता है जिसको अन्तिम और निश्चयात्मक कहा जा सके।"

(महासम्मेलन पत्रिका १९५५, पृष्ठ ६३६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यायालय के निर्णय को ही सदा से, अन्तिम, सत्य और निश्चयात्मक मानने वाले पण्डित शिव शर्मा ने जब गर्व के साथ बम्बई के एक न्यायालय में मानहानि का दावा किया था, तब कदाचित दो विचार उनके उद्वग्नि मस्तिष्क में घूम रहे थे। एक तो यह कि जिस पर प्रहार किया जा रहा है वह व्यवसाय व्यस्त व्यक्ति मुकदमा लड़ने के झंझट में न पड़ कर पं० शिव शर्मा जी के इच्छा संकल्पों के अनुरूप समझौता कर लेगा और पहिले से भी अधिक धाक जमी रहेगी, दूसरा यह कि बड़े बड़े लागों से अपने व्यक्तिगत सम्पर्कों का चमत्कार दिखाकर न्यायालय के वातावरण पर अनायास ही छा जायेंगे और इस प्रकार पराजय की सम्भावना पास नहीं फटक पायेगी। पं० शिव शर्मा को यह कल्पना नहीं थी कि लेख वास्तव में बहुत खोजपूर्ण हैं और उस लेख में व्यक्त बातों के सम्बन्ध में इतने अकाट्य प्रमाण दूसरे पक्ष को सुलभ हैं, उन्हें अपने सर्वव्यापी प्रभाव चमत्कृत करने वाले पैंतरों पर अधिक विश्वास था।

उपरोक्त दो विचारों की प्रतिक्रिया स्पष्ट सामने आयी। विवाद के प्रतिवादियों को बहुविधि और विविध सूत्रों से समझाया गया कि भूल स्वीकार करके समझौता कर लो, कहां झगड़े में वर्षों पड़े रहोगे। दूसरी ओर अनावश्यक ही गवाहों के रूप में ऐसे नामों को पेश किया गया और बयानों में ऐसे सम्पर्कों का उल्लेख किया गया कि न्यायालय की प्रत्येक ईंट यह जान कर कांप जाय कि पण्डित शिव शर्मा जी कोई मामूली हस्ती नहीं।

एक महत्वपूर्ण बात यह है कि अदालत में यह विवाद केवल इस बात के निर्णय के लिए चल रहा था, कि सचित्र आयुर्वेद में प्रकाशित लेख में जिन बातों को पं० शिव शर्मा जी ने आक्षेप माना है वे तथ्यपूर्ण उचित और सत्य पर आधारित हैं या नहीं। इस पर विचार नहीं होना था कि पण्डित शिव शर्मा का व्यक्तित्व क्या है? लेख में लिखित सारी बातें आयुर्वेद जगत और महासम्मेलन में पण्डित शिव शर्मा के कार्य कलापों से सम्बन्धित थीं, उनके विषय में ऐसे व्यक्तियों की गवाही का, चाहे वे कितने ही महान हों, कोई प्रश्न ही नहीं उठता, जिनका महासम्मेलन से कोई सम्बन्ध न रहा हो और उसकी गतिविधि का जिन्हें कोई प्रत्यक्ष ज्ञान न हो। माननीय न्यायाधीश का यही कहना था कि पण्डित शिव शर्मा जी क्या है—इस पर गवाही की जरूरत नहीं। देखना तो यह है कि लेख सत्य पर आधारित है या नहीं। उन बातों का इन गवाहों से कोई सम्बन्ध नहीं, इसलिए उनकी गवाही न आवश्यक है न संगत।

मोटी अक्ल की बात है कि हंगरी के डाक्टर अर्विन बैंक्टे, माननीय मुरार जी देशाई, माननीय गुलजारीलाल जी नन्दा, या माननीय श्री ढेबर जी का महासम्मेलन से क्या मतलब? अथवा इन स्वयं राजनीति व्यस्त महापुरुषों को आयुर्वेद महासम्मेलन की अट्ठारह वर्ष की अन्तरंग कार्यवाहियों की क्या जानकारी हो सकती है? लेख पर आधारित इस मामले के प्रसंग में जिन बातों का जिन वैद्यों से सम्बन्ध था, उनको यदि गवाही रूप में बुलाने का आवेदन किया गया होता, तब तो कोई बात थी। २२०० रुपये की वापसी के मामले में माननीय श्री मुरार जी देशाई क्या बताते? हां, स्वनामधन्य श्रीं स्वामी दत्तपादाचार्य जी महाराज से पूछने की मांग तो न्याय संगत हो भी सकती थी। परन्तु सम्बन्धित व्यक्तियों को न बुलाकर पण्डित शिवशर्मा ने अपनी महानता को प्रभावशाली बताने के लिये अकारण ही इन सुख्यात व्यक्तियों के नाम को अपनी दलदल में घसीटा। कदाचित केवल इस वांछा से कि लोगों को मालूम हो जाय कि उनका निकट सम्पर्क ऐसे महान व्यक्तियों से है।

इस प्रकार चातुर्य के अजीर्ण ने ही कदाचित पण्डित शिव शर्मा को इस भ्रांति से आवृत्त कर दिया था कि इस विवाद का निर्णय उनके विपक्ष में नहीं जा पाएगा। सत्य से अधिक विश्वास उन्हें अपने प्रभाव के चमत्कार और अपनी आपातभद्र बुद्धि पर था।

आरम्भ में उन्होंने अपने उक्त वक्तव्य में बुलन्दी के साथ कहा था कि न्यायालय का निर्णय झगड़े को समाप्त कर देता है। पत्रों में न तो उत्तर कभी समाप्त होते हैं और न कोई ऐसा निर्णय होता है, जिसको अन्तिम और निश्चयात्मक कहा जा सके। विवाद के दिनों में वे प्रायः कहा करते थे कि यदि अदालत से लेख में लिखी बातें न्याय सिद्ध हो जायेंगी तो मैं सदा के लिये आयुर्वेद महासम्मेलन से अपने को पृथक कर लूंगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब न्यायालय के निर्णय ने लेख में लिखी बातों को तथ्यपूर्ण और सत्य सिद्ध कर दिया, प्रस्तुत लेख में वर्णन से भी अधिक विशद् रूप में दोष सिद्ध किया तो पण्डित शिव शर्मा महासम्मेलन त्याग की बात से तो मुकर ही गए, अपने प्रकाशित वक्तव्य की घोषणा से भी फिर गए और फिर पत्रों में उत्तर के वक्तव्य फटकारने लगे।

इस बात को साधारण सी बुद्धि वाला आदमी भी समझ सकता है कि मामले में पण्डित रामनारायण की अपेक्षा पण्डित शिवशर्मा को अपनी अनुकूलता बनाने के अधिक साधन सुलभ थे। पहिले तो वैद्य रामनारायण जी प्रतिवादी थे और पण्डित शिव शर्मा दावा करने वाले, दूसरे अदालत झांसी में या कलकत्ता में न होकर श्री शिव शर्मा के घर बम्बई में थी, तीसरे लेख की घटनाओं विषयक कागजों पर पण्डित रामनारायण का हस्तक्षेप न होकर, निकटतम जानकारी और सीधे सम्बन्ध के कारण पण्डित शिव शर्मा का स्पष्ट अधिकार था, चौथे अदालत के क्षेत्र और उसकी गतिविधि में सर्वत्र अंग्रेजी व्याप्त थी, जिसका पण्डित शिव शर्मा अपने को बड़ा योग्य और स्वयं को एक खासा वकील समझते हैं। पांचवें पण्डित रामनारायण को कोई आरोप करने की छूट नहीं थी, उन्हें तो अपना बचाव भर करना था, जब कि श्री शिव शर्मा को आरोप को मनचाहा लम्बा चौड़ा करने की सुविधा थी और किया भी। दावा करने वाला होने के नाते पण्डित शिव शर्मा को तो अगणित सुभीते थे। केवल एक ही सुभीता न था और वह यह कि न्यायतुला पर वे सत्य को असत्य नहीं बना सकते थे जो चातुर्य महासम्मेलन के मंच पर किया जाता था, उसकी छूट वहां न थी, क्योंकि वह न्यायालय था।

आजकल यह एक साधारण सी बात हो गई है कि लोग पहिले तो जोश में आकर अदालत की ओर भागते हैं और जब वहां न्याय के सामने मनमानी नहीं चल पाती तो निर्णय के बाद अपनी हार के आंसू पोंछने के लिए कुतर्कों पर आधारित टीका-टिप्पणी करने लगते है। जो नीचे स्तर के लोग होते हैं वह यही कहते फिरने लगते हैं कि साहब, अदालतें तो बड़े आदमियों की हैं, हमारी सुनता कौन है? कहीं कहते हैं कि हमारे गवाह नहीं आने दिये, कहीं कहते हैं कि हमारी बात को ठीक से सुना ही नहीं गया। कहीं कहते हैं कि अदालत में घूंसखोरी चलती है। वह तो रुपये के बल पर जीत गया क्योंकि उसने कई बड़े वकील कर लिये थे। अक्ल के दुश्मनों की समझ में यह नहीं आता कि कहीं रुपया के बल पर न्याय बदला करता हैं। अथवा बड़े वकील सत्य कोई बदल सकते हैं। परन्तु निम्न कोटि के बुद्धि विचार वाले लोग ऐसा ही प्रचार करने में अपनी शान समझते हैं।

पण्डित शिवशर्मा को तो हम ऐसी श्रेणी में नहीं गिन सकते। वे बुद्धिमान व्यक्ति हैं और उनसे उनके अनुरूप प्रतिक्रियायें ही होना चाहिए थीं। हमें आश्चर्य ही नहीं खेद भी है कि स्वमुख से मर्यादा सम्पन्नता में बहुत मान सम्मान वाले और चतुर व्यक्ति श्री शिवशर्मा जी आखिर क्यों इस हठ नीति का अनुसरण कर रहे हैं। ऐसे अपढ़ कुपढ़ लोग तो बात के ऊपर यह कह कर अलग हो जाते हैं कि "वह सोना जल जाय जिससे नाक छने।"

एक पहलू तो यह होता है कि किसी विवाद के निर्णय के बाद किसी व्यक्ति को यदि उस निर्णय से सन्तोष न हो और उसको अपना पक्ष सिद्ध करने के लिये वास्तविक सत्य का संबल सुलभ हो तो वह उस निर्णय के विरुद्ध दूसरे उच्च न्यायालय में अपील करले और जो कमी उधर रह गई हो उसकी पूर्ति उधर कर ले। दूसरा पहलू यह हो सकता है, और किसी न्याय निर्णय के बाद एक सच्चे व्यक्ति के लिए शोभाजनक बात भी यही कही जा सकती है, कि वह पूर्व व्यक्त वचनों का ईमानदारी के साथ पालन करके एक साहसी सत्यानुरागी की भांति वस्तुस्थिति को स्वीकार करले। वास्तविक सम्मानित और प्रभावपूर्ण व्यक्ति तो वही कहा जा सकता है, सम्मान जिसके पीछे डोला करता है न कि वह जो सम्मान से चिपका फिरता है। निर्लिप्त और निःस्वार्थ उसी को कहा जायगा जो किसी समुदाय का, जिससे उसका सम्बन्ध हो, यदि एक भी व्यक्ति यह आक्षेप करदे कि उसके कारण समुदाय का अमुक अहित हुआ है तो वह तड़ाक से उस समुदाय से अलग खड़ा होकर अपना निस्वार्थपन सिद्ध करदे फिर यदि वह निर्दोष हो और समुदाय वाले चाहें तो उसको मनाते फिरें। वैसे इस जमाने में चालाक लोगों के लिये तो ऐसा नाटक रच लेना भी कठिन नहीं कि स्वयं समुदाय से अहसान के साथ हटने की बातें करने लगें और अपने कुछ चुने हुये पालित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृष्ठपोषकों से आग्रह करा बैठे कि "भगवान ऐसा गजब न कीजिये, आप नहीं होंगे तो इस बूढ़ी संस्था का कल्याण कौन करेगा ?" और फिर स्वयं कहें कि मैं क्या करूं भाई, मैं तो अब नहीं चाहता, परन्तु मेरे पास पत्रों का तूफान उमड़ आया है। हां, साहब ऐसे दरबारों में तूफान ही उमड़ा करते हैं। दिल्ली की एक पत्रिका के सम्पादकीय में एक महास्वामी जी ने भी लिखा था कि उनके कार्यालय में एक सज्जन का वक्तव्य आया। उसके आने का समाचार नगर भर में एकदम फैल गया और सम्पादक जी को फोन पर फोन आने लगे। त्राहिमान-त्राहिमान ! देखिए क्या जादू है। इसे फोन का तूफान कहते हैं। अपने मस्तक को टटोलिए और सोचिये कि वक्तव्य तो डाक से आया सम्पादक जी के पास, पर उसके जाते ही उसका समाचार किस रेडियो से नगर भर में एक दम फैल गया ? तो कहने का अभिप्राय यह है कि चतुर लोग ऐसे काल्पनिक तूफानों से खेलकर वैसा नाटक का दिखावा कर सकते हैं, पर जहां इतना करने में भी वास्तव में शासन खिसक जाने की सम्भावना हो वहाँ कोई त्याग का विचार भी कैसे कर सकता है ?

कभी-कभी दूर तक सोचने से ऐसे स्थल पर बुद्धि कुनमुनाने लगती है कि आखिर सार्वजनिक संस्थाओं में क्या ऐसी मिठाई होती है कि चारों ओर की चौमुखी फजीहत के बाद भी कोई-कोई टस से मस होने का नाम नहीं लेते। सिवा इसके और कोई बात विचार में नहीं आती कि ऐसी स्थिति उसी अवस्था में हो सकती है जब कि उस व्यक्ति के कुछ विशिष्ट स्वार्थ संस्था के माध्यम से सिद्ध होते हैं। या उसका पेशा ही संस्था बाजी बन गया हो। क्योंकि जिनका स्वाभाविक पेशा ही प्रचार की भूमि पर किले खड़े करने का हो जाता है उनके लिये संस्थाओं की नेतागिरी ही जीवन का एक मात्र साधन रह जाता है और साध्य भी। और जिनका साध्य ध्येय ऐसा बन जाता है वे तर्क-कुतर्क करके अपने झूठ को ही सत्य का नाम लेकर प्रचारित करने में संलग्न रहते हैं। एक कारण यह भी हो जाता हे कि संस्था पर दीर्घ कालीन अधिकार के समय में कुछ लोग अवसर पाकर आर्थिक या अन्य प्रकार की अनियमिततायें कर बैठते हैं, फिर उन्हें सदा यह भय सताता रहता है कि संस्था दूसरों के हाथों में पहुँची तो कहीं उनका वह रहस्य न खुल जाय। इसलिये पुराने कागजों को समाप्त करने या स्वयं या अपने वर्ग को आसन पर जमाये रहने में भरसक प्रयत्नशील रहते हैं। इस प्रकार के किसी व्यक्ति के जीवन और कार्यों का यदि तथ्य विश्लेषण किया जाय तो यह बात आसानी से समझ में आ सकती है।

परन्तु पण्डित शिवशर्मा के विषय में भी क्या ऐसा सोचा जा सकता है ? हम तो ऐसा सोचना कदापि ठीक नहीं समझते। फिर क्या बात ऐसी हो सकती हैं जिसके कारण पण्डित शिवशर्मा जी को इतने के बाद भी कि उन्होंने अपने भरपूर दृढ़ विश्वास के साथ एक मामला चलाया, उसमें केवल उनके स्वयं के ही शपथ पूर्वक दिये गये बयानों और प्रमाणों के आधार पर निर्णय हुआ। मामला पहले से बहुश्रुत होने के कारण तमाम भाषाओं के पत्रों ने उस निर्णय के समाचार को प्रकाशित किया, सारे आयुर्वेद जगत् में यह चर्चा का विषय बना, परन्तु पण्डित शिव शर्मा जी ने किसी उदार प्रतिक्रिया के स्थान पर न्यायसिद्ध सत्य को भी बदलकर दिखाने का उपक्रम आरम्भ कर दिया। निश्चय ही इसमें कोई गम्भीर रहस्य-मय कारण है, जिसके विषय में अभी कल्पना या विचार करना उचित नहीं होगा।

यदि हम पण्डित शिवशर्मा जी की वक्तव्य शृंखला के प्रथम भाग को सामने रखकर विचार करें, तो सीधी सी बात यह समझ में आती है कि जरा सी बात के लिये इतने तूफान की जरूरत नहीं थी।

अपने प्रथम वक्तव्य को आरम्भ करते हुये पण्डित शिवशर्मा ने मानहानि विवाद के निर्णय पर प्रकाशित एक पुस्तिका की भूमिका पर आक्षेप किया है, और उस छोटी भूमिका में उनको "बहुत से असत्य" दृष्टिगोचर हुए हैं। यद्यपि उन "बहुत से असत्यों" में वे केवल एक ही गिना सके हैं और वह भी विषय वस्तु की मूल भावना की स्पष्ट उपेक्षा करके। बात को अपनी तरह समझाने के लिये श्री शिवशर्मा ने इतना गम्भीर प्रयास किया कि उनको महामान्य राष्ट्रपति से भेंट का आयोजन करना पड़ा। राष्ट्रपति के तीन वर्ष पुराने पत्र व्यवहार के कागजों की तलाश करानी पड़ी।

"वैद्य समाज को वास्तविक सत्य प्रमाणिक ढंग से पहुंचाने के लिये" श्री शिवशर्मा का यह विचित्र बुद्धि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौशल ठीक वैसा ही है जैसे कोई जड़ को काटकर पत्तों को सींचने लगे।

श्री शिवशर्मा ने अपने वक्तव्य में पुस्तिका की भूमिका के "अप्रिय घटना से समाज चिन्तित" शीर्षक अंश की सभी बातें "जड़ से झूठी" बताई हैं और अपने निष्कर्ष के प्रमाण में "राष्ट्रपति भवन से खण्डन" प्रस्तुत किया है।

स्पष्टतः यह प्रयास श्री शिवशर्मा ने पुस्तिका की भूमिका के उस अंश की मूल भावना की उपेक्षा करके किया है। अप्रिय घटना मूलतः केवल यह नहीं थी कि महामान्य राष्ट्रपति ऋषिकेश आये और बिना शिलान्यास किये लौट गये, प्रश्न यह भी नहीं था कि महामान्य राष्ट्रपति को कौन व्यक्ति विशेष निमन्त्रित करने गया। प्रत्युत वैद्य समाज के लिये अधिक अप्रिय घटना यह थी कि पचास वर्षों से वैद्य समाज जिस आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना के लिये लालायित था। और एक अति दीर्घ प्रतीक्षा के बाद ऋषिकेश में उस उत्कट लालसा की पूर्ति की योजना सफलता की अंतिम सीमा रेखा तक पहुँचने के बाद यकायक एक झटके के साथ अवरुद्ध हो गई।

यद्यपि उसके पूर्व भी कई अवसर ऐसे आये जिनमें आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना की योजनायें बन बन कर बिगड़ बिगड़ गईं। परन्तु उसके पूर्व योजना कभी इस सीमा तक नहीं पहुँची थी कि शिलान्यास की तिथि तक का निश्चय हो गया हो और देश के सर्वोच्च व्यक्तित्व को शिलान्यास के लिये प्रस्तुत कर लिया गया हो—इतनी आगे बढ़कर भी ऋषिकेश में विश्वविद्यालय स्थापना की योजना यकायक बालू के महल की भांति बिखर गई—यह बात वैद्य समाज के लिये न केवल अप्रिय घटना थी बल्कि शर्मनाक प्रसंग था। क्या श्री शिवशर्मा जी इस मूल बात से भी इन्कार कर सकते हैं ?

दूसरी बात-पुस्तिका की भूमिका में इस बात का उल्लेख नहीं है कि कौन व्यक्ति विशेष महामान्य राष्ट्रपति को निमन्त्रित करने स्वयं उनके पास गये थे। स्पष्ट है कि महामान्य राष्ट्रपति को किसी व्यक्ति ने नहीं बुलाया था। उनको आमन्त्रित किया था आयुर्वेद महा सम्मेलन नाम की एक अखिल भारतीय संस्था ने, जिसके प्रधान अध्यक्ष थे श्री शिवशर्मा जी। उस संस्था की रीति-नीति, उस संस्था की योजनाओं और उस संस्था की प्रत्येक गति-विधि के लिये तत्कालीन अध्यक्ष होने के नाते क्या श्री शिव शर्मा जी उत्तरदायी नहीं कहे जा सकते हैं ? और इस नाते क्या इस प्रसंग में श्री शिवशर्मा अपनी इस चातुरीपूर्ण सूझ के विचित्र प्रयास द्वारा उत्तरदायित्व से विरक्त हो सकते हैं। जिस ३८वें इन्दौर सम्मेलन में, ऋषिकेश में आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना की योजना तैयार करने का प्रस्ताव स्वीकार हुआ—उसके सभापति श्री शिवशर्मा थे। योजना सम्पादित करने के लिये पांच व्यक्तियों की जो समित्ति बनी थी उसके प्रथम व्यक्ति श्री शिवशर्मा जी थे। कलकत्ता में २४ जून को पत्रकार सम्मेलन में ऋषिकेश में महासम्मेलन की ओर से विश्वविद्यालय स्थापित करने की योजना को सगर्व घोषित करने वाले श्री शिवशर्मा जी थे। १० नवम्बर ५३ को दिल्ली में हुई स्थायी समिति की बैठक में प्रस्ताव संख्या १५ द्वारा किसी विशिष्ट व्यक्ति द्वारा विश्वविद्यालय के शिलान्यास की व्यवस्था का सम्पूर्ण भार जिन दो व्यक्तियों पर डाला गया उन में एक और प्रथम व्यक्ति श्री शिवशर्मा थे। कोट्टकल के जिस महासम्मेलन में प्रस्ताव संख्या ६ द्वारा विश्वविद्यालय के शिलान्यास के हेतु महामान्य राष्ट्रपति का नाम निश्चित किया गया था उसके अध्यक्ष श्री शिवशर्मा जी थे। ऋषिकेश में विश्वविद्यालय कार्यसमिति के प्रथम सभ्य श्री शिवशर्मा जी थे महासम्मेलन स्थायी समिति एवं विद्यापीठ कार्य समिति के जिस बंगलोर अधिवेशन में ऋषिकेश विश्वविद्यालय की योजना स्वीकृत हुई थी उसके अध्यक्ष श्री शिवशर्मा जी थे इतने पर भी क्या केवल राष्ट्रपति महोदय को निमन्त्रित करने स्वयं न जाने मात्र से श्री शिवशर्मा उस घटना से अलग कहे जा सकते हैं ?

१३ अक्टूबर ५४ को विज्ञान भवन ऋषिकेश में महामान्य राष्ट्रपति के स्वागत में स्वयं श्री शिवशर्मा जी ने सम्मेलनाध्यक्ष के रूप में जो भाषण दिया था उसके निम्न अंश दृष्टव्य हैं :—

"...निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन की प्रार्थना को स्वीकार कर श्रीमान् ने इस अवसर की जो शोभा बढ़ाई है, उसके लिये इस देश के आयुर्वेदिक सम्प्रदाय की ओर से कृतज्ञता प्रगट करता हुआ, हिमालय के इस प्राचीन शास्त्रपीठ में, श्रीमान् का विनीत एवं हार्दिक स्वागत करता हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"......यही मुख्य कारण है कि आयुर्वेद महासम्मेलन ने उपेक्षा और अन्याय से दलित आयुर्वेदीय विद्वता को एकत्रित व संगठित कर वास्तविक आयुर्वेदिक योग्यता के उत्पादन में संयोजित करने के लिए इस आयुर्वेदिक शिक्षा केन्द्र की स्थापना में बलवत्तर प्रयत्न किया है—... ।"

श्री शिवशर्मा के भाषण के उत्तर में महामान्य राष्ट्रपति ने जो भाव व्यक्त किये थे उनका सारांश निम्न प्रकार है :—

'......मैं यहां शिलान्यास के विशेष कार्य को सम्पन्न करने पहुँच गया हूँ। मैंने इस अवसर के लिए अपना भाषण भी प्रस्तुत कर लिया था, लेकिन यहां जिस विशेष कार्य से मेरा आना हुआ, वह सम्भव नहीं हो सका। वैद्यों को पूर्ण संगठित होकर कार्य करना चाहिये।'

इन उद्धरणों से क्या व्यक्त होता है ? पाठक स्वयं विचार करें। माना कि श्री शिव शर्मा राष्ट्रपति को निमन्त्रित करने स्वयं नहीं गए थे। यह भी ठीक है कि हरिद्वार को प्रस्थान करने से पूर्व दिल्ली में ही महामान्य राष्ट्रपति को सूचित कर दिया गया था कि शिलान्यास होने की सम्भावना नहीं ? फिर भी उदार राष्ट्रपति ऋषिकेश पधारे। तो क्या महामान्य राष्ट्रपति जबरन अपनी इच्छा से ही ऋषिकेश आ गये होंगे ? वैद्यों के प्रीतिभोज में सम्मिलित होने का निश्चय महामान्य राष्ट्रपति महोदय ने क्या बिना किसी निमन्त्रण के ही कर लिया होगा ?

यह तो ज्वलन्त सत्य है कि विश्वविद्यालय का शिलान्यास नहीं हुआ। और महामान्य राष्ट्रपति को इस योजना का एकाएक स्थगित हो जाना अच्छा नहीं लगा—यह उनके उन भावों से स्पष्ट है जो उन्होंने कृपा करके ऋषिकेश में व्यक्त किए थे। इस प्रकार श्री शिव शर्मा व्यक्ति के रूप में महामान्य राष्ट्रपति को स्वयं निमन्त्रित करने न भी गए हों, तो भी वे सम्मेलनाध्यक्ष के रूप में और विश्वविद्यालय योजना की हर गतिविधि में उनकी प्रमुखता होने के कारण उस घटना क्रम के लिए निश्चय ही सर्वाधिक उत्तरदायी हैं, इस तथ्य से इन्कार करना दिन को रात कहने के बराबर है। और वैद्य समाज के लिए घटना की अप्रियता वस्तुतः विश्वविद्यालय योजना की दुःखान्त असफलता है, जिसके लिये तत्कालीन अध्यक्ष होने के नाते श्री शिव शर्मा को अपना उत्तरदायित्व स्पष्ट स्वीकार करना चाहिए।

पण्डित शिव शर्मा के प्रथम वक्तव्य में दूसरी बात जोर देकर यह कही गई है कि तीन प्रमुख मान्य गवाहों की अस्वीकृति ने मेरे रिकार्ड पर आवश्यक गवाही लाने में रुकावट डाल दी जिसके फलस्वरूप मैजिस्ट्रेट को कल्पना का सहारा लेना पड़ा।

उन गवाहियों की अनावश्यकता के सम्बन्ध में ऊपर पर्याप्त कहा जा चुका है। लेख की इस बात पर कि पण्डित शिव शर्मा के भाषणों ने केन्द्र और प्रांतों के कुछ मन्त्रियों को कठिनाई में डाला है—पं० शिव शर्मा माननीय श्री गुलजारीलाल जी नन्दा की गवाही दिलाना चाहते थे। पाठक विचार करें कि माननीय नन्दा जी इस बात पर क्या कह देते जब कि स्वयं पण्डित शिव शर्मा के एक वक्तव्य का निम्न अंश उस तथ्य को प्रमाणित करता है।

'——केन्द्र और राज्यों के उच्चाधिकारी जिन्होंने आयुर्वेद का सदा समर्थन किया है और जिनमें मुझे गम्भीर विश्वास और श्रद्धा है—, उनका विचार है कि यद्यपि असत्य के प्रति मेरी असहिष्णुता सिद्धान्त रूप में अनुचित नहीं, परन्तु जिन कठोर शब्दों में, मैं उसे व्यक्त करता हूँ उनसे जिस रूप में वह आयुर्वेद का समर्थन करना चाहते हैं, उसमें उन्हें संकोच और कठिनाई अनुभव करने पड़ते हैं।'

(महासम्मेलन पत्रिका जून ५५ पृष्ठ ३२८.)

जिस बात को स्वयं श्री शिव शर्मा अपने श्रीमुख से स्वीकार करते हैं उसके लिए भी किसी की गवाही की क्या आवश्यकता थी और क्या औचित्य ?

परन्तु पण्डित शिव शर्मा अनावश्यक गवाहियों की अस्वीकृति को कारण बताकर तथ्य पूर्ण निर्णय को भ्रांत करने का प्रयास जब करते हैं तो सोचना पड़ता है कि सत्य की यह उपेक्षा क्यों ?

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैव सिद्धान्त ही त्रिदोषवाद का कारण था

आज से दो सहस्र वर्ष पूर्व का युग प्रयोग वाद का युग नहीं था। उस समय तो प्रत्यक्ष करने के साधन इतने न्यून थे कि स्थूल से स्थूल वस्तु की आंतरिक रचना को सही सही नहीं जान पाते थे, इसलिये उस समय के विद्वान—जिसे वह प्रत्यक्ष नहीं कर सकते थे अनुमान से जानने समझने का प्रयत्न करते थे, उसी अनुमान के आधार पर हमारे अनेकों सिद्धांत स्थापित हुए थे उनमें से एक त्रिदोष वाद भी था। इसी त्रिदोषवाद के स्थापन करने में अनेक कारणों में से मुख्य कारण शरीरस्थ वासी अनेक प्रकार के जीवाणु और कीटाणु भी थे, जिनका उस समय प्रत्यक्ष ज्ञान का साधन न होने से सही रूप में यह जाने न जा सके थे। यद्यपि हमारे आचार्यों ने आज से दो सहस्र वर्ष पूर्व ही इनके अस्तित्व को अनुमान से जान लिया था, किंतु प्रत्यक्ष साधन न होने से इनका शरीर के स्वास्थ्य पर और व्याधियों से कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है? इसको वे सही तौर पर नहीं जान पाए थे। और अब का वैद्य समाज इस प्रायोगिक युग में रहता हुआ विद्यमान प्रायोगिक ज्ञान से बिलकुल ही कोरा है इसलिये इस विषय की सच्चाई को यह देखने समझने में अपने को असमर्थ पाता है। यह अत्यन्त दुःखद स्थिति है।

अब तो जैव वाद कोई वाद नहीं है,प्रत्युत प्रत्यक्ष साधनों से अच्छी तरह देखा समझा एक दृढ़ सिद्धांत है इस जैव सिद्धांत की वास्तविकता का रहस्य मालूम होने पर ही शल्य चिकित्सा में विशेष उन्नति सम्भव हुई, इसी जैव सिद्धांत की रोगों पर व्यापकता को सही सही जानने पर ही बड़ी बड़ी जैवोद्भवी व्याधियों पर विजय पाना आसान हो सका। इसी जैव सिद्धांत को प्रत्यक्ष व्यवहारीय बना कर इन्हीं जैवों की सहायता से विशेष जैवों को रोपण कर एक ही प्रकार की जैव कृषि से पेन्सिलीन, स्ट्रैप्टो मायसीन, एयरोमायसीन जैसे जैवोद्भवी रासायनिक द्रव्यों को प्राप्त कर चिकित्सा क्षेत्र में उन्नति की जा सकी है। इतनी बड़ी चमत्कृत क्रांति को देखते हुए वैद्य समाज का सूक्ष्म दर्शक यंत्र को हाथ में न पकड़ना और जैवी जगत को देखने समझने की ओर हाथ न बढ़ाना महान् अनर्थ का कारण है। विश्व में हो रही चिकित्सा क्षेत्र की उन्नति को देखते हुए अपने को वंचित रखना वास्तव में चिकित्सा व्यवसाय को समाप्त करना है।

इस समय यह अच्छी तरह से प्रत्यक्ष दिखाया जा सकता है कि मनुष्य शरीर पर रह कर पलने वाले अनेक प्रकार के जैव हैं, यह जैव हमारी खाल, नाक, मुख, गला से लेकर अन्न प्रणाली की पोली नली गुदा द्वार तक में निवास करते हैं। और यह भी देखा समझा गया है कि इनकी उपस्थिति का अच्छा और बुरा प्रभाव सदा शरीर पर होता रहता है जिससे अनेक तरह के ऐसे सूक्ष्म विकार उत्पन्न होते रहते हैं जिनका साधारणतया कोई ज्ञान चिकित्सकों को नहीं होता।

हमारे शरीर में मुख से लेकर जो गुदा पर्यन्त एक पोला रास्ता चला गया है इसी पोले मार्ग के द्वारा प्रत्येक प्राणी अपनी भोजन सामग्री अपने अन्दर पहुंचाता है, यह पोला मार्ग हमारे भोजन के पचन का पूर्ण स्थल तो है ही आधुनिक अनुसन्धानों से पता लग रहा है कि जिस तरह बाहर कूड़ा करकट किसी स्थान पर पड़ा पड़ा सड़ता है और बदबू छोड़ता रहता है इस कूड़े के सड़ने और बदबू देने का कारण उस कूड़े में अनेक प्रकार के जैव देखे जाते हैं जो उस कूड़े को खाकर सड़ाते है। मनुष्य के इस पोले मार्ग के काफी स्थान में भी यह सूक्ष्म जैव सदा करोड़ों की संख्या में बने रह कर उस मानवी खाद्य को सड़ाते रहते हैं हमारे शरीर का यह पोला भाग इन जैवों के निवास का बहुत ही अनुकूल स्थल है।

इस समय के अनुसन्धानों से सिद्ध हो रहा है कि जिस तरह इस पृथ्वी पर चराचर प्राणी व्याप्त हो रहे हैं, पृथ्वी का कोई स्थान ऐसा नहीं जहां कोई स्थावर वर्ग या जंगम वर्ग का प्राणी न रहता हो इसी तरह इस विश्व में ऐसे भी अदृश्य प्राणियों की सृष्टि भरी पड़ी है जिन्हें नंगी आंखों से नहीं देखा जा सकता। और जिस तरह दृश्य जगत् वनस्पति और प्राणी वर्ग दो भेदों में विभक्त दिखाई देता है इसी तरह इस अदृश्य जगत् की भी दो प्रकार की सृष्टि दिखाई देती है। वनस्पति वर्ग के जैवों को वानस्पत्याणु, तृणाणु, शाकाणु, उद्भिदाणु, कीटाणु आदि नाम दिये गये हैं जंगम वर्ग के जैवों को जीवाणु के नाम से सम्बोधन किया गया है। इनको यह नाम इसलिये प्राप्त हुये क्योंकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह इस वनस्पति जगत् और प्राणी जगत की सृष्टि के आदि प्राणी हैं। सृष्टि के आदि में इन्हीं सूक्ष्म प्राणियों से सृष्टि का क्रम चला, इसी सूक्ष्म सृष्टि से स्थूल सृष्टि का विकास हुआ, यह एक निश्चित सिद्धान्त है इसीलिये इन्हें आदि जैव भी कहते हैं। इस सूक्ष्म जैवी जगत् को अब केवल अनुमान से नहीं समझा गया है प्रत्युत इनकी सूक्ष्म शारीरिक बनावट, इनका भोजन ग्रहण क्रम, इनका रहन सहन, इनका वर्त व्यवहार, इनका उत्पत्ति स्थिति को बिलकुल सही सही देख व समझ लिया गया है, और इस प्रत्यक्ष ज्ञान के आधार पर खूब अच्छी तरह समझ कर इन सबको वर्ग, कक्षा, जाति उपजातियों तक में विभाजित कर दिया गया है।

यह सूक्ष्म जैव कहां कहां रह कर अपना गुजर बसर करते हैं?—इस बात को भी सही-सही मालूम कर लिया गया है। हजारों प्रकार के जैव मिट्टी में रह कर अपना गुजर बसर करते हैं, हजारों प्रकार के दलदल व पानी में कीचड़ में रह कर अपना गुजर बसर करते हैं, हजारों कूड़ा करकट, सड़े, गले मृत जीवों के शरीरों पर अपना गुजर बसर करते हैं, हजारों वनस्पतियों के अंगों पर अपना गुजर बसर करते हैं और हजारों ही जीवित प्राणियों के शरीर पर रह कर अपना गुजर बसर करते रहते हैं। इन प्राणियों में मनुष्य भी है जिसके शरीर पर, उसके पेट के अन्दर दो चार नहीं बीसों प्रकार के यह सूक्ष्म जैव सदा वास किया करते हैं, जब मनुष्य शरीर के उस पोले भाग में केंचुवे, चुरवे कृमि, गजों लम्बे फीता जैसे कृमि रह सकते हैं तो यह सूक्ष्म जगत् के जैव भी वहां रहते होंगे ऐसा समझना आश्चर्य की बात नहीं है। किन्तु हमारे लिये यह विषय इसलिये आश्चर्य जनक है क्योंकि हमने अपने हाथ में अभी तक सूक्ष्म दर्शक को नहीं पकड़ा है तभी हम इस प्रत्यक्ष ज्ञान से कोरे हैं। इस समय जिन जीवाणुओं कीटाणुओं से मनुष्य के जीवन मरण का सम्बन्ध पाया जाता है तथा मनुष्य के स्वास्थ्य और रोगों से जिनका घनिष्ठ सम्बन्ध मिलता है तथा मनुष्य के जन्म से लेकर मरण पर्यन्त उसके शरीर पर ही जो बने रहते हैं, जिनके कारण ही ऐसे सूक्ष्म विकार उत्पन्न होते रहते हैं जिनको वैद्य संसार समझ नहीं सकता ऐसे जैवों के शरीर में बने रहने उनके द्वारा मानवीय भोजन की वस्तुएं विकृत करने, उन्हें स्वयं खाकर खराब कर देने, सड़ा गला डालने का जो यह काम करते हैं तथा वहां रह कर बढ़ते, मरते अनेक प्रकार के विष त्यागते रहते हैं इन अयोग्य, अग्राह्य पदार्थों से मनुष्य के स्वास्थ्य का घना सम्बन्ध पाया जाता है। जिस अन्तर्गृहा में यह मनुष्य के स्वास्थ्य नाशक कार्य व्यापार को चलाते है वे कौन कौन सी कक्षा व जाति के जीवाणु कीटाणु होते हैं, वह अपने शरीर से क्या क्या पदार्थ कैसे बनाते व वहां छोड़ते रहते हैं, और कौन सी कक्षा व जाति के जीवाणु कीटाणु किस किस मानवीय खाद्य, पेय पर पलते हैं, उनका जीवन व्यापार हमारे अन्दर कैसे चलता है इन मृत हुए जैवों के शरीर से किस किस प्रकार के विषाक्त पदार्थ उत्पन्न होते हैं और इन दूषित वस्तुओं का शरीर पर कैसे प्रभाव होता है, शरीर पर इस के कौन कौन से लक्षण प्रकट होते हैं। इन अन्तर्रहस्य की सूक्ष्म बातों पर आजकल कई जैवी अनुसन्धान शालाओं में काफी अनुसन्धान हो रहे हैं उन अनुसन्धानों का जो परिणाम सामने आया है यही चर्चा इस लेख का विषय है।

शरीर के स्वास्थ्य पर जिन जीवाणुओं कीटाणुओं के सदा वास से जो अच्छा या बुरा प्रभाव होता है हम चर्चा तो उनकी करने जा रहे है, इसी बीच जैसे जैसे अत्यन्त सूक्ष्म वस्तुओं को देखने समझने के साधन मिलते गये उनके द्वारा इस बात का पता चला है कि इन जैवों से भी अत्यन्त सूक्ष्म ऐसी भी सजीव कणिकाएं हैं जिनके भीतर जैवाद्यम स्वरूप का चिद्रस भरा नहीं होता, जिसमें जीवन के चिन्ह तो मिलते हैं किन्तु पूरे नहीं। प्रत्युत इन सजीव कणिकाओं के व्यवहार उनके सजीव होने का प्रमाण अवश्य देते हैं अन्य लक्षण जो जैवों में जीवन के पाये जाते हैं सब इनमें नहीं मिलते इस लिये इनको जैव संज्ञा न देकर इन्हें भिन्न वीरसाणु (वीरस) नाम से अभिहित किया गया है।

फुफ्फुस प्रदाह (न्युमोनियां), कास, रोहिणी आदि कई श्लेष्मज व्याधियां जैवी होती हैं किन्तु प्रतिश्याय, श्वास या अन्य श्लेष्म विकारों के सम्बन्ध में ज्ञात हुआ है कि इन रोगों का कारण तो यह वीरसाणु हैं इन वीरसाणुओं से अब तक १५-२० के लगभग व्याधियां होती पाई गई हैं जिनकी चर्चा हम किसी पिछले लेख में कर चुके हैं। आशा है पाठक उनसे परिचित होंगे। यहां हम उन वीरसाणुओं से उत्पन्न होने वाले विकारों की चर्चा न करके केवल जैवी रोगों पर ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार करेंगे। इसलिये इस अंश पर किसी अन्य लेख में प्रकाश डालेंगे।

सूक्ष्म अनुसन्धानों से ज्ञात हो गया है कि हमारे मुख नासिका विवर, स्वर यन्त्र और गले के भीतर तथा अन्न प्रणाली में विशेष कर के वृहदान्त्र में प्राय: स्थावर वर्ग के कीटाणुओं का अधिक निवास पाया जाता है। यह स्थावर वर्ग के कीटाणु कई कक्षा के होते हैं जैसे विंद्वाणु, शलाका-कृति, पेंचाकृति आदि। इन आकृतियों के यह जैव अपने कार्य व्यवहार व वस्तु निर्माण भेद के कारण स्थान स्थिति के कारण उनके नाम दिये गये हैं। यथा :—तक्रजन शलाकी, (लैक्टो वैसिलाई), अन्त्रबन्द्विाकृति (एन्टरो कोकाई) मालाकृति (स्टेफीलो कोकाई) इत्यादि। यह कीटाणु अन्न प्रणाली में बास करते हुए भी आमाशय और ग्रहणी में नहीं मिलते, कारण आमाशय एक ऐसा स्थल है जहां लवणाम्ल (नमक के तेजाब) की उत्पत्ति होती है इस अम्ल प्रभाव के कारण वहां कोई भी कीटाणु वास नहीं बना सकता। जो भी इस अम्ल प्रभाव में आते हैं वह अक्सर मर जाते हैं। खाद्य पेय द्रव्यों में मिले जो कीटाणु इस अम्ल प्रभाव से बच जाते हैं वह ग्रहणी में पहुँच कर वहां से बड़ी मुश्किल से बच पाते हैं। जो बच कर उस द्वादशांगुल आंत को पार कर जाते हैं वह फिर क्षुद्रान्त्र में अवश्य होश सम्भालते हैं और आगे चलकर उन्हें अपने जीवित रहने की आशा बंध जाती है। क्षुद्रान्त्र की लम्बाई कई गज की है, जहां भुक्त द्रव्य ८–१० घंटे रह कर इतना मार्ग तय करता है, इसीलिये कुछ जाति के बिन्द्वाकृति कीटाणुओं का यहां वास मिलता है, कभी-कभी जंगम वर्ग के अमीबा जाति के जीवाणु भी यहां मिल जाते हैं। हां वृहदान्त्र एक ऐसा स्थल है जहां पर भुक्त द्रव्य का कांदव रूप १०–१२ घंटे ठहर कर इस एक गज लम्बे मार्ग को पार करता है और मलाशय में वह धीरे-धीरे जमा होता है। इस वृहदान्त्र भाग में निम्नलिखित कीटाणुओं का प्राय: जमघट मिलता है वर्णोद्भवी अवर्णोद्भवी, बिन्द्वाकृति, गुच्छ बिन्द्वाकृति, मालाधारी बिन्द्वाकृति, निर्वात जीवी, सवातजीवी, अन्त्रवासी बिन्द्वाकृति, डुंडुभवासी शलाकाकृति, कवचधारी शलाकाकृति, तक्रजन शलाकाकृति, उष्णसह शलाकाकृति, फुफ्फसियापेंचाकृति, कई सन्धानी आदि जिनके विभेद की संख्या ४०–४५ तक पाई जाती है, यह सब वहां मिलते हैं। वास्तव में मनुष्य मात्र के वृहदान्त्र और मलाशय में सभी प्रकार के जैवों का बासा मिलता है जो मनुष्य शरीर पर पलने वाले हैं। किन्तु यह बात न समझें कि समस्त कीटाणु व जीवाणु भोजन के प्रत्येक अंश पर पलते हैं ऐसा नहीं है। प्रत्येक कक्षा व जाति के कीटाणु व जीवाणुओं का भोजन एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न-भिन्न होता है।

मनुष्य का भोजन तो तीन ही श्रेणी का है किन्तु इन जैवों का भोजन इन श्रेणियों के एक एक भाग के पांच-पांच सात-सात जितने भी प्रकार या रूप होते हैं उन सबों पर गुजर-बसर करने वाले भिन्न-भिन्न प्रकार के कीटाणु होते हैं। उदाहरण के तौर पर केवल शार्करी द्रव्यों की श्रेणी को ही लें और देखें तो सब शर्कराएं एक ही तरह की नहीं होतीं। यव शर्करा, द्राक्ष शर्करा, फल शर्करा, दुग्ध शर्करा, इक्षु शर्करा आदि शर्कराओं में सन्धान के द्वारा एक ही प्रकार के कीटाणु उससे हलाहल नहीं बना सकते। इन समस्त शर्कराओं पर गुजर-बसर करने वाले भिन्न-भिन्न ही कीटाणु होते हैं। जिस श्रेणी के पदार्थ एक प्रकार के कीटाणु भक्षण करते हैं दूसरी श्रेणी के पदार्थ दूसरे कीटाणु भक्षण करते हैं। इस तरह से हम जो भोजन खाते हैं उसमें आठ प्रकार की शर्करा जाति के द्रव्य होते हैं, १०–१२ प्रकार के स्नेहाम्ल होते हैं, २० प्रकार की अस्रजिनों में पाच-सात प्रकार की अस्रजिनें होती हैं, जिनसे भिन्न-भिन्न यौगिक टूट कर उनसे भिन्न-भिन्न पवनाम्ल (Aminoacids) बनते हैं। इन सबों पर पलने वाले भिन्न-भिन्न प्रकार के ही कीटाणु होते हैं। इसीलिये चूंकि मानवी भोजन में जो विविधता होती है उदर दरी में जाकर उसमें और विभेद बढ़ जाते हैं। निगूढ़ रचना के अस्रजिन जैसे द्रव्यों से सरल रचना के एक से चार-चार छ:-छ: यौगिक बन जाते हैं। फिर यह भी परीक्षाओं से अच्छी तरह जांचा गया है कि मनुष्य जिस श्रेणी के द्रव्य अधिक खाता है उन्हीं पर पलने वाले कीटाणुओं की अधिक वृद्धि देखी जाती है। इसी तरह कोई व्यक्ति मांस अधिक खाते हैं कोई मछली नित्य खाते हैं, कोई दालें नित्य खाते हैं, कोई माँस दाल रहित केवल शाक-सब्जियों पर गुजर करते हैं ऐसे व्यक्तियों के वृहदान्त्र में इन्हीं वस्तुओं पर पलने वाले कीटाणु अधिक मात्रा में मिलते हैं, दूसरे बहुत कम होते हैं। इस बात की परीक्षा लेकर देखा गया है जिनको मक्का का तेल खाने को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया गया कुछ दिन में ही उनके पेट में अन्त्रवासी बिन्द्वाकृति कीटाणुओं की भरमार मिली, किन्तु फिर उनको मक्का का तेल बन्द करके उसके स्थान पर घृताक्त भोजन दिया जाने लगा तो अन्त्रवासी बिन्द्वाकृति कीटाणु घट गये और उनके स्थान पर स्नेहाम्ल पर पलने वाले कीटाणु बढ़ गये। मक्का के तेल में जैतूनाम्ल होता है और घृत में वसाम्ल होता है। परीक्षाओं से यह भी जाना गया है कि भोजनीय द्रव्यों की मात्रा घटा दी जाय और बहुत कम मात्रा में भोजन दिया जाय, एक ही प्रकार का सूक्ष्म आहार दिया जाय तो प्रत्येक कीटाणु समूह की संख्या काफी घट जाती है और भोजन की मात्रा बहुत बढ़ा दी जाय कि कुपाच्य की स्थिति बनी रहे तो प्रत्येक कीटाणुओं की संख्या बढ़ जाती है। ऐसे व्यक्तियों के मलों को सुखा कर उसकी परीक्षा ली गई है तो आधे के लगभग उस सूखे मल में कीटाणुओं की मात्रा मिली। इससे अन्दाजा लगाइयेगा कि कुपाच्य के कारण मलाशय इन जैवों के लिये अनुकूल स्थल बन जाता है। देखा गया कि अनुकूल ताप और उस द्रव्य की तरलता और विरोधियों की कमी बने रहने पर इनकी संख्या बेहद बढ़ती है। यह घंटों में द्विगुण, चतुर्गुण होती चली जाती हैं। यह कीटाणु जो उदरस्थ भोजन पर निर्वाह करते हैं इनको खाकर कौन से अयोग्य, अग्राह्य पदार्थ बनाते हैं? हम इस विषय को एक उदाहरण से समझाते हैं—हमारे आयुर्वेद चिकित्सक प्रायः आसवारिष्ट बनाते हैं तो उन आसवों के निर्माण काल में औषधियों से भिन्न उसमें चीनी, गुड़, खांड, शहद वगैरह मीठी चीजें इसलिये छोड़ते हैं कि सुराबीज डालने के साथ उसमें सन्धान उठ खड़ा हो। सुराबीज में सन्धान उत्पन्न करने वाले कीटाणु समूह ऐसी स्थिति में होते हैं जैसे सुरक्षित रखे खेती के बीज जिसके बीच में वह कीटाणु सुषुप्तावस्था में विद्यमान रहते हैं। कृषि के लिये जिस तरह हम बीज भूमि में डालते हैं और वह जमकर अंकुरित हो जाता है ठीक इसी तरह सुरा बीज में हलाहल बनाने वाला बीज विद्यमान रहता है जो आसव की भूमि पर रोपित होते ही अंकुरित होकर अपना वंश विस्तार करने लगता है। वह जब बढ़ते हैं तो आसव में घुले मीठे के कणों को खाने लगते हैं। मीठे के कण जब उनके द्वारा भक्षित किये जाते हैं तो मीठे के अणु टूटकर एक ओर सुरा सार (अलकोहल) बनता है दूसरी ओर कज्जलद्विऊष्मिद वायु बनता है। उस आसव में कज्जल द्विऊष्मिद वायु बन रहा है कि नहीं इसकी परीक्षा वैद्य उस आसव के पात्र के मुख पर जलती मोम बत्ती या दियासलाई जलाकर उस सन्धानी पात्र के ऊपर ले जाते हैं यदि पात्र में सन्धान हो रहा है तो जलती हुई दियासलाई या मोम बत्ती बुझ जायगी। इससे भिन्न इस वायु की और परीक्षा लेना चाहें तो चूने के पानी में से इस कज्जलद्विऊष्मिद वायु को गुजारें तो वह पानी दूधिया हो जायेगा। इस विधि से इस वायु के उत्पन्न होने का पता चल जाता है और इस बात का ज्ञान हो जाता है कि आसव पात्र में सन्धान हो रहा है और उसमें हलाहल बन रहा है। जिस तरह इन सुराबीजों से हमने बाहर हलाहल (अलकोहल) तैयार होते देखा इसी तरह हमारे अन्त्राशयों में यह सुरासार के बनाने वाले कीटाणु पाये जाते हैं और उन कीटाणुओं के द्वारा बनने वाला हलाहल और कज्जल द्विऊष्मिद भी मलस्थ पदार्थों में मिलता है, यही नहीं इस हलाहल से आगे चुक्र (सिरका) बनाने वाले कीटाणु भी वहां मिलते हैं और चुक्र भी मिलता है जिसका अभिप्रायः स्पष्ट है कि हलाहल पर जीवन निर्वाह करने वाले कीटाणुओं का भी वहां वासा बना रहता है। इसी तरह दुग्ध शर्करा पर पलने वाले कीटाणु भी वहां मिलते हैं और दुग्धाम्ल अर्थात् तक्राम्ल (Lactic acid) भी अन्त्राशय के पदार्थों में पाया जाता है। इस तरह से अनेक प्रकार के जैव और उनसे बनने वाले निम्न पदार्थ भी वृहदान्त्र में मिलते है यथा—पिपीलकाम्ल, नवनीताम्ल, ज्वलील हलाहल (ईथिल अलकोहल), मधुरोल, दारेन (मीथेन), उदजस बलिकाइद (हाईड्रोजन-सल्फाइड), नीलवर्णा (इन्डोल), विष्ठोल (स्कैटोल), दिव्योल (फीनोल), गन्धोज (कैइसोल), पवनिया (अमोनिया)। मनुष्य के अपान वायु से जो बुरी विष्ठा की गन्ध आया करती है वह नीलवर्णोल, विष्ठोल आदि कीटाणु जन्य वह वायु रूप पदार्थ हैं जिनको आज तक हम विष्ठा में उत्पन्न होने वाली एक स्वाभाविक चीज मानते थे और अपान वायु का निःसरण वात दोष के कारण जानते थे। यह प्रयोगों से भ्रम सिद्ध हुआ। इस समय परीक्षाओं से दिखाया जा सकता है कि एक व्यक्ति को आप काला नमक लगा कर मूली खिला दीजिये दो चार पांच घंटे बाद उसके अपान वायु में एक विशेष प्रकार की गन्ध आने लगेगी यह गन्ध उदजन बलिकाइद की होती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है क्योंकि मूली में बलि (गन्धक) का विशेष अंश होता है इस गन्धक के अणुओं को तोड़ कर उसको उदजन से मिलाने वाले कीटाणु मलाशय में विद्यमान रहते हैं इसा-लिये मूली खाने पर यह वायु उनकी कृपा से उत्पन्न हो जाती है। कई बार जब अनपच का दोष बढ़ा होता है उस समय कई व्यक्तियों को आध्मान हो जाता है और पेट नगाड़े सा तन जाता है, अपान वायु नहीं सरता। आयुर्वेद चिकित्सक कहते हैं इसके शरीर में वात दोष कुपित हो रहा है वास्तव में इसमें हम तभी तक वात दोष मानते थे जब तक हमें इसकी असलियत का पता नहीं था अब हम यह जान सके हैं कि इस प्रकार के आध्मान में वात दोष के कोप का कोई सम्बन्ध नहीं हैं प्रत्युत अपच विकार के कारण जो कीटाणु क्षुद्रान्त्र में विद्यमान थे उन्होंने बढ़ कर क्षुद्रांत्र में ऐसे वायवीय पदार्थ उत्पन्न करने आरम्भ कर दिये हैं जो वहां बन कर निकल नहीं रहे उन वायुओं के रुक जाने के कारण ही आध्मान हो रहा है।

यह प्रत्येक व्यक्ति के अनुभव की बात है कि उसे जब शौच की हाजत हो रही हो और वह मल को रोक ले तो थोड़ी ही देर में उसका सिर भारी हो जायगा और कुछ देर और ठहरे तो सिर दर्द होने लगता है, चित्त घबराता है, बारम्बार अपान वायु सरता है, कुछ देर और मल को रोकें तो भयंकर परिणाम देखने को मिलते हैं। विबन्ध हो जाने का डर हो जाता है और न जाने क्या क्या उपद्रव खड़े हो जाते हैं। यह सब कोई वात दोष के कोप के कारण नहीं होते, प्रत्युत इसमें मुख्य कारण वही अन्त्र वासी कीटाणु देखे जाते हैं जो इनके मल में अधिक वेग से उसे खाकर उसमें अनेक प्रकार की वायुएं उत्पन्न करते रहते हैं और वह वायुएं जो अन्त्राशय में भरी होती है वह चाप प्रभाव से रक्त में मिल करके रक्त परिभ्रमण में घूमती हुई सिर के भीतर पहुँच जाती है जिनकी विद्यमानता से ही सिर भारी हो जाता है और कुछ देर में सिर दर्द होने लगता है। जो व्यक्ति मात्रा से अधिक खाते हैं तभी अधपच भोजन आगे से आगे बढ़ता चला जाता है, ऐसे व्यक्तियों को ही आध्मान, गुल्म, शूल आदि की व्यथा के कष्ट होते देखे जाते हैं। वैद्य इसे वात का प्रकोप समझ लेते है। जिस वात दोष की कल्पना हम किये हुये हैं न उससे इसका कोई सम्बन्ध होता है न ऐसी कोई बात प्रयोगों से सिद्ध होती है। जब अन्न प्रणली में उक्त कीटाणुओं की उपस्थिति पाई जाती है और उनके द्वारा उद्भूत नीलवर्णोल, विष्ठोल, मीथेनपवनियां जैसी दुर्गन्ध पूर्ण वायुएं उत्पन्न होती देखी जाती हैं और उनको प्रयोग-शाला में देख कर उनकी असलियत को परीक्षा द्वारा बताया जाता है और यह सिद्ध किया जाता है कि यह वायुएं अत्यन्त विषाक्त हैं इन्हीं के प्रभाव से पेट में आध्मान उदावर्त आदि के कष्ट उत्पन्न हो रहे हैं ऐसी दशा में कल्पित सिद्धान्त पर दृढ़ रहना कोई बुद्धिमानी की बात नहीं है।

जैवोद्भवी इन द्रव्यों का गम्भीर प्रभाव–परीक्षाओं से देखा गया है कि शरीर में इन कीटाणुओं का वास बना रहे और केवल यह वायु रूप पदार्थ मलाशय में बन कर अपान वायु के रूप में निकलती रहें तो वह शरीर पर इतने भयंकर परिणाम नहीं उत्पन्न करतीं। किन्तु इन कीटाणुओं के द्वारा अनेक तरल विष ऐसे बनते हैं जो शरीर को बहुत ही हानि पहुँचाते हैं। यह विषाक्त पदार्थ कैसे बनते है, और क्यों बनते है? इसको भी अच्छी तरह से देखा व समझा गया है।

जिस तरह मनुष्य को उदर पूर्ति के अर्थ अपने भाई जात बिरादरी से जीवन संघर्ष लेना पड़ता है ठीक इसी तरह इन कीटाणुओं को भी अपने भाई बन्दों से तथा दूसरे विजातीय कीटाणुओं से सदा ही संघर्ष लेना पड़ता है, बल्कि यही नहीं बहुत से जैव ऐसे भी हैं जो दूसरे जैवों पर अपना जीवन गुजर बसर करते हैं अर्थात एक कीटाणु दूसरे कीटाणु को खा जाता है। पर कोई भी प्राणी आसानी से दूसरे के पेट में जाने के लिये कभी तैयार नहीं होता, तभी तो उनमें जीवन के लिये संघर्ष होता रहना है। इसी अवसर पर अपने को बचाने के लिये इन कीटाणुओं के भीतर से कुछ प्रकार के ऐसे स्राव बनकर निकला करते हैं जो बड़े विषाक्त रूप के होते हैं यह विषाक्त रूप के तरल पदार्थ जहां पर वह कीटाणु होते हैं वहां आसपास फैल जाते हैं ऐसे कीटाणुओं से उत्पन्न विष को बहिर्विष कहते हैं। यह विषाक्त तरल द्रव्य उस परिपाक रस में मिलते रहते हैं जिन्हें ग्राहकांकुर चूस कर शरीर के भीतर पहुँचाने वाले होते हैं, यह भुक्त रस जो शरीर के पोषण के लिये रक्त में जाकर मिलता है उसमें यह विषाक्त द्रव्य मिल कर जब शरीर की कोषाओं के पास पहुँचते हैं तो उन शरीरावयवों को बहुत ही हानि पहुंचाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। परीक्षाओं से देखा गया है कि यह विषाक्त पदार्थ असजनीय जाति के होते हैं और यह प्रत्येक भिन्न भिन्न जाति के कीटाणुओं से भिन्न भिन्न प्रकार के बनते है अर्थात जो विष एक जाति का कीटाणु सृजन करता है दूसरी जाति के कीटाणु से बनने वाला विष बिलकुल उससे भिन्न होता है। इस तरह अब तक १०-११ प्रकार के यह विषाक्त रूप के द्रव्य जांचे जा चुके हैं यह विष इतने घुलन शील होते हैं कि जिन छन्नों में से जैवों को छाना जाता है उसमें से होकर निकल जाते हैं और उबालने पर कुछ देर तक उबाल खाने के बाद तब जाकर नष्ट होते हैं और इनको कुछ समय तक रक्खा रहने दिया जाय तो पड़े पड़े कुछ समय में यह निर्विष हो जाते हैं और इन विषों का किसी प्राणी में सूची वेध दिया जाय तो उस प्राणी में प्रति विष उत्पन्न होता है। परीक्षाओं से देखा गया है इन विषाक्त पदार्थों में जीवित कोषा की ओर आकर्षित होने का विशेष गुण होता है इसके स्पर्श से जीवित कोषा के कार्य व्यापार में बड़ा व्याघात पड़ते देखा जाता है। जिस रस या लसिका में यह विष मिला होता है उस लसिका के पोषण द्रव्य में इसकी उपस्थिति के कारण वह कोषाएं अपना आहार अच्छी तरह नहीं ग्रहणकर सकतीं, इसी लिये वह क्षीण होने लगती हैं और धीरे धीरे मरती चली जाती हैं। इस तरह से इन विषाक्त पदार्थों का प्रभाव धीरे धीरे सारे शरीर की कोषाओं पर जब विस्तृत रूप में होने लगता है तो पचन व्यवस्था कमजोर हो जाती हैं, अच्छे पाचक रस नहीं बनते; खाया हुआ भोजन अच्छी तरह से हजम नहीं होता, जरा भी कोई उष्ण प्रकृति की चीज खाई जाय तो उससे गर्मी प्रतीत होती है, शीत, उष्ण सहन की शक्ति घट जाती है जिसे देख वैद्य कहने लगतें हैं कि इसे पैत्तिक विकार हो रहा है।

कुछ और विष-अनुसन्धानों से इस बात का भी ज्ञान हो सका है कि उक्त बाह्य विषों से भिन्न इन जैवों के मरने से और इनके शरीर के गलने से भी ऐसा विषाक्त द्रव्य निकलता है जो शरीर को बहुत ही हानि पहुंचाता है। मृत जैवों के शरीरों के गलने, उनके विकृत होने से जो तरल रूप के विषाक्त पदार्थ बनतें हैं यह भी बृहदान्त्र के आचूषकों के द्वारा आचूषित होकर रक्त में मिलते रहते हैं, यह भी शरीर को बहुत हानियां पहुंचाते हैं। वह हानियां बहिर्विष से भिन्न रूप की होती हैं। इस अन्तर्विष की भी वैज्ञानिकों ने परीक्षाएं की हैं। इस विष को भिन्न करके इसका किसी प्राणी के शरीर में सूची वेध दिया जाय तो इससे उस प्राणी के शरीर में प्रति विष उत्पन्न नहीं होता। हां, प्रति जनक क्षमता अवश्य उत्पन्न होती है, जिससे कुछ शरीर की कोषाओं के बचाव की प्रति क्रिया का संकेत मिलता है इसी से ऐसे शरीर रक्षक द्रव्य को प्रतियोगी (Antibodies)द्रव्य कहतें हैं। परीक्षाओं से यह भी देखा गया है कि यह अन्तर्विष चिर प्रभावी, स्थिर रासायनिक रूप के यौगिक होते हैं। जल के उबाल विन्दु पर कुछ देर रखे रहने पर उनका रासायनिक रूप नष्ट नहीं होता, न वह रक्खे रक्खे खराब ही होते हैं। परीक्षाओं से जांचा गया है कि यह विषाक्त द्रव्य जब शरीरस्थ होते हैं तो इनका शरीर की कोषाओं पर भिन्न प्रकार का प्रभाव होता है, यह विष दिलपरूप के असजनीय श्रेणी के ही होते हैं पर इनका प्रभाव शरीर की श्लेष्मिक त्वचा पर अधिक होता है, उनके भीतर कुछ ऐसी विकृतियां उत्पन्न हो जाती हैं कि उनमें श्लेष्म को पाचन करने की शक्ति घट जाती है इसी से श्लेष्म कला में बनने वाला श्लेष्म सात्म्य रूप को प्राप्त न होकर बाहर निकलने लगता है, जिसे वैद्य श्लेष्मज व्याधियां कहने लगते हैं। यह भी देखा गया है कि इस अन्तर्विष की उपस्थिति में वीरसाणुओं की वृद्धि खूब होती है और इन वीरसाणुओं की वृद्धि से खांसी, श्वास, प्रतिश्याय आदि अनेक श्लेष्मज कहे जाने वाले रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इस समय मनुष्य को छोटी छोटी शिकायतें सिर दर्द, कब्ज, मन्दाग्नि, अनेक पैत्तिक विकार, अनेक मानसिक विकार, जैसे स्वभाव का चिड़चिड़ा हो जाना, नींद का कम आना, उद्विग्नता का बना रहना, किसी काम में मन न लगना, वहम, मनौलिया आदि अनेक व्याधियां इन्हीं जैवी विषों के प्रभाव से उत्पन्न हुई देखी जाती हैं। इन विषों के प्रभाव से शरीर में ऐसे ऐसे भिन्न भिन्न रूप के कष्ट प्रादुर्भूत हो जाते हैं जिनके कारण को चिकित्सक के लिये समझना कठिन हो जाता है। यह जैवी विषों का ज्ञान साधारण अनुसन्धानों द्वारा होने वाली बात नहीं है। इन सबों को परिपाक रसों से भिन्न करना और उनका जांचना, उनके रूप का मालूम करना और उनकी परीक्षा लेना यह दुरुह काम आधुनिक प्रयोगशालाओं के बस की ही बातें हैं, जहां साधन नहीं वहां किसी ने क्या देखना समझना है।

[शेष टाइटिल के तीसरे पृष्ठ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"गमा रश्मि" का भयंकर परिणाम

पाठक इस बात से तो परिचित हैं कि अब एक नई रश्मि चिकित्सा नाम से चिकित्सा की पद्धति ने जन्म लिया है। इस चिकित्सा में व्यवहृत होने वाली रश्मि साधारण रश्मि नहीं होती, प्रत्युत जब किसी तत्व के परमाणु टूटते हैं तो उस परमाणु विच्छेद काल में इनका जन्म होता है। यह बात सबसे पूर्व रश्मिम तत्व के आविष्कार से ज्ञात हुई थी। धीरे धीरे ३०–४० वर्षों में वैज्ञानिकों ने इसमें इतनी उन्नति कर ली कि परमाणु को स्वतः तोड़ने में समर्थ हो गये। उसी के परिणाम स्वरूप परमाणु भंजनी भट्ठी का आविष्कार हुआ। इस भट्ठी में परमाणुओं को तोड़ कर उससे और कोई काम नहीं लेते, केवल परमाणु के टूटने पर जो गम्मा (Gamma) रश्मि का उस भट्ठी में प्रादुर्भाव हो रहा होता है उस प्रादुर्भाव क्षेत्र में किसी तात्विक पदार्थ को रख उस पदार्थ में इस रश्मि को शोषित कराते हैं वह तात्विक पदार्थ कुछ ही काल में गममा रश्मि से परिपूरित हो जाता है, फिर वह स्वतः उन रश्मियों को त्यागने लगता है, महीनों उस तत्व से वह गमा रश्मियां निकलती रहती हैं। इन रश्मि व्याप्त पदार्थों का उपयोग निदानार्थ और चिकित्सार्थ दोनों रूपों में चिकित्सक करने लगे हैं। यह रश्मि चिकित्सा बड़ी शीघ्र ही संसार व्यापी हो गई है। इन रश्मि पूरित तत्वों को रश्मि तोप (आइसोटोप) नाम दिया गया है। यह तत्वों की तोप काफी समय तक रश्मियों के गोले छोड़ती रहती है। यह गोले इतने घातक हैं कि इससे सूक्ष्म जैव(जीवाणु कीटाणु) और शरीर की कोषाएं, रक्त की कणिकाएं आदि सब मर जाती है। वैज्ञानिकों ने मनुष्य शरीर की कोषाओं को सुरक्षित रखकर अन्य हानिकारक जैवों को मारने के के लिये इन रश्मि तोपों के गोलों का प्रयोग करने की विधि निकाल ली है। इस रश्मि तोप के गोले छोड़ने वाले तत्वों का उपयोग मनुष्य शरीर पर कई तरह से किया जाने लगा है। मस्तिष्क में, सुषुम्ना में, यकृत में या कहीं और शरीर के भीतर कोई कर्कट व्रण (केन्सर), गम्भीर व्रण, या रसौली आदि कोई बीमारी का रूप विद्यमान हो जिसे बाह्य निदान से सही सही नहीं जाना जा सकता हो उसको देखने समझने के लिये भिन्न भिन्न तत्वों की रश्मि तोप बनाई गई है, इस तत्व रूपी तोप की अत्यन्त सूक्ष्मातिसूक्ष्म कणिका को किसी सूची वेध द्रव में मिला कर उस रोगी मनुष्य के शरीर में सूची वेध द्वारा रक्त में पहुँचा देते हैं या मुख द्वारा खाने वाली वस्तुओं में मिला कर उस तत्व तोप की जिस कणिका को अन्दर पहुंचा देते हैं, वह कणिका रस के द्रव्यों में मिल कर रक्त परिभ्रमण में घूमती हुई रोग ग्रसित अंग में पहुंच कर वहां एकत्र होने लगती है अर्थात जहां रोग का स्थान है वहां वह संचित होने लग जाती है और वह तत्व तोप संचित होकर रश्मि रूपी संहारकारी वहां गोले छोड़ने लगती है तब रश्मि मात्रा प्रग्राही यन्त्र (गायगर कौन्टर) शरीर पर फिराया जाता है। जहां पर तत्व तोप जमी होती है वहाँ पर जब यन्त्र पहुंचता है तो उसकी सूई विचलित होकर सूचना देने लगती है कि यहां पर वह तत्व तोप जमी हुई है और उसके गोले वहां पर छूट रहे हैं, बस उस यन्त्र की कृपा से रोग के स्थान का ठीक ठीक पता चल जाता है और फिर अन्य विधियों से मालूम कर लेते हैं कि इसको क्या रोग है।

इसी तरह त्वचा पर होने वाली अनेक बीमारियां जैसे कर्कट व्रण, दुष्ट ग्रन्थि, कई प्रकार के कुष्ठ, नाकड़ा (लूप्स) आदि रोगों के मूल कारण को नष्ट करने के लिये इन तत्व तोपों की अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा सुई की नोक पर चिपका कर उस नोक भाग को रोग के मूल स्थान पर फिराया जाता है ऐसा करने से जो रश्मि के गोले उस तोप से निकल कर उस रोग स्थल के केन्द्र पर पड़ते हैं इससे जैव वीरसाणु व अन्य रोग के कारण सब नष्ट हो जाते हैं। इस तत्व तोप का प्रयोग करते समय चिकित्सक को बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है, क्योंकि इस तत्व तोप से निकले गोले यदि शरीर की निरोग कोषाओं को जा लगें तो वह मर जाती है, शरीर को उससे बड़ी हानि पहुंचती है। इसीलिये शरीर के अंगों को बहुत ही सुरक्षित साधनों के कवच से पूर्ण करके फिर इसका उपयोग करते हैं। अभी अभी १० जनवरी को हालेन्ड के एक ग्राम पुटटेन में असावधानी से एक भारी दुर्घटना हो गई, जिस का समाचार सारे संसार में फैल गया। हमारे पाठकों को भी जो चिकित्सक हैं ऐसे महत्व की बात समझे रहना चाहिये, क्योंकि इस समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार के बड़े बड़े शक्ति शाली राष्ट्र जिनके पास परमाणु बम, उदजन बम जैसे जन-पद ध्वन्सी भयंकर शस्त्र विद्यमान है वह तीनों देश इन शस्त्रों की परीक्षा ले रहे है और इन परीक्षाओं के परिणाम स्वरूप जापान की मछली मार नौकाओं के आदमियों पर क्या मुसीबत आई इसकी चर्चा हम सितम्बर १९५७ के आयुर्वेद विज्ञान के अंक में कर चुके हैं, पाठक उसे पढ़ कर उस रौद्र दृश्य की चर्चा को भूले न होंगे। उस जैसी घटना हालेन्ड के ग्राम पुटटेन में जो चिकित्सकों की असावधानी से घटी उसका समाचार केवल ज्ञानवर्धक ही नहीं चिकित्सक के लिये यह समझने की चीज है, वह निम्न है।

उक्त ग्राम की ४ वर्ष की एक लड़की के नाक पर नाकड़ा नामक रोग हो गया एलोपैथी में इस बीमारी को लूप्स कहते हैं। उनकी चिकित्सा में इसकी कोई अच्छी दबाई नहीं है इसीलिये उस ग्राम के अस्पताल के चिकित्सकों ने निश्चय किया कि लड़की के चेहरे पर और गर्दन तक की त्वचा पर रश्मि अवरोधी पदार्थ का लेप चढ़ा कर इस तत्व तोप से इस बीमारी को उड़ाने का उपक्रम किया जाय। समस्त चेहरे को सुरक्षित करके उस रश्मि तोप की एक खसखास जितनी कणिका को महा रजत की सूई की नोक पर चिपका कर उस नाकड़े की जगह पर फिरा रहे थे उस सूई की नोक से तत्व की तोप टूट कर उस चेहरे पर लगे अवरोधी लेप पर कहीं गिर गई, चिकित्सकों को इस के गिर जाने का कोई भान तक न हुआ। चिकित्सा के बाद घर वाले लड़की को घर ले आये, उसके चेहरे पर लगे लेप को उतार कर उसे जला दिया गया और उस राख को उठा कर पास के बगीचे में फेंक दिया गया। रात गुजर गई, अगले दिन चिकित्सक जब चिकित्सार्थ उस सूई को फिर व्यवहार के लिये देखने लगे तो उस पर चढ़ी तत्व की तोप गायब थी। उन्होंने उस घटना की तुरंत रिपोर्ट पुलीस के कार्यालय में दी, तहकीकात शुरू हो गई और वैज्ञानिक रश्मि मात्रा अग्राही यन्त्र लेकर उस लड़की के मकान पर जा पहुंचे उस यन्त्र से जब उस लड़की के शरीर की परीक्षा ली गई तो वह लड़की रश्मि मयी हो रही थी, उसके घर में और उस स्टोव में तथा उस बगीचे का बहुत सा भाग उस गमा रश्मि से परिपूर्ण मिला। वह लड़की अपने स्कूल में चले जाने से उसके साथ ही स्कूल में भी वह गमा रश्मियां फैल गई थीं, इसीलिये स्कूल को सरकार ने फौरन बन्द करवा दिया और उस लड़की को जन समाज से दूर क्वारन्टीन में रखा गया ताकि इस लड़की के शरीर से जो गम्मा रश्मियां निर्गत हो रही हैं कहीं उनका प्रभाव अन्य व्यक्तियों पर बुरा न हो, इससे जन समाज बचाया जाय।

चिकित्सा क्षेत्र में संसार कितना आगे बढ़ गया है, इन रश्मियों का कितना भयंकर परिणाम हो सकता है हम वैद्यों को इसका यत्किंचित भी ज्ञान नहीं। इसी गमा रश्मि की भयंकरता के सम्बन्ध में अमेरिका के परमाणु विशेषज्ञ डा० डब्ल्यू कैलोग और डा० चार्ल्स शेफर ने परमाणु विज्ञान की एक अमेरिकन पत्रिका में जो भविष्य वाणी की है, पाठक उसे नीचे की पंक्तियों में पढ़े।

वह लिखते हैं कि यदि रूस ने अमेरिका पर उदजन बमों से आक्रमण कर दिया तो एक ही आक्रमण में १० करोड़ व्यक्ति मर जायंगे, इनमें से आधे तो बम विस्फोट काल में उसी समय काल के गाल में चले जायंगे आधे गमा रश्मि के प्रभाव से घुल घुल कर एक वर्ष में मर जायंगे। कितना भयंकर इसका प्रभाव है!

रजिस्ट्रेशन आफ न्यूज़ पेपर्ज़ (सेन्ट्रल) रूल्ज़ १९५६ के अनुसार 'आयुर्वेद विज्ञान' मासिक का विवरण

फार्म ४

(नियम ८ के अनुसार)

१. प्रकाशन का स्थान	... ...	देहली
२. प्रकाशन का काल	...	मासिक
३. मुद्रक का नाम	...	स्वामी हरिशरणानन्द
जाति	...	भारतीय
पता	...	२२, फैज बाजार, दिल्ली
४. प्रकाशक का नाम	...	स्वामी हरिशरणानन्द
जाति तथा पता	... ...	उपरोक्त
५. सम्पादक का नाम,	...	स्वामी हरिशरणानन्द
जाति तथा पता	...	उपरोक्त
६. पत्र के मालिक का नाम	...	स्वामी हरिशरणानन्द
जाति तथा पता	...	उपरोक्त

मैं स्वामी हरिशरणानन्द घोषणा करता हूं कि मेरे ज्ञान और विश्वास के अनुसार उपरोक्त दिया विवरण सत्य है। ह० स्वामी हरिशरणानन्द

तिथि १-३-५८ प्रकाशक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेदिक फार्मेसी वालों की कठिनाइयों के सम्बन्ध में श्री जी० एम० पारिख का भाषण

इण्डियन फार्मेस्युटिकल वर्क्स लि० बम्बई की ओर से सेंट एक्सवियर कालेज में जो कंपनी के सदस्यों के सामने श्री जी० एम० पारिख ने जो भाषण दिया वह निम्न है :—

में इण्डियन फार्मेस्युटिकल कं० के प्रबन्धकों का तथा आप सबों का धन्यवाद करता हूँ जिन्होंने मुझे आज आयुर्वेदिक फार्मेसी व्यवसाय की कठिनाइयों तथा समस्याओं पर बोलने का अवसर दिया है। क्योंकि मेरा सम्बन्ध एक ऐसी संस्था से है जो कि देशी औषध निर्माण में लगभग आधी शताब्दी से लगी हुई है, उसके कार्य संचालन की देख-रेख करने के कारण में इस योग्य हो गया हूँ कि विभिन्न कष्ट जो आजकल औषध निर्माताओं को हो रहे हैं उनमें से कुछ मुख्य-मुख्य कष्ट की समस्याओं पर विचार करूँ।

यह सच है कि आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति का भूत काल बहुत सुन्दर रहा है और यह भी सच है कि वह आरम्भ की गति स्थिर नहीं रही, शास्त्रीय आयुर्वेदिक औषधियों के निर्माणार्थ सार्वदेशिक औषध निर्माण के लिए सर्वमान्य ग्रन्थों का अभाव इस अनुन्नत दशा को बढ़ाने के लिये विकट स्थिति उत्पन्न कर रहा है। प्रसन्नता की बात है ऐसे अवरुद्ध गति काल में हमारी राष्ट्रीय सरकार ने केन्द्र में तथा कई राज्यों में कुछ प्रोत्साहन दिया है।

मद्रास राज्य के पास तो पहले ही एक आयुर्वेदिक फार्माकोपिया है जिसका नाम सरकारी औषध निर्माण सूची है। इसी तरह अभी-अभी बम्बई सरकार ने भी आयुर्वेदिक औषध निर्माण के लिये एक कमेटी निर्माण की है, बम्बई सरकार ने जो यह पग उठाया है मैं उसका स्वागत करता हूँ, ऐसे समय में अपना कर्तव्य मानता हूँ कि जो कष्ट इस समय मेरे सामने हैं उनको स्पष्ट करूँ, जो औषध निर्माताओं के सामने हैं ताकि कमेटी उस पर विचार कर सके।

हमारी कई आयुर्वेदिक औषधियां ऐसी हैं जिनके योग प्रामाणिक ग्रन्थों के अनुसार भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न देखे जाते हैं, आयुर्वेद का एक प्रसिद्ध योग द्राक्षारिष्ट शार्ङ्गधर संहिता, गदनिग्रह, योग रत्नाकर और योग चिन्तामणि में भिन्न-भिन्न हैं, इसी तरह एक दूसरा योग आनन्द भैरव का देखें तो रस प्रकाश सुधाकर शार्ङ्गधर संहिता, वसवराजीय, रसेन्द्रसार संग्रह और भैषज्यरत्नावली में देखें तो यह योग १२ प्रकार का मिलता है जिनके औषध द्रव्यों में काफी अन्तर है। इसी तरह भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में इच्छाभेदी रस १८ प्रकार का देखा जाता है। एक स्वर्ण भस्म की ही शार्ङ्गधर में १० विधियां मिलती हैं इसी तरह एक अग्निकुमार जो प्रयोग की दृष्टि से महत्व का योग है भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में इसके ५० भिन्न-भिन्न योग देखे जाते हैं। कुमार्यासव के भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में ४ योग मिलते हैं।

किसी औषध के जो भिन्न-भिन्न योग ग्रन्थों में वर्णित हैं औषध निर्माताओं के लिये वह एक बड़ी समस्या बने हुये हैं। किसी प्रान्त में एक योग प्रचलित है तो किसी प्रान्त में दूसरे ग्रन्थ का योग प्रचलित है, इससे भिन्न एक ही प्रयोग को एक प्रान्त में किसी विशेष विधि से बनाया जाता है तो दूसरे प्रान्त में उसे दूसरी ही विधि से बनाया जाता है यह प्रान्तों-प्रान्तों के योग निर्माण विभेद का क्रम जो काफी समय से प्रचलित हो रहा है यदि इसमें किसी राज्य सरकार द्वारा बिना किसी दूसरे राज्य की स्वीकृति के कोई परिवर्तन किया गया तो इससे औषध निर्माताओं के लिये जिनका व्यापार सारे भारतवर्ष में है—उनके लिये अधिक कठिनाई उत्पन्न हो जायेगी। औषध निर्माताओं तथा ग्राहकों के हित को दृष्टि सम्मुख रखकर मेरे विचार में केन्द्रीय सरकार द्वारा चिकित्सकों, औषध निर्माताओं औषध निर्माण विशेषज्ञों के परामर्श से कोई अच्छा फार्माकोपिया का निर्माण ही इसका समुचित समाधान हो सकता है। यह फार्माकोपिया दी इण्डियन फार्माकोपिया की तरह का हो जो कि भारत सरकार ने अभी अलोपैथी चिकित्सा पद्धति के लिये छापा है, ऐसा होने पर सारे राज्यों की वह आवश्यकता पूरी करेगा।

नियन्त्रण—इस समय जो आयुर्वेदिक औषधियां तैयार होती हैं उनपर अलोपैथी दवाइयों वत् कोई नियंत्रण नहीं है, औषध निर्माताओं तथा ग्राहकों के हित के लिये यह आवश्यक है कि इस समय अपनी चिकित्सा पद्धति के औषध निर्माण तथा प्रयोग पर अलोपैथीवत् कोई नियन्त्रण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

हो, तभी सुधार हो सकता है। यह आवश्यक नहीं कि यह नियन्त्रण ड्रग एक्ट की तरह का कठोर हो, परन्तु इसका होना आवश्यक है। यद्यपि ऐसा कानून बन जाने पर आरम्भ में कई कठिनाइयां आ सकती हैं परन्तु मुझे विश्वास है कि इससे निर्माता और ग्राहक दोनों समुदाय को लाभ होगा और विज्ञापक औषध निर्माता इस क्षेत्र से निकल जायेंगे। प्रयोग की जाने वाली जड़ी बूटियों पर तथा निर्माण में लगे हुए व्यक्तियों पर भी नियन्त्रण हो जाना चाहिये।

श्रमिक वर्ग—एक दुःख की बात है कि जो व्यक्ति इस उद्योग में कर्मचारी रखे जाते हैं वह अपने काम के सुशिक्षित नहीं होते, न उन्हें रखते समय सुविचार पूर्वक देख समझ कर रखा जाता है। ऐसे कर्मचारी स्वच्छता की ओर ध्यान नहीं रख सकते जैसा अन्य उद्योगों के कर्मचारी देखे जाते हैं। सीखे और समझे कर्मचारी न होने के कारण ही औषध निर्माण में अधिक समय और श्रम व्यय होता है इसी कारण अन्य व्यवसाय की अपेक्षा हम जितनी सुलभ औषध जन समाज को देना चाहते हैं नहीं दे पाते।

आयात और निर्यात—पारा, गंधक, हरताल, प्रवाल, केसर आदि द्रव्य आयुर्वेदिक औषधियों के निर्माण में बहुत अधिक प्रयोग होते हैं। इन द्रव्यों की बहुत बड़ी मात्रा विदेश से आयात होती है। इनके आयात पर बहुत सी पाबन्दियां व ड्यूटियां होने के कारण आयुर्वेदिक औषध निर्माण पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। इस बात की आवश्यकता है कि सरकार इस ओर ध्यान दे और अपनी आयात नीति में परिवर्तन करे।

विदेशों में आयुर्वेदिक औषधियों का विक्रय करके विदेशी मुद्रा प्राप्त करने की काफी गुंजायश है। लंका, बर्मा, अफ्रीका, मलाया, सिंगापुर आदि में इन आयुर्वेदिक औषधियों को बेच कर काफी विदेशी मुद्रा निश्चित रूप से अर्जित की जा सकती है। मैं एक ऐसी फर्म को जानता हूँ जो कि बिना विशेष यत्न के लंका और पूर्वी अफ्रीका सदृश देशों में देशी औषधियों की बिक्री करके साढ़े तीन लाख से ऊपर का निर्यात व्यापार करती है, यह जान कर प्रोत्साहन मिलता है कि हमारी सरकार ने डायरेक्टरेट आफ एक्सपोर्ट प्रोमोशन द्वारा इस मामले की ओर दृष्टिपात किया है, मुझे विश्वास है कि निर्यातकों की ओर ध्यान देने पर हमारा निर्यात व्यापार बढ़ेगा।

विधि विधान व्यवस्था—दी ड्रग एण्ड मैजिक रेमेडीज ओबजैक्शनेबल एडवरटाइजमेंट ऐक्ट एक अच्छा सामाजिक विधि विधान है। यह आवश्यक है कि प्रचार के अश्लील तथा हानिकर तरीकों पर विशेष रोगों से सम्बंधित औषधियों की बिक्री को रोकना नियंत्रित किया जाय, परन्तु इस विधि व्यवस्था ने आयुर्वेदिक औषध निर्माताओं को बड़ी परेशानी में डाल दिया है। देशी चिकित्सा पद्धति में कुछ औषधियां ऐसी हैं जिनके वास्तविक नाम भी मूल ग्रन्थों से लिये गये हैं यथा—प्रदरारिरस, उपदंश कुठार, आमवातारि, कुष्ठ कुठार, उन्माद गज केसरी आदि यह सब शास्त्रीय नाम की प्रसिद्ध औषधियां हैं और यथा नाम तथा गुण देखा जाता है, यह अच्छा हो यदि ऐसे नामों की औषधियों को इस ऐक्ट की धारा से अलग रखा जाय।

तीन राज्य बम्बई, मद्रास तथा उत्तरप्रदेश में जहां पर मद्य निषेध है आसव अरिष्टों के एक राज्य से दूसरे राज्य में निर्यात के लिये जो पाबन्दी लगी है उसने औषध निर्माताओं को और असुविधा में डाल दिया है। यह ठीक है कुछ अलोपैथी की अल्कोहल युक्त औषधियों का गलत प्रयोग होता है और उन पर अन्तर्प्रान्तीय पाबन्दियां उचित हैं, किन्तु यह पाबन्दी आयुर्वेदिक आसवारिष्टों के लिये सही नहीं। क्योंकि इनका निर्माण समस्त पाबन्दियों से रहित है और उनमें से बहुतों पर कोई ड्यूटी नहीं और उनका कभी दुरुपयोग होते नहीं देखा गया। ऐसों के लिये जहां अल्कोहल वाली औषधियों का निषेध हो, इस आवश्यक पाबन्दी से जो कि एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में आसव ले जाने पर लगी है कोई और लाभ नहीं हुआ, प्रत्युत देशी औषध निर्माताओं पर पहिले से पड़े हुए बोझ को इसने और बढ़ा दिया है।

संक्षेप में मैंने कुछ कठिनाइयों का जोकि औषध निर्माताओं को जिनका कार्य क्षेत्र सारे भारत में फैला हुआ है, उल्लेख किया है। मुझे विश्वास है कि समस्त सम्बन्धित ओर से पक्षों की समुचित प्रयत्न किया जायगा, तो यह कठिनाइयां अवश्यदूर होंगी। मैं इन आगत महानुभावों का धन्यावाद करता हूँ जिन्होंने मेरे कथन को ध्यान से सुना है।

[शेष पृष्ठ ४५ का]

शास्त्रीय विवेचन का सार–हमारे आचार्यों ने शरीर को दूषित करने वाले द्रव्य का नाम दोष रखा था, दोष शब्द का अर्थ यद्यपि उस समय की विचार धारा के अनुसार वात, पित्त, कफ थे और उनके आधार पर हम रोगों को समझने का प्रयत्न करते रहे, किन्तु हमारा वह वाद प्रत्यक्ष प्रायोगिक युग में आकर सिद्ध नहीं होता. उसके स्थान पर जैवी विष तथा अन्य कारण देखे जाते हैं तो हमें वस्तु स्थिति को सही रूप में पाने के लिये उस प्रत्यक्ष प्रायोगिक ज्ञान को मानना ही पड़ेगा बिनां ऐसा किये हम सदा ही सत्य पर परखी हुई बात से दूर रहेंगे और इस से दूर रहना आयुर्वेद को अनुन्नत रखना है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्युत् की भट्ठियां और औषध निर्माण की मशीनें !!

हम अभी तक धातु भस्में उपलों की अग्नि में तय्यार करते हैं। उपलों की आंच देने में यह त्रुटि सदा रहती रही है कभी आंच कम कभी अधिक लग जाती है, इसके नियन्त्रण के जो भौतिक साधन बताये हैं उन्हें अपनाने पर भी यह त्रुटि दूर नहीं होती, इसीलिये अन्य साधन ढूंढने पड़े। उनमें से विद्युत् की भट्ठियां सर्वोत्तम सिद्ध हुई। विद्युत्भट्ठी में ताप नियन्त्रण की पूर्ण व्यवस्था होती है, जितनी भी मात्रा में आंच देना चाहें आप प्रसन्नता से दे सकते हैं। प्रत्येक धातु भस्में बनाने पर देखा गया है कि उन्हें एक जैसी आंच नहीं चाहिये। किस धातु भस्म को कितनी आंच देना है? इसका सही-सही ज्ञान आप हमारे लिखे भस्म विज्ञान नामक ग्रन्थ में प्राप्त कर सकते हैं।

और वह भस्में विद्युत् भट्ठी पर ही एक मात्रा में आंच देकर बन सकती है इसका अनुभव लिया जा रहा है और उस पर एक भिन्न ग्रन्थ तैयार हो रहा है। हमने ऐसी विद्युत् भट्ठियां निर्माण की हैं जिन पर धातु भस्म और कूपी-पक्व रस दोनों ही बन सकते हैं। छोटे बड़े कई आकार की भट्ठियां तय्यार करके उन पर अनुभव ले रहे हैं जो वैद्य इन भट्ठियों का उपयोग करेंगे वह निश्चिन्त बैठे हुए भस्में व कूपी-पक्व रस निर्माण कर सकते हैं। जिन्हें भट्ठी लगाने की इच्छा हो वह पत्र-व्यवहार करें।

और आज-कल औषधियों की मांग इतनी बढ़ गई है कि हाथ से औषधियां कूट, पीस कर उतनी जल्दी रस, वटी तय्यार नहीं होतीं जितनी मशीनों से होती हैं। हाथ तो लगातार घंटा, आधा घंटा काम कर सकते हैं फिर थक जाते हैं पर मशीन तो लगातार ८-९ घंटा या जितनी देर चाहें उन्हें चलावें क्या वह थकने वाली हैं? फिर खूबी सबसे बड़ी हमारी मशीन में यह है कि जिस तरह आयुर्वेद के ग्रन्थों में औषधियों की कुटाई, पिसाई और घोटाई (भावना) का जो विधान दिया है जिससे औषधियों का सार भाग गरम न हो कर वह नष्ट नहीं होते, बिलकुल उसी विधि के अनुसार हमारी मशीनों से कुटाई, पिसाई घुटाई होती है और औषधियां घुट कर इतने सूक्ष्म अणु-अंशों में आ जाती हैं कि जिनका प्रभाव शीघ्र होता है। प्रत्येक मशीन बिजली की शक्ति से चलने वाली है। मशीनें निम्न हैं :--

चट्टू मशीन, ढोल मशीन, खरल मशीन, गोली मशीन, टिकिया मशीन, पालिश मशीन, आसव छानने की मशीन फिल्टर आदि। अधिक मात्रा में औषध निर्माण-कर्ता यह मशीनें हमारे कारखाने में आकर देखें और सारी व्यवस्था समझ कर अपने यहां यह मशीनें लगाएं।

निवेदक---मैनेजर पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी,
६०--६१ अकाली मार्केट, अमृतसर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ५ चैत्र सम्वत २०१५ संख्या ४

अप्रैल १९५८

आयुर्वेद-विज्ञान

चिकित्सा संसार में क्रान्ति लाने वाला मुख्य वैज्ञानिक पत्र

AYURVED-VIJNAN

The Leading Hindi Journal Explaining The Ayurvedic System on Scientific Lines

सम्पादक
स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

विषय-सूची

१. अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन और शिवशर्मा ४९
२. अलर्क विष (Rabies) ले० कवि गोरीलाल चानना बी ए., वैद्य वाचस्पति ५७
३. प्रकृति सत्ता का संचय और उपयोग ६२
३. आ. महासम्मेलन विधान की मिट्टी पलीद ६४
५. महा सम्मेलन का दिल्ली वार्षिक अधिवेशन स्थगित ६८

प्रकाशक—
स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य, आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय, २२ फैज़ बाज़ार, देहली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मुद्रक—बंदालिया प्रिंटिंग प्रेस, दाईवाड़ा नई सड़क, दिल्ली

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम

१—आयुर्वेद-विज्ञान प्रत्येक अंग्रेजी मास की १ तारीख को प्रकाशित होता रहेगा।

२—डाक-व्यय सहित इसका मूल्य ३) वार्षिक, एक प्रति का मूल्य ३० नये पैसे होगा।

३—पत्र मंगाने वालों को अपना पता साफ २ अक्षरों में लिखना चाहिये।

४—जिन व्यक्तियों के पास उस मास की ५ ता० तक पत्र न पहुंचे उन्हें इसकी सूचना देनी चाहिये।

५—यदि एक-दो मास के लिये पता बदलवाना हो तो उसका प्रबन्ध स्वयम् डाकखाने से कर लेना चाहिये। अधिक समय के लिये पता बदलवाना हो तो फिर हमें सूचित करना चाहिये।

६—पत्र व्यवहार करते समय ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये। अन्यथा उत्तर नहीं दिया जावेगा।

७—पत्र व मूल्य सम्बन्धी पत्र-व्यवहार मैनेजर आयुर्वेद विज्ञान के नाम से और लेख, समालोचनादि व पुस्तकादि सम्पादक के नाम से भेजना चाहिये।

८—कोई भी पत्र, पुस्तक समालोचना के लिये भेजी जाय उनकी दो प्रति भेजनी चाहिये।

९—आयुर्वेद विषयक वैज्ञानिक गवेषणापूर्ण लेखों को पत्र में सर्व-प्रथम स्थान दिया जायेगा और श्रेष्ठ सचित्र लेखकों को पुरस्कृत भी किया जायगा।

१०—वृथा के आडम्बर पूर्ण पृष्ठ-पोषक लेखों के लिये इसमें स्थान नहीं मिलेगा। किसी भी लेख को घटाने, बढ़ाने व प्रकाशित करने, न करने का सम्पादक को पूर्ण अधिकार होगा।

११—जो लेख भेजे जायें, कागज पर एक तरफ हाशिया छोड़ कर लिखे होने चाहिये।

१२—उत्तम २ अलभ्य आयुर्वेद साहित्य सम्बन्धी चित्र, लेख व वनस्पतियों आदि को जो सुरक्षित भेजेंगे उनको सपारिश्रमिक मार्ग व्यय आदि सब आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय से दिया जायगा।

१३—आयुर्वेद शास्त्र सम्बन्धी प्रश्नों को छोड़ कर परामर्श सम्बन्धी या किसी रोगी के लिये रोग-स... प्रश्नों पर प्रति प्रश्न के लिये आयुर्वेद-विज्ञा... ग्राहक आठ आना, जो ग्राहक नहीं वह प्रति प्रश्न रुपये का टिकट प्रश्न के साथ भेजेंगे तभी उनके और उत्तर छापे जायेंगे।

विज्ञापन छापने के नियम

१—किसी भी विज्ञापन छापने वाले या बन्द करने को पत्र प्रकाशन से १५ दिन पूर्व सूचना चाहिये।

२—अश्लील सभ्यता के विरुद्ध विज्ञापन नहीं जायेंगे।

३—कोई भी विज्ञापन जनता को धोखा देने सिद्ध होने पर उसका प्रकाशन बन्द कर जायगा और जब तक वह सन्तोषप्रद प्रमा देगा जो मूल्य आ चुका है वापस नहीं जायगा।

४—विज्ञापन का मूल्य सर्वथा प्रथम लिया जायगा।

५—आधे कालम से कम विज्ञापन दाताओं को आ विज्ञान बिना मूल्य नहीं दिया जायगा।

६—एक वर्ष के लिये विज्ञापन देने वाले को =) कमीशन काट दिया जायगा।

विज्ञापन के दर

७—१ पृष्ठ यानी २ कालम की प्रतिवार की छपाई
आधा पृष्ठ " १ " " "
चौथाई ,, १।२ " " "
टाईटल के पीछे के पृष्ठ की " "
" तीसरे " की " "
" चौथे " की " "

८—ट्रेड डायरैक्टरी में विषय वार विज्ञापन प्रति ३) के हिसाब से लिया जावेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रान्तों में दो-दो तीन-तीन संस्थाओं को प्रादेशिक शाखाओं के रूप में मान्यता दी गई है, किन्तु विभिन्न प्रान्तों के बहुसंख्यक वैद्य हमारी प्रादेशिक शाखाओं के सदस्य बनने में रुचि नहीं रखते। संस्था के हित के लिये इसका कारण सामने आना चाहिये।

(१३) सम्मेलन पर व्यय भार अत्यधिक बढ़ा हुआ है। १६ हजार रुपया वार्षिक तो केवल वेतन पर ही व्यय का अनुमान है, जो विचारणीय है। महासम्मेलन पत्रिका जिस पर दस हजार रुपया वार्षिक से अधिक व्यय होता है, उससे मूल उद्देश्य की पूर्ति न हो कर कुछ व्यक्तियों के प्रचार का साधन बनाई जा रही है। हम इसे निन्दनीय समझते हैं।

(१४) पत्रिका सम्पादक ने इधर पत्रिका और पत्रकों द्वारा प्रमुख व्यक्तियों पर निन्दनीय आक्षेप करने का जो क्रम अपनाया है, हम उसको पत्रिका-नीति के विरुद्ध नितान्त दोषपूर्ण समझते हैं। हमारी दृष्टि में पत्रिका सम्पादक ने अपने पद और साधन का दुरुपयोग किया है।

(१५) हम सबों का आग्रह है, कि उक्त सभी विचारणीय बातों पर महासम्मेलन के उत्तरदायी व्यक्ति और समस्त वैद्यजन गम्भीरता पूर्वक विचार करें एवं आगामी दिल्ली-अधिवेशन पर निम्न विषयों पर प्रस्ताव स्वीकार कर शीघ्र कार्यवाही करने के लिये अग्रसर हों।

आप सबों के सुझाव

(१) निष्पक्ष सदस्यों की एक समिति बनाई जाय, जो महासम्मेलन एवं विद्यापीठ कार्यालय की कम से कम पिछले दस वर्षों की गतिविधि का सिंहावलोकन करे।

आय व्यय तथा कार्यालय की वैधानिक कार्यवाही की जांच करे और यदि कोई अनियमितता पाई जाय, तो उसे आगे जांच के पूरे विवरण के साथ उन अनियमितताओं के सुधार विषय में अपने सुझाव प्रस्तुत करे।

(२) पांच व्यक्तियों की एक समिति बनाई जाय, जो महासम्मेलन के विधान को अधिक जनतन्त्री, व्यापक एवं स्पष्ट बनाने के लिये विधान में संशोधन के सुझाव प्रस्तुत करे।

(३) प्रत्येक राज्य के निष्पक्ष महासम्मेलन-सदस्यों के पांच-पांच व्यक्तियों की एक समिति बनाई जाय, जो अपने प्रान्त की वर्तमान प्रादेशिक शाखाओं की स्थिति की जांच करे, और वही प्रतिनिधि प्रादेशिक शाखायें जिला, नगर, ग्राम सभाओं को वैधानिक रूप से संगठित करने की व्यवस्था करे।

(४) प्रादेशिक शाखाओं और उपसभाओं के लिये सर्वत्र एक समान प्रचलित नियमावली बनाई जाय, जो उपनियमों के रूप में महासम्मेलन का अंग मान ली जाय।

(५) महासम्मेलन संगठन विस्तार के लिये एक नई सदस्य श्रेणी बढ़ाई जाय। उसके अन्तर्गत एक रुपया वार्षिक शुल्क लेकर देशभर के वैद्यों को विधिवत् महासम्मेलन का सदस्य बनाया जाय।

(६) नि. भा. आ. विद्यापीठ के समस्त धन की साधनों सहित शीघ्र ही आयुर्वेद महाविद्यालय के रूप में परिवर्तित कर दिया जाय एवं केन्द्रीय स्थान दिल्ली में पूर्व निश्चय के अनुसार आयुर्वेद महाविद्यालय संस्थापित व संचालित किया जाय।

(७) महासम्मेलन विद्यापीठ एवं पत्रिका के बढ़े हुये व्यय भार पर विचार करने के लिये एक समिति बनाई जाय, जो सर्वत्र जांच करके व्यय भार कम करने के विषय में सुझाव प्रस्तुत करे।

उक्त निवेदन व सुझाव प्रस्तुत करने वाले ४० वैद्यों में से अनेक महामण्डल के पुराने कार्यकर्ता, महारथी आदि भी हैं यथा—रा. वै. पं० रामेश्वर शुक्ल, लश्कर; पं० दुर्गादत्त शास्त्री, वाराणसी; आचार्य शिवदत्त शुक्ल, लखनऊ; रा. वै. ख्यालीराम द्विवेदी, इन्दौर; वै. रा. स्वामी जयराम दास जी; स्वामी मंगलदास जी, जयपुर; वै. रा. प्रताप कुमार पोपट भाई, बम्बई; आचार्य रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी, वाराणसी; स्वामी दयाधि, ऋषिकेश; आचार्य मणिराम शर्मा, रतनगढ़; वै. शिवकरण शर्मा छांगाणी नागपुर; पं० कन्हैयालाल भेड़ा, पं० वैद्यनाथ शर्मा, बम्बई; वै. लक्ष्मीनारायण मिश्र, मेरठ; वै. मन्नालाल पाण्डे, कानपुर; वैद्य रामगोपाल शास्त्री, मथुरा आदि-आदि हैं।

वैद्यों में उक्त जागृति के चिन्ह कैसे परिलक्षित हुये?

यह बात तो मैं डंके की चोट से कहूंगा, कि वैद्य समाज को विधि-विधान का ज्ञान नाम मात्र को है। जिस संस्था को उन्होंने स्थापित किया, जिसका विधान बनाया, उसका संचालन उस विधान के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधान होना चाहिये। किन्तु समय आने पर उसका वे दृढ़ता से पालन नहीं करा सके। प्रमाण लीजिये, १९३८ के साल का जिकर है। महासम्मेलन के मंच पर शिव शर्मा छल-प्रपंच से आ बैठा और बम्बई के अधिवेशन की प्रधानता की। उस समय के सम्मेलन विधान में यह बात निहित थी कि वार्षिक अधिवेशन के अन्त में प्रधान नये वर्ष के लिए वहीं पदाधिकारी चुने और सम्मेलन व विद्यापीठ की कार्यकारिणी के ५०-५० सदस्य भी वहीं चुने जायं। शिव शर्मा ने यह दोनों चुनाव नहीं किये।

उसने लाहौर जाकर बिना अधिवेशन की स्वीकृति के पदाधिकारियों के नाम तो सम्मेलन पत्रिका में प्रकाशित कर दिये किन्तु कार्यकारिणी के ५० सदस्य नामजद तक नहीं किये। उस वर्ष बिना कार्यकारिणी के ही लाहौर में अधिवेशन होते रहे। सम्मेलन-सदस्यों को विधि-विधान का ज्ञान होता, तो वह आपत्ति उठाते, किन्तु किसी ने कोई आपत्ति नहीं उठाई। और यहीं दूसरा एक और विधान के विरुद्ध उसने प्रस्ताव रखा, यथा—'महासम्मेलन के लिये प्रधान पद के लिये पहिली बार पांच नामों का चुनाव स्वागत-समिति करे और उन पांच नामों पर पुनः सम्मेलन-सदस्यों से मत मांगे जायं।' प्रधान के लिए जब दो बार सदस्यों द्वारा चुनाव का अधिकार विधान में था। विधान के विरुद्ध यह प्रस्ताव उसने बड़ी चालाकी से वहां पास कराया था। इस अधिकार-अपहरण पर भी किसी सदस्य ने कोई आपत्ति नहीं उठाई। इससे स्पष्ट होता था, कि सदस्य विधि-ज्ञान से बिलकुल कोरे थे। उस प्रपंची ने और मजे की बात यह की, कि अन्य २१ प्रस्ताव बम्बई-अधिवेशन पर जो पास हुए थे, वह तो सम्मेलन पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजे, यह प्रस्ताव दबा दिया। उसे भय था, कि इसके प्रकाशित होने पर सम्भव है, किसी विधान-ज्ञाता वैद्य की निगाह इस पर पड़े और वह आपत्ति उठा दे, तो अगले अधिवेशन के प्रधान का अवसर हाथ से निकल जायगा। जोधपुर से अगला निमन्त्रण मिला हुआ था। उसने जोधपुर की स्वागत-समिति पर प्रभाव डालकर अगले वर्ष के पांच नामों में अपना स्थान फिर बना लिया। वैद्यों ने विधान के विरुद्ध यह चुनाव ही नहीं देखा, प्रत्युत अनुभव किया, कि यह तो समस्त सम्मेलन-सदस्यों के अधिकार का अपहरण हुआ है। यह देखकर भी किसी ने विधान की रक्षा नहीं की। १६ वर्ष तक समस्त सम्मेलन-सदस्य इस अधिकार-अपहरण का अपमान-जनक कष्ट उठाते आ रहे हैं, किन्तु किसी को इसे बदलवाने का साहस नहीं हुआ, न इसके प्रतिकार का उन्होंने कोई मार्ग ढूंढा।

१९५५ के अक्टूबर में मेरे द्वारा इस प्रतिकार के लिये पुनः कदम उठाया गया। शिव शर्मा समझता था, कि जिस तरह समस्त सम्मेलन-सदस्यों को अपनी जालसाजी के जाल में दबा रखा है, इसको भी अपनी धूर्तता की चक्की में पीस डालूंगा। पर, यह कोई सम्मेलन-सदस्यों का मंच नहीं था। यह तो था न्यायालय, जिसकी न्यायप्रियता पर सब से अधिक उसीका विश्वास था। १६ वें वर्ष के बाद न्यायालय के सामने जब मेरे वकील ने शिव शर्मा पर जिरह की और पूछा कि बम्बई में प्रधान बनकर विधान के अनुसार नये वर्ष के लिये पदाधिकारी और कार्यकारिणी के ५० सदस्यों का चुनाव आपको उसी अधिवेशन पर करना चाहिये था, यह चुनाव क्यों नहीं किये ? तो शिव शर्मा उत्तर देता है—मैं नया-नया प्रधान बना था, इसलिये मुझे इसका ज्ञान नहीं था। जब उससे पूछा गया, कि वहां आपकी ओर से एक प्रस्ताव इस आशय का भी पेश किया गया था, कि प्रधान के चुनाव के लिए प्रथम पांच नामों को चुनने का अधिकार स्वागत-समिति को दिया जाय, तब उसने अपनी ओर से उस प्रस्ताव का रखना तो स्वीकार किया। वहां जिरह में उसने यह भी माना, कि स्वागत-समिति में ऐसे व्यक्ति होते हैं, जो महासम्मेलन के सदस्य नहीं होते। तब उससे पूछा गया, कि जो सम्मेलन-सदस्य नहीं होते उन्हें प्रधान के चुनाव का अधिकार क्यों दिया जाय। हजरत साहब के पास इसका कोई उत्तर न था।

जिस अवैधानिक स्थिति को १६ वर्ष तक वैद्य उससे मनवा नहीं सके, वह न्यायालय ही था, जिसने उसके इस अवैधानिक कार्यों की कलई खोल दी।

शिव शर्मा महासम्मेलन से क्यों चिपका हुआ है ?

उसने जो मुझ पर मानहानि का दावा किया था, मेरे व्यक्तिगत किसी झगड़े से उसका सम्बन्ध न था। बल्कि महासम्मेलन में उसने दस वर्ष प्रधान व मन्त्री के रूप में रहकर जिस तरह अवैधानिक विधियों से महासम्मेलन पर अपना प्रभुत्व बनाये रखा और महासम्मेलन विद्यापीठ के धन का उपयोग अपने और अपने गुट के [illegible] इस महासम्मेलन को उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजे से मुक्त करने का प्रयत्न मात्र था। मेरे वकील ने महासम्मेलन के रिकार्ड द्वारा अच्छी तरह से सप्रमाण सिद्ध किया, कि वह महासम्मेलन का रुपया किस तरह स्वयम् उपयोग करता आ रहा है और अपने पिता तथा रिश्तेदारों को किस तरह प्रस्तावों द्वारा रुपये देने के रास्ते निकाले हैं। और इस समय भी वह अपनी प्रतिष्ठा को बढ़ाने के निमित्त किस तरह महासम्मेलन के धन का दुरुपयोग करता है। जब वह मुकदमा हार गया और वैद्य-समाज में उसकी सारी कलई खुल गई, ऐसी दशा में उसे चाहिये था, कि जिस महासम्मेलन की बदौलत बम्बई में उसने अपनी स्थिति बना ली थी, चुपचाप रहकर खूब कमाता खाता, महासम्मेलन का पीछा छोड़ देता। पर वह तो महासम्मेलन की सम्पत्ति को अपनी बपौती माने बैठा है, इसीलिये उसने अपनी सफाई देने के लिये महासम्मेलन पत्रिका को इसका साधन बनाया। उसने पत्रिका के पांच अंकों में जो हिन्दी अंगरेजी दोनों भाषाओं में अपनी सफाई के वक्तव्य प्रकाशित कराये, उस पर महासम्मेलन का कितना रुपया व्यय किया? क्या आप इसे जानते हैं? यदि नहीं, तो सितम्बर १९५७ की पात्रिका से लेकर जनवरी १९५८ की पत्रिका के पांच अंक देख जाइये। इस सारी सफाई में उसने १५ फार्म खर्च किये हैं, जिसका अर्थ है ६० रिम के लगभग कागज खर्च हुआ, जिसका मूल्य लगभग ९०० रुपया हुआ और कम्पोज छपाई पर लगभग ६०० रुपया इस तरह उसने महासम्मेलन के १५०० रुपयों पर पानी फेर दिया। चूंकि इसे वह अपनी बपौती समझता हैं, फिर क्यों न खर्च करे। उसके आज्ञा पालक कर्मचारी जो नीचे विद्यमान हैं फिर पूछने वाला कौन? सम्पादक तो उसका पूरा हिमायती है। इसी मध्य २७–२८ नवम्बर को दिल्ली में महासम्मेलन की स्थायी समिति का अधिवेशन होता हैं। उस अधिवेशन में १२१ के लगभग सदस्य पहुँचते है, जिनमें से ५० सदस्य पटियाला राज्य दातव्य औषधालयों में काम करने वाले सरकारी वैद्य अधिवेशन में इसलिये लाये गये, कि शिव शर्मा के विरुद्ध कोई वैधानिक प्रश्न उठाया गया, तो यह लोग अधिवेशन की कार्यवाही को नहीं होने देंगे। इन वैद्यों का नेता स्वयं इनके साथ आया और उसने दिल्ली के प्रतिष्ठित वैद्यों से मिलकर साफ साफ कहा कि यदि आप सब स्थायी समिति में कोई वैधानिक प्रश्न उठावेंगे तो हम आपका सहयोग नहीं देंगे, विरोध करेंगे। हां केवल एक बात में हम आपका सहयोग देंगे, कि दिल्ली में इस बार अधिवेशन किया जाय। उसके धमकाने पर दिल्ली के नेताओं के साहस हवा हो गये। उस अधिवेशन में कई पुराने महारथी भी पधारे थे, पर किसी से यह साहस नहीं हुआ कि शिव शर्मा के निजी वक्तव्य जो पत्रिका में प्रकाशित करा रहा था-महामण्डल के धन का वह कैसे स्वाहा कर रहा था, उससे पूछते और नहीं तो पत्रिका की निर्पक्ष नीति पर जो आघात पहुँच रहा था उसके सम्बन्ध में ही वहां कोई आवाज उठाते। कम से कम पत्रिका सम्पादक से ही जवाब तलब करते, कि वह नीति के विरुद्ध महामण्डल के धन से यह वक्तव्य क्यों प्रकाशित कर रहा है? किसकी आज्ञा से प्रकाशित कर रहा है? उसे ऐसे व्यक्तिगत झगड़ों के वक्तव्य प्रकाशित करने का अधिकार किसने दिया? एक दूसरे के कानों में वे वैद्य वहां घुस-घुस जरूर करते रहे, पर अधिवेशन में एक व्यक्ति भी कुछ न बोल सका कि ऐसी अवैधानिक बातें क्यों होती है। ऐसे मुफ्त के माल पर जो व्यक्ति प्रतिष्ठा प्राप्त किये हो भला फिर ऐसे बढ़िया आकर्षण से कौन चिपका नहीं रहेगा?

निर्लज्ज नेता—इस मुकदमे में उसके अवैधानिक कार्यों द्वारा वैद्य-समाज में जिस तरह मिट्टी पलीद हुई कोई शरमसार व्यक्ति होता तो वह मुंह न दिखाता, पर वह जानता है कि जिस वैद्य-समाज को अपनी पेट पूजा की चिन्ता से अवसर नहीं, वह हमारे इस मुकदमे के फैसले को कब पढ़ेगा। उसने प्रान्तों में जो नाम मात्र के प्रान्तीय मण्डल बना रखे हैं, जिन्हे वह व्यक्तिगत रूप में हर तरह से लाभ पहुँचाता है, वह सामाजिक दृष्टिकोण को क्या जानें, उनके लिये तो शिवशर्मा ही सर्वेसर्वा है। इसीलिये नये प्रधान के पांच नामों में से फिर इस बार १४ प्रान्तीय शाखाओं में से १२ ने उसको प्रधान पद के लिये चुना। इस चुनाव द्वारा वह संसार को यह दिखाना चाहता है, कि मेरी प्रतिष्ठा जैसी की तैसी ही बनी हुई है, वैद्य-समाज मुझे अब भी अपने समाज का नेता मान रहा है। वैद्य-समाज को धोखा देने की इससे बड़ी निर्लज्जता और क्या होगी?

इनकी कलई तो १९४५–४६ में ही खुल जानी थी—एक पम्फलेट की बिना पर इसने मुझ पर लाहौर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में मानहानि के लिये ५००० रुपये का दावा किया था। वह मुकदमा दो साल से चल रहा था। उस केस में गवाही के लिये कमीशन मुकर्रर हुआ करता था। वह कमिश्नर कराची, जयपुर, कलकत्ता, बनारस, पटना, कानपुर, दिल्ली, प्रयाग आदि स्थानों में से काफी स्थानों में गवाहियां ले चुका था। कुछ स्थान अभी गवाहियों के लिये बाकी थे। इसी केस की चर्चा अभी उसने फरवरी १९५८ की पत्रिका पृष्ठ १११ पर अपने वक्तव्य में की है। वह निम्न है:—स्वामी हरिशरणानन्द का अभियोग:—

में स्वामी हरिशरणानन्द के मामले को छोड़ रहा हूँ। (क्यों ?) चलते चलते मेरे एम० ए० कहे जाने के सम्बन्ध में एक शब्द कह दूँ। मेरा विना एम० ए० हुये ऐसा कहा जाना इन सज्जनों के लिये नवीन सूचना थी, जिससे उन्हें विस्मय हुआ।

(क) लाहौर के मूलचन्द ट्रष्ट के वकील ने जो उस समय स्वामी हरिशरणानन्द और श्री कन्हैयालाल भेड़ा का वकील था, १९४५–४६ में मेरी योग्यता के सम्बन्ध में मुझ पर लम्बी जिरह की थी। यही नहीं, एक कमीशन भी पटियाले गया था जहां पूज्य पिता जी का बयान भी लिया गया और लम्बी जिरह की गई।

(ख) श्री रामनारायण शर्मा जी उस समय स्वामी हरिशरणानन्द की लिस्ट ए पर गवाह नं० २ थे। उनका बयान पटना में कमीशन द्वारा २८ दिसम्बर १९४६ को होना था। परन्तु वह बीमार पड़ गये और उन्हें पहाड़ पर विश्राम के लिये जाना पड़ा। अतएव वे निश्चित समय पर पटना रेलवे स्टेशन पर–जहां गवाही होनी थी न पहुँच सके। कमिश्नर को बनारस जाकर स्वामी हरिशरणानन्द के दूसरे गवाह कवि० प्रतापसिंह की गवाही लेनी पड़ी।

यह सज्जन हमें यह विश्वास दिलाना चाहते हैं, कि जो सूचना इन्होंने मेरी योग्यता पर मेरी और मेरे पिता जी की गवाही तथा लम्बी जिरह द्वारा इतने परिश्रम से इकट्ठी की थी, वे उसे भूल गये।

इस सम्बन्ध में मैं इससे अधिक कुछ नहीं कहना चाहता, कि मेरी आयुर्वेद से बाहर न कोई योग्यता उपाधि रूप है, न मैंने होने का कभी दावा किया है।"

शिव शर्मा

जब आपके पास कोई डिग्री नहीं थी और १९५६ से पूर्व धन्वन्तरि पत्र के लेखों में आपके चित्र के नीचे बी० ए० को डिग्री एक बार नहीं अनेक बार लगती चली आ रही थी, जिस संस्था के आप सर्वेसर्वा थे, उसकी पत्रिका में आपकी प्रशंसा के साथ एम० ए० की डिग्री लगी देखकर आंख क्यों बन्द कर ली थीं। उस समय आप सार्वजनिक रूप में प्रतिष्ठा को धक्का लगने के डर से प्रकट में प्रतिवाद न करते पर गुप्त रूप से ही उन्हें सूचना दे देते कि भविष्य में यह डिग्रियां मेरे नाम के साथ न लगावें। धूर्तता कहते किसको हैं ? ऐसे ही करतूतों द्वारा प्रतिष्ठा बढ़ाने को।

यह ठीक है १९४६ के केस में आपकी योग्यता की सारी पोल मेरी जेब में आ गई थी, अभी केस चल ही रहा था, अगस्त १९४७ में रहे हुये कुछ शहरों के वैद्यों की गवाहियां होनी थीं कि दिल्ली के भाग्य से छीका टूटा, देश का विभाजन हो गया और वह केस बीच में ही लटका रह गया। जब तक मुकदमा समाप्त न होता, उसके परिणाम को कैसे प्रकाशित करता, इसीलिये उस विभाजन के बाद हजरत बम्बई भागकर पहुँचे और महासम्मेलन की बदौलत विशेषकर १९५२ के बाद प्रधान पद को सुशोभित कर अपनी ख्याति फैलाने का उन्हें अच्छा अवसर मिला। हम तो आपकी किसी योग्यता को नहीं भूले थे, किन्तु उसे अन्यों को बताने का अवसर तो इसी दुबारा के केस में आपकी परम कृपा से प्राप्त हुआ, जिसके लिये आपका साहस देखकर कोई अच्छी सी उपाधि देने के लिये ढूंढ़ रहा हूँ।

शिव शर्मा और उसके साथी अधिकारी वर्ग महासम्मेलन के धन को किस तरह खा रहे हैं, इसके कुछ प्रमाण

हमने माननीय न्यायाधीश बम्बई की मार्फत १९४० से लेकर १९५५ तक का महासम्मेलन कार्यालय का हिसाब तलब किया था। किन्तु शिव शर्मा ने १९४० से १९५१ तक का हिसाब किताब पेश नहीं होने दिया। तिलकराम ने अदालत में बयान दिया यह हिसाब के कागजात हमारे पास नहीं है। १९५२ से १९५५ तक का जो हि[illegible] अदालत में पेश किया था, उसमें से जो रुपये शिव शर्मा और उसके साथी पदाधिकारियों ने महासम्मेलन से प्राप्त किये उनका तिथिवार ब्योरा निम्न है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिव शर्मा के मद में डाली हुई रकमें

७०) शिव शर्मा के नाम पृष्ठ १७
ता० २२-६-५२

५१०) शिव शर्मा का वक्तव्य छपाई लेजर पृष्ठ १७ सूढ़ पृ० ७६ ३०-१०-५२

७६०) गाजियाबाद अध्यक्षीय भाषण के दो बिल विद्यापीठ खाते से चुकाये गये १६-६-५२

६६०≡)॥ चैक नं० २३७५४२ पं० शिवनाथ जी को कानूनी व्यय की रकम दी। २३-१-५३

इस सम्बन्ध में श्री ओंकारप्रसाद जी को शिव शर्मा ने १३-६-५२ को जो पत्र लिखा था और ५००) रु० का ड्राफ्ट भेजा था वह पत्र अदालत में पेश किया गया था, वह निम्न था:—

वामन जी पेटिट रोड
कम्बाला हिल
१६-६-५२

प्रिय श्री ओंकार प्रसाद जी,

यह ५००) रु० का ड्राफ्ट श्री शिवनाथ जी वैद्य के नाम भेज रहा हूँ। उनका पता कल वामनराव जी ने बताया, परन्तु मैं नोट करना भूल गया।

शिव शर्मा

उक्त ६६०≡)॥ जो पं० शिवनाथ को कानूनी व्यय के लिये महासम्मेलन ने दिये थे, उन्होंने शिव शर्मा को वापस किये होंगे।

३४०) शिव शर्मा के भाषण की छपाई का वाउचर नम्बर ६६ ३१-१०-५४

४३५॥) शिव शर्मा सफर खर्च कलकत्ता-बम्बई ऋषि-केशवाऊचर नं० १०० ३१-१०-५४

२६५॥) " कोट्टकल अध्यक्षीय भाषण लेजर पृ० ३ २६-३-५४

१२०) " पार्ट टाइम क्लर्क को वेतन ३१-१०-५४

५०) " नाम डाली रकम देय बिल वाउचर नं० २४० ३१-१०-५४

२००) प्रधान शिव शर्मा के क्लर्क का वेतन ३१-१०-५४

६५०) शिव शर्मा ने दिलाये बिना रसीद के, पं० श्रीवत्त को यह रकम कानूनी व्यय के नाम ११-८-५५

७००) अध्यक्षीय भाषण की छपाई और दो मास की पत्रिका की छपाई के दो बिल चुकाये लेजर पृष्ठ २२ १२—८—५५

२२००) अपने पिता पं० रामप्रसाद को ११०० रु० वाऊचर नं० ६७ तथा पं० श्रीदत्त को ११०० रुपये के चैक दिलाये वाऊचर नं० ६६ ३१-१०-५५

वामनराव दीनानाथ प्रधान-मन्त्री के नाम डाली रकमें

५०) वामनराव को वेतन व्यय में डालकर दिये लेजर पृ० ५२ ३१—१०—५४

४०) " के पार्टटाइम क्लर्क का वेतन लेजर पृ० १० ३१-१०-५४

५०) " के नाम डालकर दी गई लेजर पृ० १२ ३१—१०—५४

१४५॥-)॥ " के जनरल पृ० ३३ ३१-१०-५५

नोट—३१-१०-५४-५५ के दिन जो रकमें डाली डाली गईं हैं यह रकमें उस दिन साल का खाता बन्द करते समय डाली गई हैं। दी चाहे कभी गई हों।

विद्यापीठ का धन विधान के अनुसार कैसे निकाला जाय?

विद्यापीठ नियमावली धारा १८ में 'विद्यापीठ कोष: सम्पत्तिश्च' में लिखा है—

येनोद्देश्यन विद्यापीठेन धनराशि: सम्पत्तिर्वा संगृहीता तदर्थमेव तदुपयोगा: कर्त्तव्य:। किन्तु यदि विशेष महत्व पूर्ण प्रयोजनार्थं धनस्य सम्पत्तेर्वोपयोगोऽभीष्ट: स्यात्तर्हि अधिकांश महासम्मेलन सदस्यानां लिखिताज्ञा यैवतद् भवितुं शक्नुयात्। नियमावली पृ० ८। जिस उद्देश्य के लिये विद्यापीठ की धनराशि या सम्पत्ति इकट्ठी की गई हो, उसी निमित्त उसका उपयोग करना कर्त्तव्य है। किन्तु यदि विशेष महत्वपूर्ण किसी प्रयोजन से विद्यापीठ धन या सम्पत्ति का उपयोग करना अभीष्ट हो, तो उसके लिये महासम्मेलन के सदस्यों के बहुमत की लिखित आज्ञा से ऐसा करसकते हैं।

विद्यापीठ मन्त्री को भी कितना धन खर्च करने का अधिकार है, विद्यापीठ नियमावली धारा ४ मन्त्रिण:- उपधारा १० में लिखा है:—

शताधिक मुद्राणां विशेष व्ययार्थं कार्यसमिते: स्वीकृति ग्रहणम्। उपधारा (१४) आकस्मिक कार्यार्थं पंचाशतमुद्रावधिव्यय करण तस्य च व्ययस्य कार्य समिते रागामिन्यधिवेशने स्वीकरणावश्यकम्।

इन नियमों की उपस्थिति में विद्यापीठ की कोई रकम खर्च करने से पूर्व उसे विद्यापीठ कार्यकारिणी के अधिवेशन में रखना स्वीकृति लेना आवश्यक है अथवा विद्यापीठ के धन का उपयोग करना हो, तो रुपया लेने से पूर्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महासम्मेलन सदस्यों के बहुमत का लिखित आदेश प्राप्त करना चाहिये। किन्तु हिसाब देखने से ज्ञात होता है कि ऐसा कई वर्षों से नहीं हो रहा। निम्नलिखित रकमें विद्यापीठ खाते से बिना किसी से पूछे निकाली गई हैं—

महासम्मेलन ने विद्यापीठ से जो रकमें निकालीं उसका व्यौरा

७९०) अध्यक्षीय भाषण की छपाई विद्यापीठ से जरनल पृ० १० १९—६—५२

१०००) विद्यापीठ से निकाला गया म० स० के लिये ज० पृ० १२ १—७—५२

२६२) जर्नल आफ आयुर्वेद का खर्च " " ३१-१०-५२

२०००) विद्यापीठ से निकाला गया महासम्मेलन के लिये ३१—१०—५२

५००) विद्यापीठ से जरनल पृ० २६ २४—८—५३

१०००) " " " " २२ १८—१२—५३

१५९३।)।। विद्यापीठ से अगस्त १९५३ से अक्टूबर तक ३ मास का वेतन महामण्डल क्लर्कों को चुकाया ३१—१०—५३

६५५॥≡)।। श्री कृष्ण प्रभाकर कार्यालय मन्त्री का वेतन ५ मास का विद्यापीठ खाते से चुकाया जर्नल पृ० ११ ३१—१०—५४

१३१-)।। कार्यालय कर्मचारी वेतन विद्यापीठ खाते से पृ० १२ ३१—१०—५४

२००) शिव शर्मा के क्लर्क का वेतन विद्यापीठ से दिया ३१-१०—५४

१३१) श्री कृष्ण प्रभाकर को वेतन विद्यापीठ से दिया ३१—१०—५४

४९) विद्यालय द्वार का ब्लाक बनवाई खर्च विद्यापीठ से दिया ३१—१०—५४

५२५) पत्रिका और भाषण छपाई खर्च विद्यापीठ ज० पृष्ठ २२ ११—८—५५

३२०) पत्रिका मुद्रण-व्यय " १—९—५५

१७७५=)।। श्री कृष्ण प्रभाकर को वेतन १ साल का विद्यापीठ से दिया ३१—१०—५५

११९३२)

यह ११ हजार रुपया जो महासम्मेलन पदाधिकारियों ने १९५२ से ५५ तक विद्यापीठ अधिवेशन की बिना स्वीकृति के निकाला। यदि महासम्मेलन-सदस्य कुछ भी विधान की बात जानते हों, तो इसको समझें और अधिवेशन में उन्हें इस पर आपत्ति उठानी चाहिये और उन पदाधिकारियों से जबाब तलब करना चाहिये। १९५६ का जो आय-व्यय का बजट मार्च १९५७ की पत्रिका में प्रकाशित है, उसमें ६२५०।।।)। जो आय से अधिक खर्च हुआ है और इसी तरह १९५७—५८ का आनुमानिक आय-व्यय जो दिसम्बर १९५७ की पत्रिका में प्रकाशित है, उसमें अभी तो १५००) ही अधिक खर्च के मद में दिखाये गये है। यह रकमें विद्यापीठ की आय से ही निकालकर १९५६—५७ के महासम्मेलन का घाटा पूरा किया गया होगा और १९५७—५८ को आगे किया जायगा।

महासम्मेलन—विद्यापीठ के कौन से १९५६ के खर्च देखने के योग्य हैं—

सम्मेलन-व्यय

महासम्मेलन पत्रिका वेतन का	१९०६)
" कार्यालय वेतन	२३१२)
यात्रा-व्यय	१००३)
प्रचार-व्यय	५३१)
मुद्रण-लेखन महासम्मेलन का	१४१५)
प्रचार-व्यय संसदीय भाषण	५३१)
पत्रिका मुद्रण-व्यय	४८९०)
कागज पत्रिका-व्यय	२६४७)

विद्यापीठ-व्यय

विद्यापीठ वेतन	१२४२४)
केन्द्र निरीक्षण परीक्षण	२२७५)
यात्रा-व्यय	७८७)
डाक-तार-व्यय	१३९८)
कानूनी व्यय	४६५)

इन व्ययों में से तो संसदीय भाषण का व्यय ५३१) रु० शिव शर्मा को दिया खर्च स्पष्ट है। अन्य खर्चों की छानबीन होनी चाहिये। ऐसी छानबीन में वे व्यक्ति भी सामने आ जायेंगे, जो योग्यता की दृष्टि से ५० रु० के भी अधिकारी नहीं, उन्हें दो-दो तीन-तीन सौ वेतन की रकमें महासम्मेलन से दी जा रही हैं। १९५७—५८ के वर्ष में केन्द्र परीक्षण-निरीक्षण-व्यय दो हजार से बढ़कर १० हजार हो गया है। यह विद्यापीठ के पैसों को बाँटने का नया प्रयोजन निरुद्देश्य नहीं। जरा गहराई से अध्ययन करने पर इसका रहस्य छिपा नहीं रह सकता। देखना अब यह है कि उपरोक्त निवेदन और मेरी उस पर हुई टिप्पणी से सम्मेलनावसर पर सदस्यगण कुछ कर्त्तव्य पथ का निर्देशन करा सकते हैं कि नहीं। अलम्

हरिशरणानन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलर्क विष (Rabies or Hydrophobia)

कवि० गौरीलाल चानना बी. ए., वैद्य वाचस्पति

इतिहास—पागल कुत्ते के काटने से विष चढ़ जाता है, इस बात का ज्ञान संसार के सभी भागों के मनुष्यों को आज से नहीं प्रत्युत हजारों वर्षों से है। यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक डीमाक्रीटस (Democritus) जो ईस्वी सम्वत के आरम्भ से ५०० वर्ष पूर्व हुये उनकी पुस्तकों में इस रोग का उल्लेख है। रोम के प्रसिद्ध चिकित्सक औरस कार्नीलियस सेल्सस (Auras Cornelius Celcus) जो ईस्वी सम्वातारम्भ से एक शताब्दी पूर्व हुए उनकी पुस्तक De Medicina में भी इस रोग का वर्णन है।

भारतीय चिकित्सा शास्त्र के प्रमाणभूत ग्रन्थ चरक संहिता के चिकित्सा स्थान अध्याय २५ में इस रोग का वर्णन है। वहां जंगम विषों की योनि का वर्णन करते हुये लिखा है—

सर्पा कीटोन्दुरालूता वृश्चिका गृहगोधिका
जलीमा मत्स्य मण्डूकाः शलभाः सक्रकण्टकाः
श्वसिंह व्याघ्र गोमायु तरक्षु नकुलादयाः
दंष्ट्रिणोऽमी विषं तेषां दंष्ट्रोत्थं जंगमं मतम्

अर्थात् उक्त सभी जीवों के दंश से जो विष मनुष्य को चढ़ता, वह जंगम विष है।

सुश्रुत कल्प स्थान के अध्याय ६ में मूषिक कल्प के बाद ही निम्न श्लोक में अलर्क विष का वर्णन किया है—

शृगाल श्वतरक्षवृक्ष व्याघ्रा दीनां यदाऽनिलः
श्लेष्म प्रदुष्टो मुष्णाति संज्ञां संज्ञावहाश्रितः

अर्थात् गीदड़, कुत्ता, तरक्षु (तरखु=तेंदुआ), रीछ और व्याघ्र आदि (आदि शब्द से यहां बन्दर, घोड़ा, गाय आदि अन्य पशु समझना ही प्रकरण अनुसार उचित होगा) का श्लेष्म से दूषित वायु जब संज्ञावाहिनियों के आश्रित होकर स्थित होता है, तो उस-उस जन्तु की संज्ञा का नाश कर देता है।

इस श्लोक में वर्णित सम्प्राप्ति के ऐतिहासिक महत्व का विवेचन तो यथास्थान अन्यत्र किया जायगा। यहां तो केवल मात्र यही दर्शाना अभिप्रेत है, कि आयुर्वेदीय ग्रन्थों में न केवल इस रोग के नाम का ही उल्लेख है, अपितु यह भी लिखा है कि कुत्ते के अतिरिक्त अन्य पशुओं में भी यह रोग पाया जाता है।

रोग का कारण व प्रसार—

यद्यपि सुश्रुत कल्प स्थान के उपरोक्त श्लोक में यह वर्णन है, कि यह विष मनुष्य शरीर में संज्ञावाहिनियों के आश्रित रहता है और चरक के उपरोक्त उद्धरण के अनुसार पशु के दंश द्वारा यह विष मनुष्य शरीर में प्रविष्ट होता है, परन्तु इस विष का स्वरूप अथवा मूर्त रूप क्या है? इस सम्बन्ध में आयुर्वेदीय ग्रन्थों में कहीं कोई स्पष्ट उल्लेख दृष्टिगोचर नहीं होता। यदि कहीं हो तो इसे खोजकर वैद्य समाज के सम्मुख रखने का कार्य शुद्ध आयुर्वेद के विद्वानों पर छोड़ता हूँ। परन्तु आधुनिक प्रायोगिक प्रत्यक्ष साधनों से ज्ञात हुआ है, कि इस रोग का कारण विरसाणु (Virus) जाति का एक सूक्ष्म जैव होता है, जिसका नाम Formido Inexorabilis है। इस जैव की सूक्ष्मता का अनुमान पाठक इस बात से लगावें कि इसका व्यास $\frac{१}{२५०००}$ इन्च से $\frac{१}{२०००}$ इन्च के लगभग (अर्थात् $\frac{१}{२}$ माईक्रोन से २० माईक्रोन के बीच में) होता है और इसे विशेष शक्ति के अणुवीक्षण यन्त्रों के द्वारा ही देखा जा सकता है।

यह विरसाणु बावले पशु के लाला स्राव अथवा थूक में विद्यमान रहते हैं और ऐसे बावले पशु के दंश द्वारा क्षत मार्ग से मनुष्य शरीर में प्रविष्ट होते हैं। पशुओं में भी यह विष किसी अन्य बावले पशु द्वारा काटे जाने पर ही चढ़ता है और इस प्रकार के रोगाक्रान्त पशु द्वारा काटे जाने पर ही मनुष्य शरीर में प्रविष्ट होता है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है, कि किसी अन्य क्षत खरोंच अथवा फोड़ा-फुन्सी आदि के कारण कटी त्वचा स्थान पर बावले प्राणी द्वारा चाटने पर उसके लाला स्पर्श से यह विरसाणु मनुष्य शरीर में प्रविष्ट होकर रोगोत्पत्ति का कारण बन सकता है। पालतू कुत्ते रखने वालों में प्रायः ऐसा हो सकता है। ऐसी अवस्था में बिना प्रत्यक्ष दंश के भी यह रोग हो सकता है, यह बात स्मरणीय है।

सम्प्राप्ति

कुछ पाठकों के लिये सम्भव है यह बात नई हो कि शरीर में पागलपन के विष अर्थात् विरसाणु का प्रसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षत स्थान से प्रविष्ट होने वाले अन्य विषों जैसे सर्प-विष, मूषिक-विष तथा पूयोत्पादक जीवाणुओं आदि की भांति रक्त द्वारा नहीं होता अपितु इसका मार्ग अनोखा ही है। पागलपन का विष सांवेदनिक वातनाड़ियों के सहारे ऊपर चढ़ता-चढ़ता मस्तिष्क तक जा पहुँचता है। मस्तिष्क में पहुंचकर चेष्टावह नाड़ियों को उत्तेजित कर पागलपन के प्रत्यक्ष लक्षण प्रकट करता है। मस्तिष्क से फिर चेष्टावह नाड़ियों के सहारे ही नीचे उतरकर आक्रान्त प्राणी की लाला ग्रन्थियों और उनके द्वारा लाला स्राव (थूक) में आ उपस्थित होता है। इसी लाला स्राव के द्वारा ही इस विष का संचार एक प्राणी से दूसरे प्राणी में होता है।

लाला ग्रन्थियों के अतिरिक्त यह विष यदा कदा अश्रु ग्रन्थियों, स्तनग्रन्थियों एवं उपवृक्कों में भी देखा गया है, परन्तु इन ग्रन्थियों के स्रावों, रक्त अथवा शरीर के अन्य किसी स्राव में यह नहीं पाया जाता अतः रोग संचार लाला स्राव के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार से नहीं होता।

रोगोत्पत्तिकाल

इस विष के प्रत्यक्ष लक्षण विरसाणु के मस्तिष्क में पहुंचने के बाद ही उत्पन्न होते हैं। प्रायः दंश स्थान से मस्तिष्क में पहुंचने तक इसे लगभग तीन-चार सप्ताह लगते हैं। कभी-कभी दो-तीन मास अथवा वर्ष भर बाद भी लक्षण प्रकट होते देखे गये हैं। रोगोत्पत्ति काल में इतनी विभिन्नता सम्भवतः विरसाणु वृद्धि एवं उनकी सबलता सक्रियता पर निर्भर हैं।

साधारणतः दंश स्थान मस्तिष्क के जितना समीप होगा, उतना ही शीघ्र लक्षणों की उत्पत्ति होगी। जसे ग्रीवा और पैर दंशवाले दो रोगियों में ग्रीवावाले रोगी में लक्षणों की उत्पत्ति शीघ्र होगी, क्योंकि ग्रीवा से मस्तिष्क तक पहुँचने में विरसाणुओं को अपेक्षाकृत बहुत थोड़ी दूरी तय करनी पड़ती है।

विषयुक्त कुत्ते की पहचान

बावलेपन का विष ऐसा है, कि एक बार जब प्राणी आक्रान्त होता है, उसमें यदि इस रोग के लक्षण प्रकट हो जावें, तो मृत्यु अनिवार्य है। मनष्य और कुत्ते दोनों में यह बात समान रूप से लागू है। ऐसा देखा गया है, कि लक्षणोत्पति के अधिक से अधिक ६ दिन के अन्दर आक्रान्त कुत्ते की मृत्यु अवश्यम्भावी है। यह भी देखा गया है, कि लक्षणोत्पत्ति से अधिक से अधिक ४ दिन पूर्व यह विरसाणु कुत्ते की लाला में विद्यमान हो सकते हैं। अर्थात् लक्षणोत्पत्ति से ४ दिन पूर्व भी यह कुत्ता किसी मनुष्य व अन्य प्राणी को काट लें, तो उसमें यह रोग होने की सम्भावना हो सकती है। इस प्रकार रोग संचार के योग्य होने के बाद कुत्ता अधिक से अधिक १० दिन तक जीवित रह सकता है। इसलिये काटनेवाला कुत्ता काटने के पश्चात् १० दिन के भीतर न मरे, तो उसे विषमुक्त समझना चाहिये। यह विषमुक्त कुत्ते की निश्चित पहचान है। काटने से १० दिन के भीतर कुत्ता मर जावे तो उसे विषयुक्त समझें।

कुछेक वाह्य लक्षणों को कुत्ते में देखकर उसकी मृत्यु से पूर्व भी यह अनुमान किया जा सकता है, कि कुत्ता विषयुक्त है अथवा नहीं। वह लक्षण निम्न हैं।

कुत्ते में इन लक्षणों का आरम्भ उसकी बेचैनी से होता है। रोगाक्रान्त कुत्ता अपने पूर्व स्वभाव के विरुद्ध जरा सी छेड़छाड़ से काटने को झपटता है। यहां तक कि वह इधर-उधर पड़े लकड़ी के टुकड़ों, चीथड़ों व तिनकों को काटता व चबाता फिरता है। उसके आंख व नाक की श्लेष्मिक कला शोथयुक्त हो जाती है और आखें लाल हो जाती है। १०–१२ घण्टे के अन्दर कुत्ते की भूख बन्द हो जाती है और उसकी बेचैनी उत्तरोत्तर बढ़ती चली जाती है। अब यह एक स्थान पर बैठ नहीं सकता और निरुद्देश्य इधर-उधर भागने लगता है। जहां तक उसकी दृष्टि जाती है, वहां तक दिखाई देने वाले सभी जीव-जन्तुओं को काटने के लिये उनका पीछा करता है। वह निरन्तर भोंकने लगता है। उसकी आवाज भारी हो जाती है और भोंकने के अन्त में एक लम्बी चीख सुनाई देती है। उस कुत्ते के मुख से अधिक मात्रा में लाला स्राव होने लगता है। निचला जबड़ा पक्षाघात के कारण ढीला पड़ जाता है और हिलता रहता है। जबड़ा हिलता रहने के कारण लाला स्राव झाग का रूप धारण कर मुख से बाहर निकलने लगता है। धीरे-धीरे श्वास लेने में और निगलने में उसे कष्ट होने लगता है और जल संत्रास भी होता है। निगलने के कष्ट के कारण लाला स्राव की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मात्रा और भी बढ़ जाती है और वह अधिक झाग के रूप में मुख से निकलती रहती है। प्राय: पिछली टांगों में पक्षाघात हो जाता है, जिससे वह पिछली टांगें घसीटकर चलने लगता है। अन्त में सारे शरीर में पक्षाघात हो जाता है और २ से ६ दिन के भीतर उसकी मृत्यु हो जाती है।

मनुष्य में लक्षण

प्रथम अवस्था—मनुष्य में इस रोग के लक्षण तीन अवस्थाओं में प्रकट होते हैं। इसका आरम्भ दंश स्थान से होता है। दंश स्थान से पीड़ा चारों ओर फैलती हुई मालूम पड़ती है तथा वहां सुन्नता और चुनचुनाहट होती है। जैसे-जैसे विष का प्रभाव मस्तिष्क पर अधिक होता जाता है, वैसे-वैसे एक-एक करके अन्य शारीरिक लक्षण भी प्रकट होने लगते हैं। पहले स्वभाव में चिड़चिड़ापन आता है, आवाज भारी हो जाती है और निगलने में कुछ कठिनाई अनुभव होने लगती है।

दूसरी अवस्था—मस्तिष्क के विष द्वारा पूर्णतया प्रभावित हो जाने पर रोग की दूसरी अवस्था आरम्भ होती है। यह अवस्था लक्षण आरम्भ होने के एक दो दिन के अन्दर ही आ जाती है। इस अवस्था में नाड़ी संस्थान के विक्षुब्ध होने के चिन्ह प्रकट होते हैं। चिड़चिड़ापन बढ़ जाता है। रोगी बेचैन हो जाता है, एक स्थान पर बैठ नहीं सकता। इधर उधर घूमता फिरता है, असम्बद्ध वार्तालाप करता है। उसका चेहरा भयभीत सा दिखाई देता है, अक्षिगोलक गतिमान रहते हैं। नेत्रों में रूक्षता आ जाती है।

पहले निगलने में जो कठिनाई होती थी, वह अकस्मात बढ़ जाती है। इसके दो कारण होते हैं, एक तो निगलने सम्बन्धी मांसपेशियों का पक्षाघात और दूसरा मुख्य कारण है निगलने वाले मस्तिष्क केन्द्र की प्रत्यावर्तित उत्तेजनात्मकता इतनी बढ़ जाती है, कि खाने-पीने की किसी वस्तु की दृष्टि मात्र अथवा विचार मात्र से ही निगलने की मांसपेशियों में आक्षेप होता है, जो निगलने की क्रिया को एकदम अवरुद्ध कर देता है। जल के सम्बन्ध में यह प्रतिक्रिया विशेष रूप से अधिक होती है। जल की दृष्टि मात्र से रोगी भय खाने लगता है। जलसंत्रास इस रोग का मुख्य लक्षण है। अंग्रेजी में इस रोग का नाम Hydrophobia जलसंत्रास का ही शब्दानुवाद है।

गले की मांसपेशियों के आक्षेप से रोगी थूक भी नहीं निगल सकता तथा उसकी आवाज भी बैठ जाती है।

धीरे-धीरे नाड़ी संस्थान की उत्तेजनात्मकता मस्तिष्क के सभी केन्द्रों में फैल जाती है, जिससे समस्त शरीर में कम्पन व आक्षेप होने लगते हैं।

कभी-कभी श्वास केन्द्र की उत्तेजना से श्वास प्रश्वास क्रिया को सम्पन्न करनेवाली मांसपेशियों में इतने तीव्र आक्षेप होते हैं, कि श्वास अवरुद्ध हो जाने से रोगी की मृत्यु हो जाती है।

तीसरी अवस्था—कभी कभी उत्तेजनात्मकता की अवस्था का अन्त पक्षाघात में होता है। रोगी अचेत हो जाता है और उसकी मृत्यु शान्तिपूर्वक होती है। मृत्यु प्राय: हृदयावरोध व श्वासावरोध से होती है।

शारीरिक परीक्षा

पाठक यह तो पढ़ ही चुके हैं कि अलर्क विष मस्तिष्क में पहुंचकर ही लक्षण उत्पन्न करता है। इस विष के प्रभाव से लघु एवं बृहत मस्तिष्क के धूसर वलकल की कोषाओं में एक विशेष प्रकार के कण उत्पन्न हो जाते हैं, जिन्हें सब से प्रथम नेगरी नामक इटैलियन चिकित्सक ने १९०३ में देखा था अत: इन्हें (Negri bodies) नेगरी कणिका कहते हैं। यह बहुत सूक्ष्म वस्तु है जिसका व्यास ½ से ३० माइक्रोन (१ माईक्रोन १ मीटर का दस लाखवां भाग होता है) होता है। यह अण्डाकार अथवा लम्बूतरी शक्ल की होती है। यह नेगरी कणिका विशेष रूप से लघु मस्तिष्क के वलकल के सुराही आकार कोषाओं (Purkinje cells) और मस्तिष्क के अधोभाग के एक उभार जिसे (Hippocampus) हिपो कैम्पस कहते हैं, अधिकतर इन भागों में मिलती है। इन नेगरी कणिकाओं की उपस्थिति निश्चित रूप से अलर्क विष का चिन्ह है। परन्तु कभी-कभी अलर्क विष होने पर भी यह मस्तिष्क में उपस्थित नहीं होतीं। ९७ प्रतिशत रुग्ण कुत्तों के मस्तिष्क में यह नेगरी कणिका पाई गई हैं।

जब मस्तिष्क की उक्त कोषाओं में नेगरी कणिका न हों, तो उस मस्तिष्क का कुछ अंश चूहे के मस्तिष्क में प्रविष्ट करके अलर्क विष का विद्यमानता का निश्चयात्मक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। यदि मस्तिष्कान्तर्गत रोग का कारण विद्यमान हो, तो चूहों में रोग की उत्पत्ति हो जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोगी के रक्त, मूत्र व शीर्षसुषुम्ना तरल में कोई विकृति सूचक अन्तर नहीं दिखाई देता।

विभेदक निदान

धनुस्तम्भ (Tetanus) नामक रोग में भी नाड़ी संस्थान उत्तेजित होता है, अतः उसमें भी अलर्क विष से मिलते-जुलते लक्षण मिलते हैं, परन्तु कुत्ता काटने के इतिहास के आधार पर दोनों में भेद करना कठिन नहीं।

चिकित्सा

यद्यपि काटनेवाला प्रत्येक कुत्ता बावला नहीं होता, परन्तु बावले कुत्ते के विष के लक्षण प्रकट हो जाने के बाद जीवन बचना सम्भव नहीं, अतः सावधानी के रूप में प्रत्येक काटने वाले कुत्ते को बावला समझ कर ही उपचार आरम्भ कर देना चाहिये। यदि काटने से १० दिन के भीतर कुत्ते की मृत्यु न हो, तो उपचार बीच में बन्द किया जा सकता है।

ग्रीवा, कपाल, कन्धा, छाती आदि मस्तिष्क व हृदय के समीपस्थ स्थानों के दंशों में तो तुरन्त ही प्रतिबन्धक सूची वेध लगवाना आरम्भ कर देना चाहिये।

बावले कुत्ते द्वारा काटे प्रत्येक मनुष्य में अलर्क विष का रोग नहीं होता। केवल २०–२५ प्रतिशत में यह होता है। परन्तु जब रोग के लक्षण उत्पन्न हो जायें, तो फिर रोगी की प्राण-रक्षा सम्भव नहीं।

अलर्क विष की चिकित्सा के तीन अंग हैं। (१) तात्कालिक, (२) प्रतिबन्धक (३) शमन।

तात्कालिक चिकित्सा—तात्कालिक चिकित्सा का अभिप्राय है यथा सम्भव विष को उसी समय समाप्त कर देना, शरीर में विष-प्रसार को रोकना तथा साधारण व्रणोपचार। एतदर्थ निम्न उपाय करना चाहिये।

१. कुत्ता काटते ही दंश स्थान से कुछ ऊपर कसकर किसी बन्धन से बांध देना चाहिये, जिससे व्रण में से विष रक्त के साथ बहकर बाहर निकल जाय।

२. कोई उत्तम झागदार साबुन लेकर उससे व्रण को धोवें और ऊपर से पानी की धार डाल कर व्रण को शुद्ध करें। पानी की धार का अभिप्राय भी विष को बहाकर बाहर निकालना है। पश्चात् व्रण को सुखाकर एक सलाई की नोक पर रूई का फोहा लपेटकर उसके द्वारा भाग अथवा कोना कार्बोलिकाम्ल से बचा न रहे, यह सावधानी रहे। कार्बोलिकाम्ल लगाने से व्रण देखते-देखते सफेद पड़ जायगा। पश्चात स्पिरिट के फोये से उसे साफ करके साधारण विसंक्रमण रीति से पट्टी कर दें।

प्रतिबन्धक चिकित्सा

वास्तव में अलर्क विष चिकित्सा का यही अंग सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं विश्वसनीय है। पाठक जानते होंगे, कि अलर्क विष के सूचीवेध बड़े-बड़े नगरों के प्रायः सभी सरकारी हस्पतालों में थोड़ा मूल्य लेकर अथवा बहुत निर्धन रोगियों को बिना मूल्य ही लगाये जाते हैं। बाजार में यह सूचीवेध मूल्य से नहीं मिल सकते। यह सूचीवेध लगवा लेने पर अलर्क विष रोग का आक्रमण नहीं हो सकता। यदि होता भी है, तो बहुत ही कम रोगियों में (लगभग एक प्रतिशत में)।

यहां पर आधुनिक प्रतिबन्धक चिकित्सा के आधारभूत सिद्धान्त का संक्षिप्त उल्लेख करना अनुचित न होगा।

शरीर के अन्दर जब कोई रोगोत्पादक विरसाणु प्रवेश करता है, तो उसका मुकाबला करने के लिये शरीर में प्रति विष की उत्पत्ति होती है। यदि संक्रमण प्रतिविष की अपेक्षा बलवान हो तो वह रोग पैदा करने में सफल हो जाता है। परन्तु संक्रमण हल्का हो, तो प्रतिविष उसे वहीं समाप्त कर देता है और शरीर में रोगसूचक कोई बाह्य लक्षण उत्पन्न नहीं होते। यही सिद्धान्त आधुनिक प्रतिबन्धक सूचीवेध चिकित्सा (Vaccine therapy) का आधार है। भिन्न-भिन्न रोगों के मृत अथवा दुर्बल रोगोत्पादक जीवाणुओं के घोल की उत्तरोत्तर वृद्ध मात्रा में सूचीवेध देकर शरीर में प्रतिविष की मात्रा इतनी अधिक कर दी जाती है, कि बाहर से वीरसाणुओं के तीव्र आक्रमण से भी शरीर में रोग उत्पन्न नहीं हो पाता।

अलर्क विष का सूचीवेध भी अलर्क विष के मृत अथवा अशक्त विरसाणुओं से बनता है। दूसरे शब्दों में वही विष जो कुत्ता काटने से शरीर में प्रविष्ट हुआ है (कम मात्रा में) कृत्रिम विधि से शरीर में प्रविष्ट किया जाता है और अलर्क विष के रोगी की प्राण-रक्षा का यही एकमात्र ठोस उपाय है।

ठीक यही बात सुश्रुत के निम्न श्लोकों में कही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुप्येत स्वयं विषं यस्य न स जीवति मानवः,
तस्मात् प्रकोपयेदाशु स्वयं यावन्न कुप्यति।
—सु० क० अ० ६

अर्थात् अलर्क विष के जिस रोगी का विष स्वयं प्रकुपित हो उसके प्राण बचना सम्भव नहीं, इसलिये विष के स्वतः कुपित होने से पूर्व वैद्य को औषधियों द्वारा उस विष को शीघ्र ही प्रकुपित करना चाहिये।

यहीं पर बस नहीं, प्रत्युत सुश्रुत जी ने विष कोप करण के योगों का भी निम्न श्लोकों में वर्णन किया है—

मूलस्य शरपुंखायाः कर्ष धतूर कार्द्धिकम्
तंडुलोदक मादाय पेषयेत तण्डुलै सह
उन्मत्तकस्य पत्रैस्तु संवेष्ट्य पूपकं पचेत्
खादेदौषध काले तदलर्क विषदूषितः
इत्यादि—सु० क० अ० ६

शरपुंखा मूल, धतूरा मूल एवं चावल की लुगदी को धतूर पत्रों में लपेट कर पुटपाक तैयार कर उसके सेवन का विधान दिया है। पश्चात विष कोप के कारण कोई विकार हो तो उसके शान्त होने पर शालि पष्टिक भात गरम दूध के साथ सेवन करना चाहिये। आगे यह भी लिखा हैं, कि अलर्क विष की पूर्ण शान्ति के लिये इस योग को आधी मात्रा में तीसरे व पांचवे दिन पुनः इसी विधि से सेवन करना चाहिये।

ऐतिहासिक महत्व का विषय

सुश्रुतोक्त इस चिकित्सा विधि का आधुनिक सूचीवेध चिकित्सा की तुलना में क्या महत्व है? यह तो विद्वानों एवं अनुसन्धानकर्ताओं द्वारा प्रयोग करके देखने की बात है। परन्तु एक बात स्पष्ट है, कि उक्त लेख ऐसा नहीं जिसे केवल अनुमान के आधार पर लिखा कहा जा सके। यह तो प्रयोगों द्वारा अनुभव में लाकर लिखी गई बात मालूम होती है। सुश्रुत को इस बात का ज्ञान कैसे हुआ कि जिस अलर्क विष के स्वयं प्रकुपित होने पर रोगी की प्राण-रक्षा सम्भव नहीं, उसे यदि कृत्रिम विधि से कुपित कर दिया जावे तो रोगी बच सकता है? इस परिणाम पर पहुँचने के लिये उन्होंने कौन सी प्रयोग-विधि अपनाई होगी? बताना कठिन है। आज के युग में चिकित्सा की दृष्टि से भले ही यह बात अधिक महत्व की न हो, पर क्योंकि इससे प्राचीन भारतीय चिकित्सा विज्ञान के विकास की पृष्ठभूमि पर प्रकाश पड़ सकता है। अतः चिकित्सा विज्ञान के इतिहास में रुचि रखने वालों का ध्यान इस ओर आकृष्ट करते हुये हम अपने पूर्व प्रसंग पर आते हैं।

अलर्क विष प्रतिबन्धक आधुनिक सूचीवेध चिकित्सा

सर्व प्रथम फ्रांसीसी वैज्ञानिक लुई पाश्च्युर (Louis Pastuer) ने १८८१ में प्रयोगों द्वारा यह मालूम किया कि अलर्क विष पीड़ित एक पशु के केन्द्रीय नाड़ीमण्डल के टुकड़ों का घोल तैयार कर उसे दूसरे पशु के मस्तिष्कावरण के नीचे सूचीवेध द्वारा प्रविष्ट कराया जाय, तो उसमें भी उक्त रोग हो जाता है। उसने यह भी देखा, कि इस प्रकार उत्तरोत्तर एक पशु से दूसरे और दूसरे से तीसरे में अलर्क विष को प्रविष्ट करते जांय तो उसकी शक्ति एवं रोगोत्पत्ति काल दोनों में कमी होती चली जाती है। एक अवस्था ऐसी आ जाती है, जब एक खरगोश को उक्त घोल का मस्तिष्कावरणाधः सूचीवेध दें तो ६–७ दिन में उसकी मृत्यु हो जाती है। दूसरी ओर इस विष की शक्ति इतनी कम हो चुकी होती है, कि अधस्त्वक् सूचीवेध देने पर यह रोगोत्पत्ति में समर्थ नहीं होता। अलर्क विरसाणु की इस अवस्था को पाश्च्युर ने स्थिर विरस (Fixed virus) का नाम दिया, क्योंकि इससे आगे यदि विरस को उपरोक्त क्रम से एक पशु के मस्तिष्क से दूसरे में परिवर्तित करते जायें, तो विरस की शक्ति में और कमी नहीं होती।

इस स्थिर विरस से अलर्क विष सूचीवेध भिन्न-भिन्न विधियों से तैयार किये जाते हैं। पाश्च्युर की विधि के अनुसार जीवित स्थिर विरस की शक्ति कम करके उसे प्रयुक्त किया जाता है। आजकल हस्पतालों में प्रायः सेम्पल की विधि से तैयार किये सूचीवेध (Semple's carbolised vaccine) प्रयोग किये जारहे हैं। यह सूचीवेध उपरोक्त स्थिर विरस से रुग्ण किये गये भेड़ के मस्तिष्क का ५ प्रतिशत कार्बोलिकाम्ल में घोल (Suspension) बना लेने से तैयार होता है। इस प्रकार बनी रक्त रस (वैक्सीन) में विरस मृत रूप में होता है। बालकों में प्रायः २ सी.सी, बड़ों में ५ सी.सी और अधिक तीव्र संक्रमण होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति सत्ता का संचय और उपयोग

परमाणुओं के खण्डन से उसके भीतर निहित प्रकृति के तीन रूप दृष्टिगोचर हुए सत, रज और तम। वैज्ञानिकों ने उनका नाम रखा है प्रोटोन, एलेक्ट्रोन, न्यूट्रोन। हमारे तत्व दर्शियों ने प्रकृति को प्रत्यक्ष नहीं देखा था, उन्होंने इसे अनुमान से ही जाना था। किन्तु इस समय के प्रयोग वाद ने प्रकृति के इस निगूढ़ रूप को अपने प्रयोगिक बल से प्रत्यक्ष कर लिया। प्रकृति के यह सत, रज और तम रूप, अपने गुण, स्वभाव से एक दूसरे से बिलकुल ही भिन्न हैं। यह परमाणुओं से भी अति सूक्ष्म होने के कारण इन्हें प्रपराणु संज्ञा दी गई है। हम किसी पिछले लेख में बतला चुके हैं कि वैज्ञानिकों ने परमाणु को जब तोड़ा तो उसके टूटने से भयंकर शक्ति के रूप में प्रकृति प्रकट हुई, इसी प्रकृति को वैज्ञानिकों ने अपने बस में करके परमाणु बम बना डाला। आज वह परमाणु बम रूस, अमेरिका और इंगलैंड के पास है जो संसार को भयभीत कर रहे हैं।

देखा गया है कि जब परमाणु टूटता है तो उस परमाणु से सत, रज पराणु उसके भीतर से निकल कर भागते हैं उससे महाभयंकर ज्वाला उत्पन्न होती है और उनके भागने के समय उन प्रकृति के पराणुओं से एक और शक्ति रश्मि के रूप में निकलती है वह रश्मि बड़ी प्राण घातक होती है इसका नाम गमय (गामा) रश्मि है। प्रयोगों से देखा गया है कि इन गमय रश्मियों के सामने यदि किसी तत्व के परमाणु रख दिये जांय तो वह परमाणु इन रश्मियों को सोख लेते हैं और फिर वह तत्व अपने शरीर से उन रश्मियों को त्यागते रहते हैं, जैसे रश्मिविकीरक तत्व रश्मि त्यागते हैं। यह रश्मियां प्रकृति के किस रूप से निर्गत होती हैं इसको मालूम कर लिया गया है। ज्ञात हुआ है कि यह रश्मियां सत पराणुओं के भीतर से उत्पन्न होती है। वैज्ञानिकों ने जब परमाणु को तोड़ लिया तो उन्हें यह आशा बंध गई कि वह दिन दूर नहीं जब हम प्रकृति के इस रूप पर भी अधिकार प्राप्त कर लगे। अभी ताजी सूचना आई है कि वैज्ञानिक सत पराणुओं को संचय कर उसे अपने आधीन करने में भी समर्थ हो गये हैं।

३ जनवरी की शिकागो की सूचना है कि कर्कट व्रण सम्बन्धी अनुसन्धान कार्यों के लिये शिकागो विश्वविद्यालय स्थित एनरिको फेर्मी इन्स्टीट्यूट को परमाणु विखण्डक भट्ठी से एक ऐसी पेंसिल के आकार की सत प्रपराणु समूह की ट्यूब प्राप्त हुई है जो गमय रश्मि का विसर्जन करती है। इसे ४५ करोड़ के विद्युत वोल्ट की परमाणु भंजनी भट्ठी से निकले सत पराणु समूह को एक संरक्षित पेंसिल के अन्दर बन्द किया गया है, इससे प्रबल गमय रश्मि पुंज निकलता है। किन्तु यह गमय रश्मि पुंज महान घातक है इसीलिये इसे रश्मि रोधी ६० फुट लम्बे और ३० फुट चौड़े कंक्रीट के सुरक्षित कमरे में बन्द रखा गया है, वह कमरा चार लेंसों से युक्त टेलीविजन केमरे से सुसज्जित है। इस संस्थान में अनुसन्धान के लिये निरीक्षकों को इस रश्मि से सुरक्षित रखने के बड़े भारी साधन किये गये हैं। इस सत पराणु पूर्ण पेंसिल से गमय रश्मि का प्रबल प्रवाह सदा निकलता रहता है। कर्कटव्रण की कोषाओं को किसी तरल द्रव में रख कर उस पर इस पराणु पेंसिल से निर्गत होने वाली गमय रश्मि पुंज को इस पर डाल कर उसके द्वारा उन कोषाओं को रश्मिपूरित कर फिर उन कोषाओं को किसी प्राणी के शरीर में प्रवेश करा कर उसके परिणाम को देखेंगे। इस गमय रश्मि जनक सत पराणु समूह को पेंसिल में बन्द कर के वैज्ञानिकों ने अनुसन्धान कार्य में महान् क्रांति उत्पन्न कर दी है। विज्ञान संसार में आश्चर्यजनक उन्नति कर रहा है हमारे वैद्य उसी दकियानूसी जाल में फंसे दिखाई देते हैं।

विद्युतमशीनी मस्तिष्क का आविष्कार

विज्ञानोन्नति कितनी द्रुत गति से हो रही है इन समाचारों को पढ़ कर आश्चर्य होता है। गणित के बड़े जटिल प्रश्न जिन्हें मनुष्य का मस्तिष्क ही हल कर सकता था अर्थात् यह कार्य बुद्धि विशिष्ट समझे जाते थे ऐसे बुद्धि विशिष्ट चमत्कृत कार्य मशीन से भी लिये जा सकेंगे यह किसी को स्वप्न में भी आशा नहीं थी। उस असम्भव को वैज्ञानिकों ने सम्भव कर दिखलाया। मनुष्य अपनी चमत्कृत बुद्धि कौशल से विद्युत शक्ति की सहायता से एक ऐसी मशीन बनाने में समर्थ हो गया है जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गणित के बड़े-बड़े जटिल प्रश्नों को मानवी बुद्धि वत् हल कर डालती है। जिन गणित के प्रश्नों को गणितज्ञ विशारद एक एक महीना श्रम करके तब कहीं उसे हल कर पाते थे ऐसे प्रश्नों को यह मशीन दो मिनट से पूर्व ही हल करके और टाइप करके सामने रख देती है।

इस मशीन का आविष्कार एक ओर अमेरिका के वैज्ञानिकों ने किया तो दूसरी ओर रूस के वैज्ञानिकों ने। रूस ने उसका नाम एम. एन. १० रखा है, रूस की यह विद्युती मशीन गणित के एक साथ छः स्थानों के समीकरणों को कुछ सेकेन्डों में ही हल कर देती है। संसार किस तेजी से आगे बढ़ रहा है किन्तु हमारा भारतवर्ष वही पुरानी दुनिया के ख्वाब देखता रहता है।

चूहों से रक्षा के साधन

चूहे जितनी अधिक हानि जनसमाज के सामान कीकरते है इतनी शायद अन्य विधि से नहीं। इससे भिन्न यह प्लेग जैसी भयंकर बीमारी के भी कारण जाने गये। प्रत्येक समझदार व्यक्ति जहां तक हो अपने घरों से इन्हें दूर रखे तो अच्छा है। हमारी राष्ट्रीय सरकार ने चूहे मारने की एक दवाई का प्रतिमान प्रकाशित किया है जन समाज उससे लाभ उठावे। हम जन समाज की लाभ की दृष्टि से उस योग के नुस्खे को दे रहे हैं—जिंक सल्फ़ाइड ४ भाग, पोटाशियम एन्टी मेनिल १ भाग दोनों को मिला कर बराबर के आटे में सान कर इसमें जरा सा मीठा मिलाकर बेर बराबर गोली बनाकर घर में जहां तहां रात को रख दें, इन गोलियों को खाने से चूहे मर जाते हैं।

वाटिका के पौधों को हानिकर कीटों से बचाव

फूलों फलों के बगीचों में अनेक प्रकार के ऐसे कीड़े लग जाते हैं जो उनके पत्ते खाकर वृक्षों को नष्टकर डालते हैं उनसे बचाव के लिये सिस्टोक्स या मेटासाइड नामक फास्फरस के ऐसे योगिक बनाये गये हैं जो इन कीटों को समूल नष्ट कर डालते हैं। इन दोनों में से कोई एक को लेकर उसे पीस कर वृक्षों के पत्ते पर छिड़कने से जो कीट उन पत्तों को खाने के लिये जब आते है इसके प्रभाव से मर जाते हैं। वृक्ष की जड़ों पर छिड़कने से दीमक तक मर जाती है।

अनाधारी चित्रकला से रोगनिदान

मास्को की सूचना है कि वहाँ के वैज्ञानिकों ने अनाधारी चित्रण (टेलीवीजन) यन्त्र में ऐसा प्रबन्ध किया है कि मनुष्य के मस्तिष्क में कहीं पर केंसर या रसौली आदि विद्यमान हो तो इस यन्त्र से उसको प्रत्यक्षवत् देख लेने में समर्थ हो गये हैं अनाधारी चित्रण के इस यन्त्र में ऐसा सुधार किया गया है कि वह यन्त्र के प्लेट पर मस्तिष्क को स्पष्ट कर देता है। मस्तिष्क की रचना को जब इस तरह बिना कपाल कोटर को काटे देखा जा सकता है तो वह समय दूर नहीं जब मस्तिष्क के रोगों की चिकित्सा भी सुलभ हो जायगी।

[शेष पृष्ठ ६१ का]

की अवस्थामें १०सी.सी तक की मात्रामें इसके सूचीवेध दिये जाते हैं। कुत्ते में विरस की तीव्रता के अनुमान के आधार पर रोगी के लिये ७ अथवा १४ अधस्त्वक सूचीवेधों का कोर्स निश्चित किया जाता है। सूचीवेध प्रायः पेट में नाभि के चारों ओर लगाये जाते हैं। पेट में त्वचा ढीली रहने के कारण रोगी को प्रतिदिन सूचीवेध लगवाने पर भी कम कष्ट होता है, इसलिये प्रायः यह स्थान इस प्रयोजन के लिये चुना जाता है।

शमन चिकित्सा

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अलर्क विष के लक्षण प्रकट हो जाने पर रोगी की मृत्यु अवश्यम्भावी है अतः शमन चिकित्सा से यहां अभिप्राय यथासम्भव रोगी को तीव्र आक्षेपों से होने वाले कष्ट को कम करना मात्र है, मृत्यु टालना नहीं। एतदर्थ आधुनिक शामक एवं निद्राकर, रुजाहर औषधियों का प्रयोग पूरी मात्रा में किया जाता है। क्लोरोफार्म सुंघाना, मार्फिया (अहिफेन सत्व) के सूचीवेध, हायोसीन हाईडोब्रोमाईड (खुरासानी अजवायन सत्व) के सूचीवेध अथवा पोटाशियम ब्रोमाईड व क्लोरल हाईड्रेट आदि दवाओं को मुख द्वारा सेवन कराया जाता है। आयुर्वेदिक औषधियों में से धतूरे, भांग, अहिफेन और खुरासानी अजवायन के योगों का सेवन कराया जा सकता है।

CC-0. In Public Domain: Gurukul Kangri Collection, Haridwar

आ० महा सम्मेलन विधान की मिट्टी पलीद

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह तो समस्त सदस्यों को ज्ञात हो गया होगा, कि अ० भा० आ० म० सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन की तिथियां ४-५-६ मई १९५८ स्थिर हुई है। इस वार्षिक अधिवेशन का स्थान दिल्ली में २८ नवम्बर १९५७ की स्थायी समिति के अधिवेशन में बहुमत से निश्चित किया गया था।

वार्षिक सम्मेलन विधान के अनुसार कब होना चाहिये ?

महासम्मेलन का आर्थिक वर्ष १ नवम्बर से आरम्भ हुआ करता है और महासम्मेलन का हिसाब-किताब ३१ अक्टूबर को बन्द हो जाता है। फिर नये साल में नये सिरे से चालू होता है। संस्था की इसी अर्थ-व्यवस्था को सन्मुख रख कर विधान बनाया गया था। संसार की कोई भी संस्था या राज्य जो जनता के बहुमत से चलाये जाते हैं, विधान का उल्लंघन नहीं करते। महासम्मेलन विधान की धारा १६ ग-१ में लिखा है :—

"प्रधान-मन्त्री अग्रिम वर्ष के लिये आय-व्यय का अनुमानिक हिसाब तैयार करके स्थायी समिति में स्वीकृति के लिये रखेंगे। यदि वार्षिक अधिवेशन न हो, तो स्थायी समिति की स्वीकृति ही अन्तिम निर्णय समझा जायगा।"

जनता के बहुमत से संसार की जितनी भी संस्थायें चलने वाली या राज्य चल रहे हैं, सबों को आर्थिक वर्ष के अन्त में नये वर्ष के खर्चा के लिये आनुमानिक आय-व्यय का बजट अवश्य पेश करना पड़ता है, ऐसा जन सभा विधान का नियम है। हमारी भारतीय सरकार का आर्थिक वर्ष ३१ मार्च को समाप्त होता है। इसीलिये अगले वर्ष के व्यय के लिये प्रतिवर्ष मार्च में लोक-सभा का अधिवेशन अवश्य होता है और वहां आनुमानिक आय-व्यय पेश करके जब तक वह स्वीकृत नहीं करा लेते, तब तक नये वर्ष में वह कुछ भी व्यय नहीं कर सकते। किन्तु, यहां महासम्मेलन का बाबा आदम निराला है।

महासम्मेलन में जब से शिव शर्मा सर्वेसर्वा बना प्रतिवर्ष आनुमानिक बजट कभी समय पर रखकर पास नहीं कराये गये। हम पिछले वर्षों की अनियमितताओं की चर्चा न कर यहां केवल ताजी घटना ही सामने रख रहे हैं—जब कि कहते हैं, उसने एक नये विधान के ज्ञाता को सम्मेलन प्रधान पद पर दूसरी बार आरूढ़ किया है। इस नये प्रधान की वैधानिक स्थिति को भी देखना है।

अ० भा० आ० म० सम्मेलन का जो विधान बनाया गया है, उक्त आर्थिक वर्ष के समय को देखकर उसके अनुसार ही नये चुनाव, वार्षिक अधिवेशन आदि का समय, विधान में स्थिर किया गया है। यथा —अखिल भारतीय आयुर्वेद सम्मेलन विधान की धारा १२—

स्थायी समिति

च. सभापति का चुनाव इसी नियमावली की धारा ३७-३८ के अनुसार सामान्यतः प्रत्येक वर्ष अक्टूबर मास में हुआ करेगा।

महासम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन

धारा १६ (क)—महासम्मेलन का साधारण वार्षिक अधिवेशन प्रचलित वर्ष के अन्दर एक बार हुआ करेगा।

धारा २० (घ)—साधारणतया वार्षिक अधिवेशन प्रतिवर्ष दिसम्बर मास में हुआ करेगा। यदि किसी पार्वत्य प्रदेश में अधिवेशन हो तो वह जून से अगस्त के महीनों में होगा।

धारा ३७— **सभापति-निर्वाचन**

आ० म० सम्मेलन तथा विद्यापीठ के प्रधानों का चुनाव वार्षिक अधिवेशन से साधारणतया दो मास पूर्व हुआ करेगा।

उक्त विधान की धाराओं को देखने से स्पष्ट होता है, कि साल समाप्ति के पूर्व अक्टूबर के महीने में स्थायी समिति का अधिवेशन होना जरूरी है और इसी महीने में सभापति का चुनाव भी निश्चित किया गया है। क्योंकि विधान के अनुसार वार्षिक अधिवेशन उसी प्रचलित साल के अन्दर करना आवश्यक है। इसीलिये यदि अक्टूबर में प्रधान का चुनाव हो, तभी दिसम्बर के अन्त तक वार्षिक सम्मेलन हो सकता है। किन्तु, महासम्मेलन के विद्यमान पदाधिकारी विधान को ताक पर रखकर जब जी में आया आनुमानिक आय-व्यय बजट बनाते व रखते हैं और जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें सुविधा होती है तब वार्षिक सम्मेलन बुलाते हैं बिना आनुमानिक आय-व्यय बजट स्वीकृत कराये नये वर्ष के व्यय बिना स्वीकृति के करते चले आते हैं। वैद्य-समाज विधान के ज्ञान से बहुत ही कोरा है, इसीलिये इन पदाधिकारियों की मनमानी खूब चलती रहती है। इसी २८ नवम्बर के दिल्ली-अधिवेशन पत्र संख्या ६ के अजेण्डा का विषय था :—

"अ० भा० आ० म० सम्मेलन और विद्यापीठ का १ नवम्बर १९५७ से ३१ अक्टूबर १९५८ तक के आनुमानिक आय-व्यय बजट की स्वीकृति। इसके लिये उसे पेश किया गया। विधान की धारा १६ ग—१ के अनुसार—

"प्रधान मन्त्री अग्रिम वर्ष के लिये आय-व्यय का आनुमानिक हिसाब तैयार करके स्थायी समिति में स्वीकृति के लिये रखेंगे। तदनन्तर जानकारी के लिये एवं अन्तिम स्वीकृति के लिये उसे वार्षिक अधिवेशन में उपस्थित किया जायगा। यदि अधिवेशन न हो, तो स्थायी समिति की स्वीकृति ही अन्तिम मानी या समझी जायगी।"

इस विधान की धारा के अनुसार वह आनुमानिक आय-व्यय बजट उसी स्थायी समिति के अधिवेशन में स्वीकृत होना चाहिये था। उस स्थायी समिति के अधिवेशन के प्रधान पं० अनन्त शर्मा त्रिपाठी जी थे। उनकी प्रधानता में वहां निम्न प्रस्ताव पेश कर निश्चय किया जाता है :—

अ० भा० आ० म० सम्मेलन एवं नि० भा० आ० विद्यापीठ के सन् १९५७—५८ वर्षीय प्रस्तावित आनुमानिक आय-व्यय पत्रों को स्वीकार करने का अधिकार श्री सम्मेलनाध्यक्ष को दिया जाय। इस आनुमानिक आय-व्यय पत्र को आगामी पत्रिका में प्रकाशित किया जायगा। उस पर सदस्य अपनी सम्मति सम्मेलनाध्यक्ष के पास भेजें। निरीक्षण के बाद अध्यक्ष आनुमानिक आय-व्यय पत्र को स्वीकार करें। देखो स० पत्रिका, जनवरी १९५८, पृष्ठ २७—२८। बस, इस अधिवेशन में बजट पेश नहीं किया गया। बिना कारण स्थायी समिति का यह अधिकार छीन कर आम सदस्यों को सम्मति देने का अधिकार दे दिया गया।

विधान में यह बात कहां लिखी हुई है, कि आनुमानिक आय-व्यय बजट को स्वीकार करने का अधिकार प्रधान को भी होगा। प्रधान का आनुमानिक आय-व्यय बजट से क्या सम्बन्ध ? खर्च तो अगले वर्ष १ नवम्बर से आरम्भ होना है, उसकी स्वीकृति तो तत्क्षण ही होनी चाहिये थी। क्योंकि २८ दिन तो नये वर्ष के गुजर गये थे और बिना स्वीकृति के ही इतने दिन से पदाधिकारी जन-समाज का रुपया व्यय कर रहे थे। तिस पर नया प्रस्ताव रख कर इस स्वीकृति को और आगे टाल दिया गया और जिसको बजट स्वीकृत करने का अधिकार नहीं, उसको अधिकार दे दिया। क्या अजब अन्धेर खाता है।

सम्मेलन सदस्यों को स्मरण कराना चाहता हूँ, कि इस अधिवेशन में अजेण्डा के ११ विषयों में से दो ही विषय महत्वपूर्ण थे—(१) आनुमानिक आय-व्यय पत्र पास करना (२) वार्षिक अधिवेशन का स्थान निश्चित करना।

आनुमानिक आय-व्यय के मद में इस बार जो रकमें बढ़ाई गई थीं, उन पर इस बार कुछ सदस्य—जो महासम्मेलन के आय-व्यय को देख रहे थे—वह आपत्ति उठा सकते थे। इससे बचने के लिये यह चाल चली गई, कि वहां बजट पेश ही न करके स्थायी समिति के अधिकार को छीनकर प्रधान के हाथ में पकड़ा दिया। प्रधान यदि विधान का ज्ञाता होता तो वह इस अवैधानिक कार्य को कभी न होने देता। पर मालूम ऐसा देता है, कि उसने महासम्मेलन विधान को छुआ तक नहीं। जो कुछ महासम्मेलन से चिपके हुए रुस्तमों ने किया, उसे उसने ठीक समझा। विधान की बातें यदि वैद्य-समाज जानता होता, तो अपने अधिकार को इस तरह छिनता देखकर उसके लिये वह लड़ता। पर, कोई बोला तक भी हो, इसका पता नहीं चलता। यारों ने प्रस्ताव पास कराकर विधान को धूल में मिला दिया।

जरा हमारी सरकार के लोक-सभा में जाने वाले सदस्यों से पूछो, कि क्या आप लोग भी इसी तरह बिना विधान को पढ़े-समझे ही लोक-सभा में जाकर इसी तरह मिट्टी के माधव बने रहते हो। तो वह बतायेंगे कि अधिवेशन में जाने से पहिले अजेण्डा में आये विषयों पर विधान क्या कहता है? इस पर वे लोग खूब घोटा लगाकर वहां जाते हैं। तभी तो लोक-सभा और राज्य-सभा के अधिकारीगण विधान के बिरुद्ध कोई बात तक करने का साहस नहीं करते। यहां नाड़ी पकड़ने वाली जमात क्या जाने विधान को। तभी तो महासम्मेलन के पैसों पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुलछर्रे उड़ाने वाले यारों की खूब मौज बनी चली आती है और वह खूब धांधली मचाते रहते हैं।

पाठकों को अपने कांग्रेसी राज्य की लोकसभा के अधिवेशनों की जो कार्यवाही होती है इसको जानने की दिलचस्पी हो तो उन्हें ज्ञात होगा कि वित्तमंत्री श्री कृष्णमाचारी ने मूंदड़ा कांड के अभियोग की स्थिति को देख कर अप्रकट उसकी आंच अपने पर आता देख विधान की मर्यादा के लिये अपने पद से पृथक हो गये। किस तरह विधान का आदर किया जाता है? इस एक प्रमाण से सिद्ध है।

यहां महा सम्मेलन के अध्यक्ष ने दो दो मान हानि के केस करके उस पर विधान विरुद्ध आचरणों को, महा मंडल के रुपयों को खाने उड़ाने तक को सप्रमाण सिद्ध कर दिया, तिस पर भी वह निर्लज्ज नेता महा सम्मेलन से चिपका हुआ है उसे छोड़ना नहीं चाहता।

और जबरदस्त धूर्तता व धांधली देखिये। महा-सम्मेलन सदस्यों के पास फरवरी १९५८ की सम्मेलन पत्रिका विद्यमान होगी। कृपया उसे उठाकर उसकी विषय-सूची पढ़िये। उसके अन्त का विषय है :—

"अ० भा० आ० म० सम्मेलन स्थायी समिति एवं नि० भा० आ० विद्यापीठ केन्द्रीय प्रबन्धक समिति के सम्मिलिताधिवेशन की सूचना" पृष्ठ १२१ पर है। यह अधिवेशन दिल्ली की स्थायी समिति व स्वागत-समिति के मान्य सदस्यों के परामर्श से बुलाया जा रहा था, क्योंकि एक तो सम्मेलन की तिथियों का निश्चय तथा बजट आदि अत्यावश्यक कार्यों का निर्णय होना था। स्वागत-समिति भी विधान के अनुसार स्थायी समिति से परामर्श करके अपना कार्य क्रम बनाती। इसीलिये यह अधिवेशन रखा गया था। किन्तु महासम्मेलन पर अनधिकृत अधिकार बनाये रखने वालों ने देखा, कि यदि दिल्ली में स्थायी समिति का अधिवेशन हुआ, तो महा सम्मेलन की बागडोर हाथ से कहीं बेहाथ न हो जाये। उन्होंने सम्मेलन पत्रिका में छपकर लगे उस अजेण्डा विषय को फड़वाकर यह अधि-वेशन रद्द करवा दिया। फिर भी उन की चालाकी से बचकर दो प्रमाण सदस्यों के सामने विद्यमान रह ही गये। एक तो विषय-सूची पर छपा विषय, जिसे कर्म-चारियों ने कुछ सम्मेलन पत्रिकाओं में काटा है, कुछ में रह गया है। दूसरा पृष्ठ फाड़ने का प्रमाण पत्रिका के पृष्ठ कागज की संख्या व छपाई के अनुसार ३४ बनते हैं, वहां ३३ ही पृष्ठ हैं।

इस अधिवेशन को किसने रोका? क्यों रोका गया? यह प्रश्न तो आप लोग ही प्रधान से व पदाधिकारियों से पूछ सकते हैं क्योंकि मैं तो इस समय सम्मेलन सदस्य की स्थिति में नहीं हूँ। मैं तो आपके सामने इस रहस्य को रखने का ही अधिकारी हूँ।

अब सम्मेलन सदस्यों के पास मार्च १९५८ की सम्मेलन पत्रिका भी पहुँच गई होगी, जरा उसके १२५ पृष्ठ पर विषय-सूची पढ़ें। वहां छपा है :—

"अ० भा० आ० म० सम्मेलन की स्थायी समिति व कार्यकारिणी समितियों का सम्मिलिताधिवेशन २५ मार्च १९५८ को बम्बई में बुलाया गया है।"

जबकि महा सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन दिल्ली में हो रहा है और प्रधान उत्कल देश के ब्रह्मपुर में रहता है और मन्त्री बुरहानपुर में रहता है, तब बम्बई में यह अधि-वेशन किस उद्देश्य को लेकर बुलाया गया? क्या इस अधिवेशन को बुलाने की आज्ञा प्रधान ने दी होगी? क्या प्रधान ने विधान की स्थिति को जाना होगा और वार्षिक सम्मेलन की स्थिति को उसने जाना होगा?

इस समय सबसे महत्व का विषय जो सम्मेलन के मंच पर रखा हुआ है आयुर्वेद विद्यालय स्थापन का है, जिसके लिये केन्द्रीय विद्यापीठ पदाधिकारी भी नियत किये गये हैं। उस पर सबसे अधिक विचार होना है। किन्तु, जिस प्रधान मन्त्री ने यह एजेण्डा प्रकाशित किया है, उसने किस से पूछकर विद्यापीठ पदाधिकारियों को धत्ता बताकर इस स्थायी समिति के साथ कई कार्यकारिणी समितियों को सम्मिलित कर जो अधिवेशन बम्बई में बुलाया है, यह किस नीयत से बुलाया है? जरा सदस्यगण इसे समझें और इस बम्बई के अधिवेशन में जो एजेण्डा विषय रखा गया है, इसमें तीन संख्या के नीचे विशेष शीर्षक में वार्षिक अधि-वेशन को जिस तरह विवाद के अन्दर डालने की चाल चली गई है, इसे पढ़ें और समझें।

यह आपको सम्मेलन पत्रिका से ज्ञात होगा, कि दिल्ली के स्थायी समिति के अधिवेशन में सम्मेलन करने की तिथियां ६-७-८ अप्रैल निश्चित हुई थी। किन्तु न जाने क्यों बाद में महासम्मेलन के प्रधान ने स्वागत समिति को सुझाव दिया कि आप सम्मेलन कुछ दिन बाद कर लें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वागत समिति ने प्रधान का उक्त सुझाव मान कर सम्मेलन की तिथियां बढ़ा कर ४-५-६ मई निश्चित कर दीं और इन परिवर्तित तिथियों की स्वीकृति स्थाई समिति से लेने के लिये कार्यालय को लिख भेजा, साथ में तिथि परिवर्तन का कारण प्रधान जी का उपरोक्त सुझाव है यह भी सूचना दी। किन्तु यार लोग दिल्ली में अधिवेशन होने देने के पक्ष में ही नहीं इसलिये दिल्ली अधिवेशन के मार्ग में रोड़े अटका रहे हैं। बम्बई अधिवेशन भी इस इरादे से किया गया मालूम होता है। प्रथम तो बम्बई की २५ मार्च की स्थाई समिति के एजेण्डा में तिथि परिवर्तन के उक्त ठीक कारण का उल्लेख न कर अधिवेशन को स्थगित करने का दोष स्वागत समिति के सिर पर मढ़ दिया है, दूसरे इस विषय पर विचारार्थ स्थाई समिति की बैठक जान बूझ कर बम्बई में बुलाई गई है जहां स्वागत समिति को अपनी स्थिति स्पष्ट करने का अवसर न मिल सके। सुनते हैं कि स्वागत समिति ने एजेण्डा में महा सम्मेलन के प्रधानमन्त्री द्वारा इस विषय को भ्रान्ति पूर्ण रीति से रख कर स्वागत समिति की प्रतिष्ठा को हानि पहुंचाने की जो कुचेष्टा की गई है उस के सम्बन्ध में एक कड़ा विरोध पत्र बम्बई की स्थाई समिति को लिख कर भेजा है।

सदस्यगण देखें, कि सम्मेलन की तिथियां ४-५-६ मई को निश्चित हैं। बम्बई में स्थाई समिति का यह अधिवेशन २५ मार्च को अर्थात् वार्षिक अधिवेशन से १ महीना ८ दिन पूर्व बुलाया गया है। इस पर विधान क्या कहता है।

धारा १६—महासम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन

ख—१ वार्षिक अधिवेशन में उपस्थित करने के लिये प्रस्ताव अधिवेशन से कम से कम डेढ़ मास पूर्व कार्यालय में आना चाहिये, जिससे सभी प्राप्त प्रस्तावों को संकलित करके प्रकाशित किया जा सके।

जो प्रस्ताव कार्यालय में आते हैं और जो नये बनते हैं, वह इसी स्थायी समिति के अधिवेशन में बनते हैं। विद्यापीठ-सम्बन्धी प्रस्ताव भी इसी अधिवेशन में बनते हैं या आये हुए रखे जाते हैं और स्वागत-समिति उन्हें समय पर प्रकाशित करती है। स्थायी समिति का अधिवेशन जबकि वार्षिक अधिवेशन दिल्ली में हो रहा हो, तो स्वागत-समिति की सुविधा के लिए यह अधिवेशन दिल्ली में ही बुलाना आवश्यक था। यदि अधिवेशन दिल्ली में होता, तो कम दिन रहते हुए भी स्वागत समिति को उसे प्रकाशित करने सुविधा थी। विधान की धारा २० ङ के अनुसार भी स्थायी समिति को स्वागत-समिति से परामर्श करने के लिये दिल्ली में ही अधिवेशन करना चाहिये था क्योंकि विधान की धारा २० ङ में यही लिखा है—

"धारा २० ङ स्थायी समिति के परामर्श एवं स्वीकृति के अनुसार स्वागत-समिति वार्षिक अधिवेशन या विशेष अधिवेशन का कार्यक्रम प्रस्तुत करेगी। तथा अधिवेशन से कम से कम एक मास पूर्व उसे प्रकाशित करेगी। दोनों पक्षों की सहमति से कार्यक्रम में परिवर्तन हो सकेगा।"

इस महत्व की धारा के रहते विद्यमान पदाधिकारीगण दिल्ली में अधिवेशन न कर उसे स्थायी समिति से परामर्श का अवसर न दिया जाय, उनसे सहयोग करने के लिये तैयार नहीं इसलिये दिल्ली में अधिवेशन न करके बम्बई में किया गया। विधान के अनुसार जो अधिवेशन स्थायी समिति व स्वागत-समिति के परामर्श से दिल्ली में करने का आयोजन किया गया था, उसे तो छापकर कुछ स्वार्थी पदाधिकारियों ने फाड़कर फेंक दिया। और विधान की अवहेलना कर बम्बई में जो अधिवेशन बुलाया यह किसके परामर्श से बुलाया गया? इस अधिवेशन को बुलाने का क्या उद्देश्य है? इसको सदस्यगण जरा गहराई से सोचें।

क्या इस अधिवेशन को बुलाने का उद्देश्य आयुर्वेद विद्यालय स्थापना को रोकने के निमित्त नहीं।

जिस विद्यापीठ के पदाधिकारियों से इस पर परामर्श होना चाहिये, जिसके लिये दिल्ली में विद्यापीठ केन्द्रीय समिति बनाई गई, उसको उस स्थायी समिति में बुलाया ही नहीं गया?

क्या इन हथकण्डों में विद्यमान प्रधान का भी हाथ है? विधान की दृष्टि से तो वह उक्त आरोपों से बच नहीं सकते। विधान की दृष्टि से यहां उनकी योग्यता की परख है, कुछ अदालत में भी हो रही है। देखें, यह अध्यक्ष पूर्व अध्यक्ष जैसी विधान की मिट्टी पलीद करते हैं या उसकी रक्षा। बम्बई में अधिवेशन किस की आज्ञा से बुलाया गया? विधान के अनुसार तो अधिवेशन बुलाने का अधिकार प्रधान को है। पर उसने यह अवैधानिक पग उठाया होगा, ऐसा विश्वास नहीं होता।

] शेष पृष्ठ ६८ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिल्ली थैले से बाहर आ गई !

महासम्मेलन का दिल्ली वार्षिक अधिवेशन स्थगित

बम्बई की स्थायी समिति का निश्चय

आयुर्वेद विज्ञान के इसी अंक के अन्य लेख में पाठक हमारा यह कथन पढ़ चुके होंगे कि स्थायी समिति का दिल्ली अधिवेशन कैंसल करके अधिवेशन को बम्बई में बुलाना यह बात अधिकारियों के मन में छिपी किसी और बात की सूचक है । अभी-अभी प्राप्त समाचारों ने हमारे उस सन्देह को शत प्रतिशत सत्य सिद्ध कर दिया है। सूचना मिली है कि बम्बई की स्थायी समिति ने ४-५-६ मई को दिल्ली में होने वाले वार्षिक अधिवेशन को सितम्बर-अक्टूबर तक के लिये स्थगित कर दिया है। जबकि अधिवेशन स्थगित करने का विषय एजण्डा पर ही नहीं था। यही नहीं विद्यापीठ प्रधान के चुनाव के मत-पत्रक कार्यालय में पहुंच चुके हैं। पता चला है कि मत-दाताओं की अभूतपूर्व संख्या ने इस बार के मतदान में भाग लिया है। मतदाताओं को इतना सक्रिय देख कर अधिकारी वर्ग के पैरों तले की जमीन खिसक गई और उन्हें अधिवेशन सम्बन्धी अब तक के हुए कार्य का परिणाम स्पष्ट रूप से अपने विपरीत दिखाई दिया इसलिये स्थाई समिति का अधिवेशन बम्बई में बुला कर उन्होंने मनमानी करने की चाल चली। अब विद्यापीठ प्रधान के चुनाव को रद्द करने का निश्चय किया गया है और दुबारा मतपत्रक भेजने की तिथि ५ अप्रैल निश्चित की गई है। भला इन धूर्तों से कोई पूछे कि जब सम्मेलन ६ मास के लिये स्थगित कर दिया गया है तो विद्यापीठ प्रधान के चुनाव में तुम्हें इतनी शीघ्रता क्यों है ? सदस्य इस रहस्य को समझने का प्रयत्न करें।

मतगणना से पूर्व चुनाव को अवैध घोषित करने का यह कहां का विधान है ? फिर वार्षिक अधिवेशन यदि अक्टूबर में होना है तो महासम्मेलन प्रधान का चनाव नियमावली के अनुसार उससे दो मास पूर्व अगस्त में होना चाहिये। पर विधान को यहां पूछता ही कौन है ? जब प्रतिवर्ष ३० जून तक बनने वाले सदस्यों को प्रधान के चुनाव में भाग लेने का अधिकार विधान ने दिया है तो इस वर्ष बनने वाले सदस्यों को इस महत्वपूर्ण अधिकार से वंचित रखना विधान की मिट्टी पलीद करना नहीं तो और क्या है ?

विद्यापीठ प्रधान के इस चुनाव में मतदान से वैद्य समाज की जागरूकता के कुछ चिन्ह दिखाई दिये हैं जिससे अधिकारी वर्ग भयभीत हो उठा है और वार्षिक अधिवेशन के कार्यक्रम को अस्त व्यस्त करने का प्रयत्न कर रहा है। वार्षिक अधिवेशन को ६ मास के लिये टालने का रहस्य भी यही है। इस ६ मास में यह स्वार्थी अधिकारी प्रयत्न करेंगे कि किसी तरह अधिवेशन दिल्ली की बजाय देश के किसी ऐसे कोने में हो जहां कम से कम सदस्य पहुंच सकें। सदस्यों के सामने आने के अवसर को टालने का अधिकारियों का यह प्रयत्न भी जहां इस बात का सूचक है कि अधिकारी वर्ग को सदस्यों में चेतनता के चिन्ह दीखने लगे हैं वहां पदाधिकारियों की धांधली व अनियमितताओं का पर्दा फाश होने का भय भी इस का मुख्य कारण है। क्या सदस्य अपनी सतर्कता बनाये रखेंगे और देखेंगे कि दिल्ली से अधिवेशन टालने का अधिकारियों का कोई प्रयत्न सफल न होने पावे तथा अधिवेशन में उनसे इन सभी अवैधानिकताओं और धांधली का हिसाब किताब पूछा जावे। दिल्ली अधिवेशन की स्वागत समिति को संगठित हुए दो मास हो चुके हैं। उसने सम्मेलन के लिये धन संग्रह का कार्य लगभग समाप्त कर लिया होगा। यदि सम्मेलन न हो तो स्वागत समिति और समूचे वैद्य समाज की प्रतिष्ठा को कितनी हानि होगी ? यह सब सदस्यों के समझने की बात है। स्वार्थी नेता तो व्यक्तिगत प्रतिष्ठा के लिये संस्था से चिपटे हुये हैं, उन्हें वैद्य समाज की प्रतिष्ठा की क्या परवाह !

[शेष पृष्ठ ६७ का]

नक्कारखाने में तूती भी बोली

महासम्मेलन रूपी कामधेनु को शिव शर्मा प्रधान बन कर जैसा दुह रहा था, इसका कच्चा चिट्ठा इसी अंक में पाठक अन्यत्र पढ़ चुके होंगे। मार्च १९५८ की सम्मेलन पत्रिका के पृष्ठ १७२ से १७९ एक फार्म का पूरा मेटर शिव शर्मा का पक्का शागिर्द महासम्मेलन के एकमात्र प्रधान कर्मचारी तिलकराम ने भी निर्धन वैद्यों और विद्यार्थियों की आय से पलने वाली इस सम्मेलन रूपी कामधेनु को दुहने के लिये हाथ बढ़ाया है और बंबई की अदालत के फैसले को झूटा साबित करने का प्रयत्न कर रहा है। क्या इस तूती की आवाज को कोई नक्कारखाने में सुननेवाला है ? क्या इसे बोलने से रोकने का कोई साहस रखता है ? क्या महा सम्मेलन का धन इसी तरह लुटेगा ?

आयुर्वेद का हितेच्छु हरिशरणानन्द वैद्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस सूचीपत्र से पूर्व के सूचीपत्र रद्द किए गये। १-४-५८

जगत् प्रसिद्ध व अखिल भारतीय वैद्य सम्मेलन द्वारा सम्मानित तथा म्युनिसिपल कमेटियों, डिस्ट्रिक्ट बोर्डों, धर्मार्थ औषधालयों के लिये मान्य

व

पञ्जाब सरकार द्वारा स्वीकृत

पञ्जाब आयुर्वैदिक फार्मेसी

का

षाण्मासिक-सूचीपत्र

सूचन

राष्ट्रीय सरकार ने विदेशों से आने वाली वस्तुओं की आमद को एकाएक बन्द कर दिया। इसी कारण पारा, सिंगरफ, हरताल आदि अनेक चीजों के भाव दुगने चौगुने हो गये हैं। हमारे पास रस भस्मों का भारी स्टाक पिछला था इसलिये हम अपने ग्राहकों को पूर्व सूचीपत्र के मूल्य पर रस भस्म देते रहे थे। अब स्टाक समाप्त प्रायः है नये सिरे से औषधियों का निर्माण हो रहा है इसलिये जो इस समय दवाई बनाने पर लागत आ रही है उसके अनुसार ही भाव (मूल्य) में वृद्धि की गई है।

दूसरी बात यह है कि सरकार ने आना पाई का चलन उठा दिया है दाशमिक प्रणाली प्रचलित की गई है उसी के अनुसार सारे मूल्य रुपये व नये पैसे में दिये गये हैं ग्राहक इसे ध्यान में रखें।

मैनेजर

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

अध्यक्ष-पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी,

६०-६१, अकाली मार्केट, अमृतसर

दूसरा पता-

पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी, खारी बावली, देहली।

१०१वीं आवृत्ति, } संस्थापित १९१९ [१ अप्रैल १९५८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एजेन्सी के नियम

(१) आयुर्वैदिक रस, भस्म, आसव, अरिष्ट, घृत, तैल, पाक, अवलेह, चूर्ण, गुटिका आदि औषधियां ही एजेन्सी में दी जायेंगी। (वनस्पतियां, खनिज तथा प्राणिज द्रव्य, क्षार और शुद्ध वस्तुयें इसमें शामिल नहीं)

(२) कोई भी विक्रेता या वैद्य जो एक बार १००) रु० की उक्त बनी औषधियों का आर्डर देगा वह एजेयट स्वीकृत होगा।

(३) कम्पनी की आविष्कृत औषधियां जो व्यक्ति १००) रु० की एक बार खरीदेगा वह भी एजेयट स्वीकृत होगा।

(४) जो व्यक्ति प्रस्तुत और आविष्कृत दोनोंका मिश्रित आर्डर १००) रु० का देगा वह भी एजेयट स्वीकृत होगा।

(५) मंगाई हुई औषध ६ मास तक एजेयट से न बिक सके तो ऐसी औषध--यदि ठीक पैकिंग में बन्द हो—एजेयट अपने खर्चे पर उसे वापस कर उसके स्थान पर अन्य औषध मंगा सकता है।

(६) सूची पत्र में अङ्कित जिस वजन के मूल्यका पैकट नियत होगा उतनेही वजन के पैकट उस मूल्य पर भेजे जाएंगे। छोटे वजनके पैकट—जिनकामूल्य अधिक है यथा ढाई ढाई तोला, पांच पांच तोला के पैकट, २० तो० के पैकट के भाव पर नहीं भेजे जाएंगे। १ तो० का मूल्य ५ तो० का ⅕ होगा। १ तोला से कम का पैकट मंगाने पर १ तोला के हिसाब से मूल्य लगाकर प्रति पैकट उससे एक आना अधिक लिया जावेगा।

(७) औषधियां वी० पी० पार्सल से या बैंक द्वारा भेजी जायंगी। उधार या जामन पर नहीं भेजी जाएंगी।

(८) १०००) रु० नकद जमानत जमा कराने पर माल उधार पर भेजा जा सकता है।

एजेंसी कमीशन दर और सुविधा

(१०) धारा नं० २ के अनुसार बनने वाले एजेयटों को कम्पनी की प्रस्तुत आयुर्वैदिक औषध पर १५ प्रतिशत।

(११) धारा नं० ३ के अनुसार बनने वाले एजेयटों को कम्पनी की आविष्कृत औषध पर २५ प्रतिशत।

(१२) धारा नं० ४ के अनुसार बनने वाले एजेयटों को कम्पनी की मिश्रित औषध पर १५ प्रतिशत।

(१३) जो व्यक्ति सौ रुपये का बना माल जब २ मंगावेगा पैकिङ्ग खर्च और गुडस ट्रेन का किराया फ्री होगा अर्थात F. O. R. जहां ग्राहक मंगावेगा। यदि ग्राहक पार्सल ट्रेन से माल मंगावेगा तो आधा किराया उसे देना होगा।

नोट—नं० १३ का यह नियम मद्रास तथा आन्ध्र राज्यों के ग्राहकों, ऐजयटों पर लागू न होगा।

(१४) ५०) रु० अथवा अधिक के माल पर पैकिङ्ग खर्च माफ होगा। इससे कम माल मंगाने वालेको यह सुविधा नहीं दी जाएगी।

(१५) एजेयट बन जाने पर बने माल के थोड़े से थोड़े आर्डर पर भी उक्त हिसाबसे बराबर कमीशन मिलता रहेगा।

(१६) विज्ञापन के लिये हमारी फार्मेसी इस समय सिवाय सूचीपत्र के और साधन नहीं जुटाती। प्रचार का प्रबन्ध स्वयम एजेयट अपने खर्चे से कर सकता है।

विशेष बातें नोट करें

१. प्रत्येक आर्डर के साथ पेशगी आनी आवश्यक है। अथवा एकबार १०) रुपये स्थायी ग्राहक के रूप में जमा करा छोड़ें। उन्हें ग्राहक नम्बर मिल जायगा, ऐसे ग्राहक को फिर पेशगी भेजने की जरूरत न होगी।

२. यहां से पैकिंग अच्छी तरह देखकर किया जाता है। पोस्ट या रेल कर्मचारियों की असावधानी से माल की जो हानि हो जाएगी उसकी जिम्मेवारी फार्मेसी की नहीं होगी। हां प्रामाणिक व्यक्ति के सामने बन्द माल का पैकिंग खोलने पर कोई माल कम होगा तो उसकी पूर्ति की जा सकती है।

३. जिन ग्राहकों के पास केन्द्रीय विक्री कर का लाईसेंस हो वह कृपया आर्डर के साथ "सी" फार्म अवश्य भेज दिया करें।

मैनेजर

ग्रन्थ संकेत

र० प्र० सु०	रस प्रकाशसुधाकर	फा० वि०	फार्मेसी विधि	रसे० सं०	रसेन्द्रसार संग्रह	र० यो० सा०	रसयोग-सागर
यू० वि०	यूनानी विधि	बृ० यो०	बृहदयोग-तरंगिणी	भै० र०	भैषज्य रत्नावली	रसा० सं०	रसायन संग्रह
आ० प्र०	आयुर्वेद प्रकाश	र० र० स०	रसरत्न-समुच्चय	वै० सा० सं०	वैद्यकसार संग्रह	च०	चरक
भा० प्र०	भावप्रकाश	शा० ध०	शार्ङ्गधर	र० चं०	रसचण्डांशु	वै० जी०	वैद्यजीवन
र० रा० सु०	रसराज सुन्दर	यो० र०	योगरत्नाकर	च० द०	चक्रदत्त	र० हृ०	रसहृदय
वै० मृ०	वैद्यामृत	यो० त०	योगतरंगिणी	यो० चि०	योगचिन्तामणि	भा० र०	भारतीय रसायनशास्त्र
र० का०	रसकामधेनु	सि० भै०म०	सिद्धभैषज्यमणिमाला	नि०र०	निघण्टु-रत्नाकर		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्जाब आयुर्वैदिक फार्मेसी अमृतसर

का

सूचीपत्र

साधारण मूल्य की भस्में

नाम	२० तो.,	१० तो.	५ तो.
अकीक (यू० वि०)	१४—००	७—५०	४—००
अभ्रक वज्र (भा.प्र) २१पु.	२०—००	१०—५०	६—००
अभ्रक श्वेत (र.रा.सु.)	५—००	३—००	१—६०
कान्तलोह भस्म (र.रा.सु.)	१२—००	६—७५	३—८०
कांस्य भस्म (आ.प्र.)	१२—००	६—७५	३—८०
कपर्दिका भस्म (आ.प्र.)	५—००	३—००	१—६०
कसीस भस्म (रसे. सं)	३—००	१—७५	१—००
कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म (वै.मृ.)	१४—००	७—५०	४—००
केकड़ा भस्म (यू.वि) रक्तष्ठीवने	१६—००	९—००	५—००
जहर-मोहरा भस्म (यू.वि.)	५—००	३—००	१—६०
ताम्र सोमनाथी भस्म (र.रा.सु.)	२०—००	१०—५०	६—००
ताम्रकूपीपक्व भस्म (र.रा.सु.)	२०—००	१०—५०	६—००
तुत्थ भस्म (र०रा०सु०)	१०—००	५—५०	३—००
त्रिवंग भस्म (आ०प्र०) २१ पुटी	२८—००	१५—००	८—००
नागभस्म पीत (वृ० यो०)	८—००	४—५०	२—६०
नागभस्म श्याम (र०का०)	१०—००	५—५०	३—००
नीलांजन भस्म (सुरमा) (भा०र०)	८—००	४—५०	२—६०
प्रवालभस्म अग्निपुटी (आ० प्र०)	२०—००	१०—५०	६—००
प्रवालभस्म चन्द्रपुटी (यू०वि०)	२०—००	१०—५०	६—००
पीतलभस्म (आ. प्र.)	७—००	३—७५	२—००
वंगभस्म हरितालेन (आ. प्र.)	२०—००	१०—५०	६—००
वंग भस्म श्वेत (र. रा. सु.)	१५—००	९—००	५—००
बेरपत्थर भस्म (यू० वि०)	१५—००	९—००	५—००
मण्डूरभस्म (र० रा० सु०)	७—००	३—७५	२—००
शृंगशृङ्ग भस्म (शा. ध.)	७—००	३—७५	२—००
यशद भस्म (यो० र०)	१०—००	५—५०	३—००
रौप्यमाक्षिकभस्म (र० का०)	८—००	४—५०	२—६०
लोहभस्म हिंगुलयोगेन (आ०प्र०)	२०—००	१०—५०	६—००
लोहभस्म स्वयमग्नि (र. रा. सु.)	१४—००	७—५०	४—००
लोहभस्म वनस्पति (फा. वि.)	१०—००	५—५०	३—००
शंख नाभि भस्म (र. का.)	४—००	२—५०	१—६०
संगजराहत भस्म (आ. प्र.)	४—[illegible]	२—५[illegible]	१—[illegible]

भस्में	२०तो.	१०तो,	५तो.
स्वर्णमाक्षिकभस्म (र. रा. सु)	१०—००	५—५०	३—००
सीपभस्म (मोती) (र. रा. सु.)	१०—००	५—५०	३—००
सीपभस्म (र. रा. सु.)	४—००	२—५०	१—६०
सुरमा श्वेत भस्म (फा. वि.)	४—००	२—५०	१—६०
हरताल गोदन्ती भस्म (आ: प्र.)	३—००	१—७५	१—००

मूल्यवान् भस्में

	२॥तो.	१तो०
अभ्रक वज्र भ. (आ.प्र.) ६०,,	५—५०	२—५०
कहरवा भस्म (यू० वि०)	७—००	३—००
गोमेद भस्म (र.का.) मस्तिष्करोगे	२४—००	१०—००
तीक्ष्णलोह भस्म (फा० वि०) शक्तिवर्द्धक	७—००	३—००
तुरमली भस्म (फा० वि०) ,,		४८—००
दानायेफिरंगभस्म (यू०वि०)		८—००
नागभस्म (आ०प्र०) ५० पुटी	५—५०	२—५०
नीलमभस्म (र०का०) उन्मादे		१५—००
पन्नाभस्म (यू०वि०) मस्तिष्करोगे		१५—००
पुखराज भस्म (र०का०) हृद्रोगे		२०—००
फिरोजाभस्म (यू०वि०) हृद्रोग		१५—००
फौलादभस्म अपूर्व (फा०वि०) शक्तिवर्धने		१२—००
मयूर पुच्छभस्म (र० रा० सु०) छर्दिरोगे	५—५०	२—५०
माणिक्यभस्म (यू० वि०) हृद्रोगे		९—००
मुक्ता भस्म (र०का०) शक्तिवर्द्धने	९०—०० तोला	८—०० माशा
मुक्ता भस्म चन्द्रपुटी (यू०वि०) ,,	,, ,,	,, ,, ,,
रजतभस्म (चांदीभस्म) हरितालेन	१४—००	६—००
रजतभस्म (चांदी भ०) पारदयोगेन	१४—००	६—००
राजावर्तभस्म (यू०वि०) उन्मादरोगे		६—००
लहसुनिया भस्म (फा. वि.)		६—००
वैक्रांतभस्म (रसा. सं.) मस्तिष्करोगे	४—५०	२—००
सर्पास्थि भस्म (फा. वि,) कण्ठमालाव्रणे	७—००	३—००
संगयशब भस्म (यू. वि.)	४—५०	२—००
संखियाभस्म (फा. वि.) शक्तिवर्द्धने	१२—००	५—००
स्वर्णभस्म (शा. ध.) रसायने		१६—०० प्रति माशा
हरताल पत्राख्य भस्म		५—००
हिंगुलभस्म (फा. वि.) क्लीवत्वरोगे	७—००	३—००
[illegible] भस्म (आ. प्र.) सर्वरोगे		३०—०० प्रति रत्ती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रस, रसायन, गुटिका, गुग्गुल आदि

रस	२०तो.	१०तो.	५तो.
अग्निकुमार वृ. (रसे. सं.) अजीर्णे	१८—००	९—५०	५—००
अग्निसून (रसा. सं.) ग्रहण्याम्	१४—००	७—५०	४—००
अग्निमुख (नि. र.) अग्निमांद्ये	१०—००	५—५०	३—००
अग्निरस (र. र. स.) कासे, उरःक्षते	१०—००	५—५०	३—००
अग्नितुण्डीरस (भै. र.) उदर रोगे	१४—००	७—५०	४—००
अजीर्णकण्टक (भै. र.) अजीर्णे	१८—००	९—५०	५—००
अजीर्णारि (र. रा. सु) अजीर्णे	१४—००	७—५०	४—००
अतिविषादिगुटिका (र. चं) बालरोगे	७—००	३—७५	२—००
अपचिविनाशी (फा. वि.) अपचिरोगे	१४—००	७—५०	४—००
अश्वकंचुकी (वै. सा. सं.) सर्वरोगे	२०—००	१०—५०	६—००
अर्शोघ्नी वटी (फा. वि.) रक्तार्शे	१०—००	५—५०	३—००
अश्विनीकुमार (अनु. तं.) सर्वरोगे	२०—००	१०—५०	६—००
अहिफेन मुक्तिदाता फा. वि.)	२८—००	१५—००	८—००
आनन्दभैरव (रसेन्द्र) ज्वरातिसारे	१४—००	७—५०	४—००
आमवातारिरस (भै. र.) आमवाते	१८—००	९—५०	५—००
आमवातेश्वर (भै. र.) "	१८—००	९—५०	५—००
आरोग्यवर्द्धनी (र. र. स) कुष्ठाधिकारे	१८—००	९—५०	५—००
इच्छाभेदी (रसे. सं.) उदररोगे	१४—००	७—५०	४—००
उपदंशकुठार (र. चं.) उपदंशरोगे	१८—००	९—५०	५—००
एलादिवटी (च. द.) कासाधिकारे	४—५०	२—७५	१—६०
एकांगवीर (र. रा. सु) वातरोगे	१८—००	९—५०	५—००
कनकसुन्दर (रसे. सं.) अतिसारे	१४—००	७—५०	४—००
कफकेतु (रसे. सं) कफाधिकारे	१४—००	७—५०	४—००
कफचिन्तामणि (रसे. सं) कफाधिकारे	१८—००	९—५०	५—००
कफकुठार (र. प्र. सु) श्लेष्मरोगे	१८—००	९—५०	५—००
कर्पूरादिरस (र. रा. सु) प्रमेहाधि.	१४—००	७—५०	४—००
क्रव्यादरस वृ. (र. रा. सु) उदररोगे	२८—००	१५—००	८—००
कांचनारगुग्गुल (शा. ध) कण्ठमाला	७—००	३—७५	२—००
कांकायनी गुटिका (यो. र.) अर्शरोगे	७—००	३—७५	२—००
कामदुघा (रसा. सं.) अम्लपित्ते	२०—००	१०—५०	६—००
कासहर (फा. वि.) कासरोगे	७—००	३—७५	२—००
कालारिरस (यो. र.) वातव्याधौ	१८—००	९—५०	५—००
किशोर गुग्गुल (भै. र) वातरक्ते	७—००	३—७५	२—००
कृमिघ्नकुलिजलप्लव (रसे. सं.) कृमिरोगे	१८—००	[illegible]	५—००

रस	२० तो.	१० तो.	५ तो.
खदिरादिवटी (भै. र.) मुखरोगे	१०—००	५—५०	३—००
गगनादिलोह (रसे. सं) सोमरोगे	१८—००	९—५०	५—००
गर्भपालरस (र. चं) गर्भिणीरोग	१४—००	७—५०	४—००
गर्भविनोदरस (रसे. सं) गर्भिणीरोगे	१४—००	७—५०	४—००
गर्भचिन्तामणि (भै. र.) सूतिकारोगे	२४—००	१४—००	७—४०
गन्धकवटी (र. रा. सु.) जठररोगे	१०—००	५—५०	३—००
गन्धकरसायन (रसे. सं) रक्तविकारे	२०—००	१०—५०	६—००
गन्धर्व रस (र. र. स) कम्पवाते	१८—००	९—५०	५—००
गुल्मकालानल (भै. र.) गुल्मे	१४—००	७—५०	४—००
गुल्मनाशनरस (र. र. स.) गुल्मे	१४—००	७—५०	४—००
गुल्मारिरस (र. का.) गुल्माधिकारे	२०—००	१०—५०	६—००
ग्रहणीकपाट (र. रा. सु) ग्रहण्याम	२०—००	१०—५०	६—००
गोक्षुरादिगुग्गुल (यो. र.) प्रमेह	७—००	३—७५	२—००
चतुर्मुख रस (फा. वि.) सन्निपाते	२५—००	१४—००	७—४०
चन्दनादिलोह (भै. र.) जीर्णज्वरे	२०—००	१०—५०	६—००
चन्द्रप्रभावटी (शा. ध) प्रमेहाधिकारे	१२—००	६—५०	३—६०
चन्द्रकला (भै. र.) प्रमेहाधिकारे	१८—००	९—५०	५—००
चन्द्रामृत लोह (भै. र.) जीर्णकासे	१५—००	८—००	४—४०
चित्रकादि वटी (चक्र) अजीर्णे	१८—००	९—५०	५—००
ज्वरघ्नी वटी (र. र. स.) ज्वरे	१३—००	७—००	३—६०
ज्वरमुरारि (भै. र.) सन्निपाते	१५—००	८—००	४—४०
ज्वरार्यभ्रम् (भै. र.) जीर्णज्वरे	१४—००	७—५०	४—००
ज्वरांकुशचोकयुक्त (शा. ध.) विषमज्वरे	१४—००	७—५०	४—००
ताम्र पर्पटी (रसे. सं.) ग्रहण्याम्	२०—००	१०—५०	६—००
त्वग्रोगान्तकवटी (फा. वि.) चर्मरोगे	१०—००	५—५०	३—००
त्रयोदशांगगुग्गुल (भै. र.) वातव्याधौ	१०—००	५—५०	३—००
त्रिभुवनकीर्ति (यो. र.) ज्वरे	१५—००	८—००	४—४०
त्रिपुर भैरव (र. रा. सु.) नवज्वरे	१४—००	७—५०	४—००
दुर्जरजलजेता (र. च.) अजीर्णाधिकारे	१४—००	७—५०	४—००
दुग्धवटी नं. २ (भै. र.) ग्रहण्याम्	१४—००	७—५०	४—००
धात्रीलोह (रसे. सं.) कामलायाम्	१८—००	९—५०	५—००
नवायसलोह (र. रा. सु.) पाण्डुरोगे	१८—००	९—५०	५—००
नारायणज्वरांकुश (यो. र.) ज्वरे	१४—००	७—५०	४—००
नाराचरस (रसे. स.) उदररोगे	१४—००	७—५०	४—००
नित्यानन्द (भै. र.) श्लीपदे	१८—००	९—५०	५—००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रस	२०तो.	१०तो.	५तो.
नित्योदित रस (रसे.सं.) अर्शरोगे	१४-००	७-५०	४-००
नृपतिवल्लभरस(र.रा.सु.) ग्रहण्याम्	१८-००	९-५०	५-००
पंचामृत पर्पटी(रसे.सं.) ग्रहण्याम्	२५-००	१४-००	७-४०
पंचवक्त्र रस (रसे.सं.) सन्निपाते	१४-००	७-५०	४-००
प्रतापलंकेश्वर(वृ.यो.) सूतिकारोगे	१९-००	१०-००	५-४०
प्रदरान्तकलोह(फा.वि.) प्रदरानुभूत	२५-००	१४-००	७-४०
प्रदरारिवटी (फा.वि.) श्वेतप्रदरे	१५-००	८-००	४-४०
प्रदररिपु (रसे.सं.) प्रदरे	१५-००	८-००	४-४०
प्राणदागुटिका (भै.र.) अर्शरोगे	७-००	३-७५	२-००
प्रमदानन्दरस(रसे.सं.) रसायने	२०-००	१०-५०	६-००
पुनर्णवागुग्गुल(भै.र.) शोथाधिकारे	७-००	३-७५	२-००
पुनर्णवादिमण्डूर(भै.र.) पाण्डुरोगे	१०-००	५-५०	३-००
बालरस(र.रा.सु.) बालरोगे	१४-००	७-५०	४-००
बालशोषान्तकवटी(फा.वि.) बालशोषे	१४-००	७-५०	४-००
बोल पर्पटी (रसा.सं.) रक्तपित्ते	२०-००	१०-५०	६-००
बोलवद्धरस (वृ.यो.त.) अर्शाधिकारे	१४-००	७-५०	४-००
मण्डूरवटी (भै.र.) पाण्डुरोगे	१०-००	५-५०	३-००
मरिचादि वटी(शा.ध.) कासरोगे	७-००	३-७५	२-००
मृत्युञ्जय रस(भै.र.) सन्निपाते	१२-००	६-५०	३-६०
मृत्युञ्जयलोह(रसे.सं.) उदराधिकारे	१८-००	९-५०	५-००
मृतप्राणदायी रस(नि.र.) ज्वरे	२०-००	१०-५०	६-००
ज्वरांकुश वृ.(भै.र.) ज्वराधिकारे	१४-००	७-५०	४-००
योगराज गुग्गुल महान् १। लच्चा चोट का—समस्त धातुयुक्त (शा.ध.) वातव्याधौ	२०-००	१०-५०	६-००
योगराज गुग्गुल साधारण (शा.ध.)	४-५०	२-७५	१-६०
यकृदरिलोह वृ.(भै.र.) यकृताधिकारे	१४-००	७-५०	४-००
रजःप्रवर्तिनी (भै.र.) ऋतुकष्टे	१४-००	७-५०	४-००
रसचन्द्रिकावटी (रसे.सं.) शिरोरोगे	१८-००	९-५०	५-००
रक्तपित्तकुलकण्डन(र.रा.सु.) रक्तपित्ते	२५-००	१४-००	७-४०
रसमाणिक्य (तालवाला) रक्तविकारे	१८-००	९-५०	५-००
रससिन्दूरद्धि (र. का.)	२८-००	१५-००	८-००
रामबाणरस(भै.र.) अजीर्णाधिकारे	१०-००	५-५०	३-००
राजचण्डेश्वर (र.चं.) सर्वरोगे	१८-००	९-५०	५-००
लवंगादि वटी (वै.जी.) कासरोगे	१०-००	५-५०	३-००
लक्ष्मीनारायणरस(र.चं.) वातरोगे	२५-००	१४-००	७-४०
लक्ष्मीविलासवृ.(र.रा.सु.) शिरोरोगे	२०-००	१०-५०	६-००

रस	२० तो.	१०तो.	५ तो.
लशुनादि वटी (शा.ध.) वातरोगे	७-००	३-७५	२-००
लीलावतीवटी(र.रा.सु.) उदररोगे	१५-००	८-००	४-४०
लोकनाथरस वृहत् (शा.ध.) क्षये	१४-००	७-५०	४-००
लोकनाथ रस लघु (शा.ध.) क्षये	१०-००	५-५०	३-००
लोहरसायन (वं.से.) रसायने	२८-००	१५-००	८-००
लोह पर्पटी (रसे.सं.) सर्वरोगे	२०-००	१०-५०	६-००
वातगजांकुश (रसे.सं.) वातरोगे	२५-००	१४-००	७-४०
वातविध्वन्स (वृ.यो.त.) वातव्याधौ	२५-००	१४-००	७-४०
विश्वतापहरणरस(र.रा.सु.) सन्नि.	२०-००	१०-५०	६-००
विषमुष्टिवटी (फा.वि.) आमवाते	१४-००	७-५०	४-००
व्योषादि वटी (यो.चि.) कासे	७-००	३-७५	२-००
श्वासकुठार वृ. (र.रा.सु.) श्वासे	१५-००	८-००	४-४०
शम्बूकादिवटी(भै.र.) शूलाधिकारे	१४-००	७-५०	४-००
श्वासारिलोह (भै.र.) श्वासे	१४-००	७-५०	४-००
श्वासान्तकरस (फा. वि.) श्वासे	१९-००	१०-००	५-४०
शिरःशूल वज्रारि(भै.र.) शिरःशूले	१४-००	७-५०	४-००
शीतगजकेसरी(भा.प्र.) शीतज्वरे	१४-००	७-५०	४-००
शीतारिरस (भै.र.) ज्वराधिकारे	१४-००	७-५०	४-००
शूलवज्रणी (रसे.सं.) शूलाधिकारे	१४-००	७-५०	४-००
शूलगजकेशरीताम्र (शा.ध.) शूलरोगे	२५-००	१४-००	७-४०
शूलगजकेशरीवटी(फा.वि.) पार्श्वशूले	१२-००	६-५०	३-६०
शृङ्गाराभ्ररस(रसे.सं.), कासे जीर्णज्वरे	१८-००	९-५०	५-००
शोथ कालानल (भै.र.) शोथे	१०-००	५-५०	३-००
शंखवटी वृहत् (भै.र.) अग्निमान्द्ये	८-००	४-५०	२-६०
सर्वज्वरहरलोह(र.सं.) ज्वराधिकारे	१९-००	१०-००	५-४०
सिद्धप्राणेश्वर (रसे.सं.) ज्वरातिसारे	१८-००	९-५०	५-००
सिंहनाद गुग्गुल(यो.चि.) वातरक्ते	७-००	३-७५	२-००
सुखविरेचनी(फा.वि.) सुखविरेचने	१४-००	७-५०	४-००
सूतिकाविनोद (भै.र.) सूतिकारोगे	१४-००	७-५०	४-००
सौभाग्य वटी (भै.र.) कासज्वरे	१४-००	७-५०	४-००
संजीवनी वटी (शा.ध.) अजीर्णे	८-००	४-६०	२-६०
स्मृतिसागर (यो.र.) अपस्मारे	२८-००	१५-००	८-००
स्वच्छन्द भैरव(भै.र.) ज्वराधिकारे	१४-००	७-५०	४-००
हुताशनरस (यो.र.) श्लेष्मरोगे	१४-००	७-५०	४-००
हृदयार्णव रस (यो.र.) हृद्रोगे	१४-००	७-५०	४-००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल्यवान रस, रसायन, गुटिका आदि

	२॥ तो.	१ तो.
अमीररस(सि भै.म.)उपदंशरोगे	१२–००	५–००
कस्तूरी भैरव वृ.(भै.र.) ज्वराधिकारे		२४–००
कस्तूरीभूषण (भै. र.) सर्वरोगे		१५–००
कामदुघामोतीयुक्त(रसा.सं.)अम्लपित्ते	१८–००	८–००
कालकूट रस (वै.चि.) सन्निपाते	७–००	३–००
कुमारकल्याण (भै. र.) बालरोगे		४८–००
केशरादिवटी(फा.वि.)जीर्णप्रतिश्याये	९–००	४–००
कृष्णमाणिक्यरस (र.रा.सुं) कुष्ठाधिकारे	९–००	४–००
चिन्तामणि चतुर्मुख(भै.र.)सर्वरोगे	२४–००	१०–००
जयमंगलरस (भै.र.) ज्वराधिकारे		२४–००
जीर्णज्वराररिस (फा.वि.)जीर्णज्वरे	४–५०	२–००
जौहररसकपूर(फा.वि.)उपदंशरोगे	१२–००	५–००
जौहर त्रिविष(फा.वि.)उपदंशरोगे	१२–००	५–००
जौहर दारचिकना (फा.वि.)उपदंशरोगे	१२–००	५–००
जौहरसंखिया (फा.वि.) शक्तिवर्द्धने	९–००	४–००
जौहर संखिया पीलेका, वातरोगे	९–००	४–००
जौहर हरतालपत्राख्य, कुष्ठरोगे	१२–००	५–००
जौहर नौसादर (स्वर्णवगं का) उदरविकारे	१–१०	०–५०
ताप्यादिलोह(रसे.सं.)रसायने	९–००	४–००
तालसिन्दूर(रसा. सं.) रक्तविकारे	१२–००	५–००
त्रिवंगवटी (फा.वि.) स्वप्नदोषे	९–००	४–००
नागरस कस्तूरीयुक्त(र.च.)श्वासे	१८–००	८–००
पारे की गोली (वाजीकर) एक गोली का मूल्य		४–००
प्रवालपंचामृत(यो.र.)गुल्माधिकारे		१५–००
पुष्पधन्वारस(भै.र.)रसायने	७–००	३–००
पुटपकविषमज्वारन्तकलोह(भै.र.)ज्वराधिकारे	२४–००	१०–००
पूर्णचन्द्ररस वृ. (रसे.सं.)रसायनाधिकारे	२७–५०	१२–००
बालार्क रस(रसा.सं.)बालरोगे	१२–००	५–००
मल्लसिन्दूर (रसा.सा.) सर्वरोगे	१२–००	५–००
मन्मथाभ्ररस (रसे.सं.) वाजीकरणे	९–००	४–००
मृगाङ्क स्वर्णसंयुक्त (शा.ध.) क्षये		६०–००
रसमाणिक्य(र.रा.सु.) कुष्ठाधिकारे	९–००	४–००

	२॥ तो.	१ तो.
रससिन्दूर द्विगुण (र.का.)	४–५०	२–००
रससिन्दूरचतुर्गुणगन्धकजीर्ण	७–५०	३–००
रससिन्दूर षड्गुणगन्धकजीर्ण	१२–००	५–००
रसपर्पटीहिंगुलोत्थ(र.रा.सु.)ग्रहण्याम्	४–५०	२–००
रसपर्पटी विशुद्ध रसेन ,, ,,	९–००	४–००
राजमृगाङ्क (शा.ध.) क्षयरोगे		४८–००
लक्ष्मीनारायण वृ.(रस.योग.द्वितीय)रत्नोपरत्नयुक्त		८४–००
वसन्तकुसुमाकर (शा.ध.) सर्वरोगे		३६–००
विजयपर्पटी (भै.र.) ग्रहण्यधिकारे		२०–००
विषमज्वरान्तकलोह(भै.र.) ज्वराधि.	४–५०	२–००
वृ०वातचिन्तामणि (भै. र.) वातव्याधौ		३६–००
वंगेश्वर वृहत (भै.र.) प्रमेहाधिकारे		२४–००
शिलासिन्दूर (र.रा.सुं.) कुष्ठरोगे	१२–००	५–००
शीतवातेश्वर(फा.वि.)हृदयावसादे	४–५०	२–००
शीतांकुश रस (र.प्र.)चातुर्थिकज्वरे	४–५०	२–००
समीरपन्नग रस(र.चं.) वातरोगे	१४–००	६–००
सर्वांगसुन्दर (र.सं.) शूलरोगे	९–००	४–००
सिद्धमकरध्वज (पिष्ट) स्वर्णभस्मयुक्त		७२–००
सूतशेखर(नि.र.) अम्लपित्ताधिकारे		१२–००
स्वर्णचन्द्रोदय षडगुणगन्धकजीर्ण		३०–००
स्वर्ण पर्पटी (र.रा.सु.) क्षयाधिकारे		२४–००
स्वर्णवसन्त मालती (भै.र.) क्षयरोगे		३०–००
स्वर्णवंग नं० १ (र.रा.सु.) प्रमेहे	७–००	३–००

अंजन तथा नेत्रवर्ती

नाम वस्तु	५ तो.	१ तो.
चंद्रोदयावर्ती (शा.ध.) नेत्ररोगे	२–५०	०–६५
चन्द्रप्रभावर्ती(यो.र.) नेत्ररोगे	२–५०	०–६५
नागार्जुनीवर्ती (भै.र.) ,, धुन्धजालायां	५–००	१–२५
मुक्तादि महाञ्जन (यो.र.) नेत्ररोगे	१०–००	२–२५
नयनामृत सुरमा (शा.ध.) ,, ज्योतिवर्द्धने	११–००	२–५०
सुरमाज्योतिवर्द्धक(फा.वि.) ज्योतिवर्धने	१०–००	२–१०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसव अरिष्ट

नाम वस्तु	१०पौं.	५पौं.	२पौं.
अमृतारिष्ट (आयु. वे. सं) ज्वरे	२२–५०	११–५०	५–००
अर्जुनारिष्ट (भै.र.) हृद रोगे	२२–५०	११–५०	५–००
अशोकारिष्ट ,, ,, प्रदरे	२२–५०	११–५०	५–००
अश्वगन्धारिष्ट (वं. से.) प्रमेहे	२२–५०	११–५०	५–००
अभयारिष्ट (भै. र.) अर्शरोगे	२२–५०	११–५०	५–००
कुटजारिष्ट ,, अतिसारे	२२–५०	११–५०	५–००
खदिरारिष्ट (भै. र.) कुष्ठरोगे	२२–५०	११–५०	५–००
जीरकाद्यरिष्ट (भै. र.) प्रसूतरोगे	२२–५०	११–५०	५–००
दशमूलारिष्ट (शा.ध) प्रसूतरोगे	२४–००	१३–५०	६–००
दशमूलारिष्ट (कस्तूरीयुक्त),,	३६–००	१९–००	८–००
द्राक्षारिष्ट (शा, धं.) क्षये	२२–५०	११–५०	५–००
रोहितकारिष्ट (भै.र.) प्लीहारोगे	२२–५०	११–५०	५–००
लक्ष्मणारिष्ट (फा.वि)	३२–५०	१७–००	७–००
सारस्वतारिष्ट (भै.र.) मानसिकरोगे	२४–००	१३–५०	६–००
सारिवाद्यरिष्ट (भै.र.) कुष्ठे, रक्तविकारे	२२–५०	११–५०	५–००
उशीरासव (शा. ध.) रक्तपित्ते	२२–५०	११–५०	५–००
कनकासव (भै. र.) श्वासरोगे	२२–५०	११–५०	५–००
कुमार्यासव (शा. ध.) उदररोगे	२४–००	१३–५०	६–००
चन्दनासव (भै. र.) प्रमेहे	२२–५०	११–५०	५–००
द्राक्षासव (शा. ध.) अर्शोदरे	२२–५०	११–५०	५–००
पुनर्णवासव (भै. र.) शोथे	२२–५०	११–५०	५–००
पिप्पल्यासव (शा.ध.) अर्शे, गुल्मे	२४–००	१३–५०	६–००
लोहासव (शा. ध.) पाण्डुरोगे	२२–५०	११–५०	५–००
लोध्रासव (गदनिग्रह) पाण्डु, अर्शे	२२–५०	११–५०	५–००

शंखद्राव (र. का.) गुल्मे १०तो. के ४–५०, ५तो. के २–५०

आसवनिर्माणार्थ किण्व (सुराबीज) ५ तोला का २–००

प्रसिद्ध अवलेह पाक

नाम वस्तु	२॥सेर	१सेर	१पाव
कुटजावलेह (शा. ध.) अतिसारे	१६–५०	७–००	२–००
कूष्माण्डावलेह (शा.ध.) रक्तपित्ते	१६–५०	७–००	२–००
कंटकार्यवलेह (वं. से.) कासे	१६–५०	७–००	२–००
च्यवनप्राशावलेह (च.) रसायने	१६–५०	७–००	२–००
भार्गी गुड़ (भै. र.) हिक्का, श्वासे	१६–५०	७–००	२–००
मदनानन्दमोदक (र. रा. सु.) वाजीकरणे		१६–००	६–००
मूसलीपाक (यो.चि.) क्लीवत्वे	३३–००	१४–००	४–००
वांसावलेह (भै. र.) क्षय, कासे	१६–५०	७–००	२–००
श्लेष्मान्तक अवलेह (फा. वि.) शुष्कश्वासे कासे		१४–००	४–००
सौभाग्यशुंठी (यो.चि.) प्रसूतारोगे	१६–५०	७–००	२–००
सुपारीपाक (यो. चि.) प्रदररोगे	२१–५०	९–००	२–५०
हरिद्रा खण्ड (भै.र.) शीतपित्ते	१६–५०	७–००	२–००
हरीतकी खण्ड ,, शूले	१६–५०	७–००	२–००

सिद्ध घृत

नाम वस्तु	१ सेर	४ औंस
फलघृत (चक्रदत्त) योनिरोगे	२४–००	३–५०
ब्राह्मीघृत (चक्रदत्त) रसायने	२०–००	३–००
महात्रिफलादि घृत (चक्रदत्त) नेत्र रोगे	२४–००	३–५०

सिद्ध तैल

नाम वस्तु	२पौंड	४औंस
अर्क तेल (शा. ध.) कुष्ठे	१०–००	१–५०
आमला तेल (फा. वि.) शिरोरोगे	१२–००	१–७५
अपामार्गक्षार तेल (भै. र.) कर्णबधिरतायां	१०–००	१–५०
इरिमेदादि तेल (शा. ध.) मुखरोगे	१०–००	१–५०
कासीसादि तेल (शा. ध.) अर्शरोगे	१५–००	२–००
केशराज तेल (फा. वि.) केशवर्द्धने	१२–००	१–७५
चन्दनादि तेल (भै. र.) जीर्णज्वरे	१५–००	२–००
दशमूल तेल (भै. र.) वातरोगे	१०–००	१–५०
ब्राह्मी तेल (फा. वि.) बुद्धिवर्धनार्थे	१५–००	२–००
भृंगराज तेल (भै. र.) क्षुद्ररोगे	१२–००	१–७५
महानारायण तेल (शा. ध.) वातरोगे	३०–००	४–००
मरिचादि तेल (चक्रदत्त) कुष्ठे	१२–००	१–७५
महालाक्षादि तेल (शा. ध.) जीर्णज्वरे	१५–००	२–००
विषगर्भ तेल (यो. र.) वातरोगे	१२–००	१–७५
शुष्कमूलाद्य तेल (धन्वन्तरि) कर्णस्रावे	१२–००	१–७५
षटबिन्दु तेल (चक्रदत्त) शिरोरोगे.	१५–००	२–००
क्षार तेल (शा. ध.) कर्णशूले	१२–००	१–७५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्रीय प्रचलित चूर्ण

नाम वस्तु	१सेर	२०तो.	५तो.
अजमोदादि चूर्ण (शा. ध.) वातरोगे	७–००	२–००	०–६५
अग्निमुख (वं. से.) अजीर्णाधिकारे	१०–००	३–००	०–९०
अपचिविनाशी (फा.वि.)कण्ठमालारोगे	१०–००	३–००	०–९०
अविपत्तिकर (वं. से.) अम्लपित्ते	७–००	२–००	०–६५
अष्टांगलवण (च.) अग्निमांद्ये	१०–००	३–००	०–९०
अश्वगन्धादि (शा. ध.) वाजीकरणे	७–००	२–००	०–६५
अर्कलवण (वं. से.) उदररोगे	११–००	३–५०	१–०५
उलट कम्बल चूर्ण, ऋतुकष्टे	१०–००	३–००	०–९०
कामदेव चूर्ण (यो. र.) क्लीवत्वे	१०–००	३–००	०–९०
गंगाधर बृहत् (शा. ध.) अतिसारे	७–००	२–००	०–६५
गोक्षुरादि चूर्ण (वा.भ.)वाजिकरणे	८–००	२–५०	०–८०
चन्दनादि चूर्ण (यो. त.)प्रदरे, रक्तपित्ते	८–००	२–५०	०–८०
ज्वरनाग मयूर चूर्ण (भै.र.)सर्वज्वरे	२८–००	८–००	२–१५
तालीसादि चूर्ण (शा. ध.) ज्वरे,कासे	१०–००	३–००	०–९०
दाड़िमाष्टक चूर्ण (शा.ध.) अरुचिरोगे	७–००	२–००	०–६५
न्यग्रोधादि चूर्ण	७–००	२–००	०–६५
नारसिंह चूर्ण (च. द.) क्लीवत्वे	८–००	२–५०	०–८०
नारिकेल लवण (वं. से.) शूले	१०–००	३–००	०–९०
पंचसम चूर्ण (शा. ध.) उदररोगे	७–००	२–००	०–६५
नारायण चूर्ण (शा. ध.) उदरविकारे	७–००	२–००	०–६५
प्रदरान्तक चूर्ण (फा. वि.) प्रदररोगे	७–००	२–००	०–६५
पुष्यानुगचूर्ण केसरयुक्त (भै. र.)प्रदरे	२६–००	७–००	१–९०
महाखाण्डव (शा. ध.) अजीर्ण रोगे	१०–००	३–००	०–९०
लवणभास्कर (शा. ध.) अग्निमांद्ये	८–००	२–५०	०–७५
लाईचूर्ण'नायिका'(भै.र.)ग्रहण्याधिकारे	८–००	२–५०	०–८०
लवंगादि वृ. (शा. ध.) ज्वरे, कासे	१२–००	३–५०	१–०५
शिवाक्षार पाचन (फा. वि.) पाचने	१०–००	३–००	०–९०
सारस्वतचूर्ण (भै. र.) मस्तिष्क रोगे	८–००	२–५०	०–८०
सर्पगन्धा चूर्ण (ब्लडप्रेशर पर)	१२–००	३–५०	१–०५
स्वादिष्ट विरेचन (फा. वि.) मृदुरेचने	७–००	२–००	०–६५
सितोपलादि चूर्ण (शा.ध.)कासे, क्षये	२०–००	६–००	१–६५
सुदर्शनचूर्ण वृ. (शा.ध.) ज्वराधिकारे	१०–००	३–००	०–९०
सुदर्शन चूर्ण (चक्रिका)	१२–००	४–००	१–१५
हिंग्वाष्टक चूर्ण (शा. ध.) उदररोगे	१०–००	३–००	०–९०
हिंग्वादि चूर्ण (शा. ध.) उदररोगे	१०–००	३–००	०–९०
त्रिफला चूर्ण	७–००	२–००	०–६५

लेप और मरहम

नाम वस्तु	४०तो.	५तो.
अर्शघ्न मरहम, अर्शे	७–००	१–००
कालीमरहम, व्रणशोधनार्थे	३–००	०–५०
दशांग लेप, विसर्प रोगे	५–००	०–७५
नीली मरहम, व्रण रोपक	२–००	०–३०
पीली मरहम, व्रण रोपक	२–००	०–३०
पारदादिमरहम, जन्तुघ्न या कीटाणुनाशक	१४–००	२–००
श्वेत कुष्ठहरलेप, श्वित्र कुष्ठे	३–००	०–५०
सिध्महरलेप, सिध्मरोगे, खर्जुरोगे	७–००	१–००

क्वाथ

नाम वस्तु	१ सेर	२०तो.
दशमूल क्वाथ (शा. ध.) प्रसूतारोगे	१–५०	०–५०
देवदार्व्यादि क्वाथ (शा. ध.) ज्वरे	२–००	०–७५
लघुमंजिष्ठादि क्वाथ ,, ,, रक्तविकारे	२–००	०–७५
महामंजिष्ठादि ,, ,, कुष्ठे	३–००	१–००
महारास्नादि क्वाथ ,, वातरोगे	३–००	१–००
सुदर्शन क्वाथ (शा. ध.) सर्वज्वरे	३–००	१–००
हवन सामग्री	१–५०	०–४४

फार्मेसी द्वारा प्रस्तुत शुद्ध वस्तुयें

शुद्ध वस्तु	१सेर	५तो.	शुद्ध वस्तु	१सेर	५तो.
कज्जली शुद्ध पारदसे		५.००	रस कपूर		५.००
कान्त लोह	५.००	०.४०	रसौंत	७.००	०.५०
कुचला	३.२५	०.२५	राजावर्त 'मशगूल'		२०.००
कुचलाचूर्ण	६.००	०.५०	लोहचूर्ण रेतीका	४.००	०.३०
गन्धक आमलासार	१०.००	०.७५	वंग	२०.००	१.५०
गुग्गुल	६.००	०.५०	वज्राभ्रक(धान्याभ्रक)	५.००	०.५०
जमालगोटा	१८.००	१.२५	शंख टुकड़े	१.००	०.१२
तुत्थ	४.००	०.३०	शंखनाभी	१.५०	०.२०
दालचिकना		५.००	शिंगरफ	७०.००	४.५०
धतूर बीज श्याम	८.००	०.६०	शृङ्गिक (काला)	८.००	०.६५
पारद अष्ट संस्कार पूर्ण		१२.००	शृङ्गिकचूर्ण	१०.००	०.७५
पारद हिंगुलोत्थ	७०.००	४.५०	सीप मोती	१०.००	०.७५
भल्लातक	३.००	०.२५	संखिया		२.००
मण्डूर	१.५०	०.१५	हरताल वर्की		५.००
मैनसिल	१८.००	१.२५			

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वानस्पतिक क्षार

नाम वस्तु	२०तो.	५तो.		२०तो.	५ तो.
अपामार्ग क्षार	३-००	१-००	पलाश क्षार	४-००	१-२५
अर्क ,,	३-००	१-००	पुनर्नवा ,,	४-००	१-२५
इन्द्रायण ,,	४-००	१-२५	मूली ,,	३-००	१-००
इमली ,,	४-००	१-२५	यव ,,	३-००	१-००
कण्टकारी ,,	३-००	१-००	वज्र ,,	५-००	१-५०
कदली ,,	३-००	१-००	वांसा ,,	३-००	१-००
गोक्षुरू ,,	३-००	१-००	स्नुही ,,	४-००	१-२५
चना ,,	३-००	१-००	सत्यानाशी,,	४-००	१-२५
तिल ,,	३-००	१-००	सज्जी ,,	१-००	०-२५

वानस्पतिक तेल व प्राणिज स्नेह

नाम वस्तु	१पौण्ड	२औं.	१तो.	नाम वस्तु	१पौण्ड	२औं.	१तो.
अजवायन तेल	९.००	१.२५	०.३०	धतूरा तेल			२.२५
इलायची(जापानी)	६.००	१.००	०.२५	नीम तेल	३.००	०.५०	०.२०
इलायचीविलायती	२५.००	३.५०	१.००	बादामरोगन	१५.००	२.००	०.४५
कास्ट्रायल (आगरा)	२.००	०.३६		बावचीतेल	८.००	१.२५	०.३०
कुष्ठ तेल		४.००	१.००	बिरोजा तेल	८.००	१.२५	०.३०
खसखास रोगन	८.००	१.२५	०.३०	भिलावा तेल		२.००	०.५०
गुल रोगन	४.००	०.६५	०.१६	मालकंगनीतेल	६.५०	०.८८	०.२५
चावल मोंगरा	५.००	०.७५	०.२०	यूक्लिप्टसआइल	१०.००	१.५०	०.४०
जमालगोटा तेल	६०.००	८.००	२.००	रीछ की चर्बी	५.००	०.७५	
जायफल तेल	३०.००	४.००	१.००	लौंगतेल	२५.००	३.५०	१.००
जैतून तेल	९.००	१.५०	०.४०	वराहकी चर्बी	५.००	०.७५	
तुवरक तेल	१२.००	१.७५	०.४०	सूस मछलीकातेल		४.५०	१.००
तारपीन तेल	१.००	०.२०		सौंफतेल	२०.००	३.५०	०.७५
दालचीनीतेल	२५.००	३.५०	१.००	सांडेकातेल			३.००
				चन्दनतेल		९.००	२.००

विषोपविष

निम्नलिखित विष मंगाते समय लाइसेन्सदार अपने लाइसेन्स का नम्बर व पूरा २ पता, डिवीजन के साथ दें तथा डाक्टर व वैद्य महोदय पत्र में यह शब्द अवश्य लिखें कि "हम व्यवहार के लिये मंगाते हैं", तभी माल भेजा जायगा।

विष	१सेर	५तोला		१सेर	५तो
संखिया सफेद	६-००	०-६५	धत्तूर बीज श्याम	६-००	०-५०
संखिया खनिज	१२-००	१-००	धतूर बीज सफेद	३-००	०-२५
संखिया पीला	१२-००	१-००	मीठातेलिया सफेद	६-००	०-५०
संखिया लाल	१२-००	१-००	मीठातेलिया काला	८-००	०-६५
रसकपूर	६५-००	४-२५	हरतालवर्की बढ़िया	८०-००	६-००
रसकपूर पपड़ी का	७०-००	४-५०	हरतालवर्कीनं०१,	५४-००	३-७५
दारचिकना	६५-००	४-२५	हरतालवर्कीनं०२,	४०-००	३-००
			हरताल वर्की [illegible]	[illegible]	[illegible]

प्राणिज व खनिज द्रव्य

नाम वस्तु	१सेर	१तो०	नाम वस्तु	१ सेर	१तो.
अम्बर अशहब नं०१		३६-००	नौसादर ढ्यडा	२-००	
अम्बर अशहब नं०२		१८-००	पन्ना नं० १		८-००
अभ्रकश्याम बढ़िया	२-५०		पन्ना नं०२		५-००
अभ्रक वज्र नं० २	१-५०		पन्ना खरड		१-५०
अकीक दाना नं० १		१-५०	प्रवालशाखानं.१	३२-००	
अकीक दाना नं० २		१-००	प्रवाल मूल	२-००	
अकीक दाना नं० ३		०-५०	पारद	६०-००	
अकीक खरड़	४-००		पीतल चूर्ण	४-००	
कस्तूरी(खुतन)दानेदार		१२०-००	पत्थर का दिल		२-००
कस्तूरी नैपाली		११४-००	पुखराज		८-००
कस्तूरी काश्मीरी		९६-००	फिटकरी लाल	०-५०	
कछुआ खोपड़ी	२-००		फिटकरी श्वेत	०-६५	
कसीस हरा	०-५०		मधुश्वेत	४-००	
कासीस लाल	४-००		राजावर्त		२-००
कान्तलोह ग्वालियर	३-००		फिरोजा		१०-००
केंचुवे धुले	४-००		वंग ईंट की	१२-००	
कौड़ी पीली मोटी	३-५०		वीर बहूटी	४०-००	
कौड़ी पीली छोटी	२-००		बारासिंगा	१-५०	
गोरोचन असली नं० १		५४-००	बेरपत्थर	१४-००	
गोमेद		८-००	मुर्दासंग	३-००	
जहरमोहरा बढ़िया	८-००		मण्डूर पुराना	०-७५	
जस्ता पटड़ी का	२-००		मैनसिल	३-५०	
जस्ता फूल	२-५०		मैनसिल चूरा	२-५०	
जंगार असली	२४-००		माणिक्य चूनी नं० १		८-००
जुन्द वेदस्तर		२-५०	माणिक्य ,, नं० २		४-००
जोंक	६०-००	१-००	माणिक्य ,, नं० ३		१-५०
तुरमली बढ़िया		२०-००	माणिक्य खरड		०-३५
ताम्र तार बिजली	५-००		मोतीबसरई नं० १		८४-००
नखू (नख)	७५-००	१-००	मोतीबसरई नं० २		७०-००
नाग (सीसा)	२-००		मोती आस्ट्रेलिया नं०१		५४-००
नीला थोथा	२-२५		मोती आस्ट्रेलियानं० २		४२-००
नीलम नं० १		१२-००	मोती चावला बड़ादाना		४०-००
नीलम खरड		१-००	मोती चावला छोटा दाना		४८-००
नौसादर देशी	२-५०		मोती बेडोल		४२-००
			मोती बिंधा हुआ		४२-००
			मोती छिलका		१०-००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम वस्तु	१ सेर	१तो.
मोम देशी असली	६–५०	
रूपामक्खी चतुष्कोण	४–००	
रूपामक्खी(गोलदाना)	३–००	
लोहचूर्ण रेतीका	२–००	
वैक्रान्त नं० १	८–००	
वैक्रान्त नं० २	३–००	
शिलाजीत पत्थर पा.	६–००	
शिलाजीत पत्थर अ.	५–००	
शिलाजीत्त सूर्यतापी	३०–००	०–७५
शिलाजीतअग्नितापी	२४–००	०–६०
शिलारस	५–५०	
शोरा कलमी	१–५०	
शंख कीट		३–००
शंख टुकडे	०–७५	
शंखनाभी	१–००	
संग सरमाही	२४–००	
संग्रासक	८–००	

नाम वस्तु	१सेर	१तो.
सफेदा काशगरी	१–२५	
समुद्रफेन	३–५०	
सरतान	८–००	
सिंगरफ रूमी	६०–००	
सिंदूर	२–५०	
सीप मोती बाजारी	१८–००	
सीप मोती असली	६–००	
सुरमा काला	३–२५	
सुहागा	१–५०	
सुहागा चौकिया	३–५०	
सोना गेरू	०–५०	
सोनामक्खी अ.नं.२.	१२–००	
हरताल गोदन्ती वढ़िया	१–५०	
हरतालगोदन्तीन०२;	१–००	
हरताल पीली	८–००	
हाथी दांत बुरादा	२–००	

आयुर्वैदिक तथा यूनानी वनस्पतियां

नाम वस्तु	१सेर
अकरकरा असली	८०–००
अगर बुरादा	४–००
अतीस श्वेत कडु नं० १	३४–००
अतीस मीठी	६–००
अतिवला पंचांग (कङ्घी)	१–००
अनन्तमूल (बंगाल)	१–५०
अनन्तमूल (देशी)	१–००
अपराजिता (विष्णुक्रांता)	२–००
अपामार्ग वीज	१–२५
अमलतास गूदा	०–५०
अम्लवेद गुच्छी (चूका)	२–००
अर्जुन त्वक्	०–५०
अंजीर मूल	२–००
अंजीर फलसूखे	२–५०
अरणी छाल	०–७५
अशोक छाल	१–५०
असगन्ध नागौरी	२–००
अफतीमून	१६–००
अवेरशम	१६–००
अजवायन खुरासानी	४–००

नाम वस्तु	१ सेर
अजवायन देशी साफ	१–००
अजवायन दाना	१–००
अनारदाना	३–००
अजमोद	०–६५
आंवला	०–४५
अंकोल वीज	१–००
अंकोल छाल	०–७५
अर्कदुग्ध	८–००
अष्टवर्ग	६–००
इक्षुमूल	०–७५
इन्द्रयव मीठे	१–५०
इन्द्रयव कड़वे	१–००
इन्द्रायण मूल	१–००
इन्द्रायण फल	१–००
इमली छाल	०–७५
इलायची छोटी नं० १	३०–००
,, ,, नं० २	२७–००
इलायची वड़ी(डोडा)	६–००
इलायची दाना	१०–००
इरिमेद छाल	०–७५
ईसबगोल भूसी असली	४–५०
ईसबगोल दाना	१–५०
ईश्वर मूल	२–००
उटंगन बीज	२–००
उन्नाब	४–५०

नाम वस्तु	१ सेर	१तो.
उशवा मगरबी असली	९–००	
उलट कम्बल	७–००	
उशक	३–००	
उस्तेखदूस	९–००	
ऊंटकटारा	०–६५	
ऊद सलीव	६–५०	
एरण्डमूल	०–६५	
एरण्ड बीज	१–००	
एलवालुक फल	३–००	
एलुवा(मुसव्वर)असली	८–००	
ऋषभक(वहमनश्वेत)	३–००	
कचूर	९–००	
कतृण (रोसाघास)	०–७५	
कदम्बछाल	०–७५	
कपित्थ फल	०–७५	
कपूर कचरी	०–९०	
कमरकस	३–५०	
कमल केसर	८–००	
कनेर मूल	१–५०	
कत्था	१०–००	
कंचन फल	८–००	
कंवीला छना हुआ	४–००	
कश्मीरी पत्ता	२–००	
कपूर देशी डली का	१६–००	
कपूरभीमसेनी असली		२–२५
,, ,, बाजारी		०–७५
कमल गट्टे	१–२५	
कमल फूल	२–००	
करंज पत्र	१–२५	
करंज बीज	१–००	
कलिहारी(लांगुली)मूल	५–००	
कहरवा (सैपशल)		६–००
कहरवाशमईनं. १;२, १)तो.		०–६५
कहरवा चूरा		०–३०
कायफल	०–६५	
कालीजीरी	२–००	
काहू	२–००	
काकनासा(काकनज)	२–००	
काकनासा(वाघनखी)	०–७५	
काकोली श्याममूसली	१–२५	
काकोली (वंगाल)	१०–००	
काकोली (देहरादून)	४–००	
कालमेघ	१–००	
काकजंधा पंचांग	०–७५	
काकड़ासिंगी	३–५०	
कुकरौंधा	०–६५	

नाम वस्तु	१ सेर	१तो.
कुलंजन	१–७५	
कुन्दरगोंद	२–२५	
कुटकी	३–५०	
कुठ मीठी	१–००	
कुष्ठ उत्तम नं० १	६–००	
कुष्ठ ,, ,, २	३–००	
कुष्ठचूरा मोटा अच्छा	१–५०	
कुटज (कूड़ा) छाल	०–६५	
केसरमोंगरा काश्मीरी		१५.००
केसर तुरला		१३.००
कौंचवीज(कालेछोटे)	१–००	
कंटकारी लघु पंचांग	०–६५	
कंटकारी फल	१–५०	
कंटकारी वृहती पंचांग	०–६५	
कंकुष्ठ(उशारारेवन्द)	३५–००	
खतमी	२–५०	
खब्वाजी	१–००	
खस (वम्बई)	१–५०	
खदिर छाल	०–६५	
खसखास	२–००	
खुरफा	१–५०	
खूबकलां	२–५०	
गजपीपल	०–६५	
गम्भारी छाल	०–७५	
गन्ध प्रसारणी	०–७५	
गारीकून	३४–००	
गावजवां	३–००	
गिलोय	०–५०	
गुञ्जा श्वेत	५–००	
गुञ्जा लाल	१–००	
गुग्गुल महिषाक्ष साफ	३–००	
गुड़ ५०साल पुराना	८–००	
गुड़मार बूटी	१–००	
गुल गावजवां	२८–००	
गुलबनफशानं० १;	११–००	
गुलबनफशा नं०२,	९–००	
गुल सुर्ख पेशौरी	५–००	
गुल सुर्खदेशी(पञ्जाई)	४–५०	
गोखरू पञ्चाङ्ग	०–५०	
गोखरू फल लघु	१–००	
गोखरू फल वृहत	१–५०	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम वस्तु	१सेर
गोंदबबूल	३-५०
गोंदकतीरा	३-५०
गोंद छुहारा	५-५०
गोरखमुण्डी	०-६२
गोरखपान	१-००
गौरीसर (सिरवाला	१-५०
गँगेरन छाल	१-२५
चन्दन काष्ठ श्वेत	५-५०
चन्दन बूरा श्वेत	६-५०
चन्दन बूरा लाल	१-५०
चव्य (कृष्ण मिर्च मूल)	१-५०
चक्रमर्दबीज	०-५०
चन्द्रसूर (हालों)	१-००
चावल मोंगरा बीज	४-००
चाकसू	१-७५
चित्रक मूल छाल	३-५०
चिड़िया कन्द	१-५०
चिरायता	२-५०
चिरौंजी	५-००
चोकमूल पञ्जाब	१-२५
चोपचीनी असली	५-००
चोरक (ग्रन्थिपर्ण)	३-००
जलपीपल	०-७५
जलनिम्ब	१-५०
जलापा	३०-००
जरिश्क मीठा	४-००
जवासा	१-००
जायफल	४४-००
जावित्री	४४-००
जामुन गुठली	०-५०
जीवक (हरा)	४-००
जीवपुत्रक (जियापोता)	१-५०
जीरा श्वेत	४-५०
जीरांकाला असली नं.१	१२-००
जीवन्ती (बंगाल	३-५०
जूफा	५-००
जैपाल बीज(जमालगोटा)	४-००
जंगली प्याज सूखा	१-००
तगर (सुगन्ध वाला मूल)	२-००
तालमखाना	२-००
तालीस पत्र असली	२-००
तिंतडीक(समाक दाना)	१-५०
तुरजबीन असली	५-५०
तुख्म रेहां	१-००

नाम वस्तु	१सेर
तुख्म कसूस असली	२-००
तुख्म खिरनी	५-००
तुख्म बालंगा	२-५०
तुलसीपत्रअसली	५-००
तेजपत्र	०-७५
तेजबल बीज (कबाबा)	१-५०
तेजबल त्वक्	१-५०
तोदरी लाल	४-००
तोदरी श्वेत	७-००
दन्तीमूल	१-००
दरूनज अकरबी	७-००
दरियाई नारियल	८-००
दशमूल चूर्ण (क्वाथ)	१-५०
दशमूल बिना कुटा	१-००
दालचीनी	६-५०
दारुहल्दी (लकड़ी)	०-४०
दारुहल्दी बुरादा	१-५०
देवदारु	०-७५
देवदारु बुरादा	१-७५
देवदालीफल(बन्दालडोडा)	१-५०
द्रोणपुष्पी	०-७५
धवलबरुआ (चांदमरुआ)	८-००
धतूरा पंचांग	०-७५
धातकी (धावेके) फूल	०-७५
धनियां	१-२५
धमासा	१-००
धूपलकड़ी	३-००
नकछिकनी	१-००
नगन्ध बावरी	१-००
नागरमोथा	०-६५
नासपाल	०-७५
नागकेसर असली	३०-००
नागकेसर बाजारी दाना	२-५०
नागबला	०-७५
निर्गुण्डी पंचांग	०-६५
निर्मली	१-००
निम्बत्वक	०-५०
निंबोली नीम की	०-५०
निम्बफूल	१-५०
निर्विसी (जदवार)	१२-००
निसोत(त्रिवृता]	७-००
नीलकण्ठी	२-५०
नीलोफर फूल	१-५०
पुतङ्ग काष्ठ	१-५०
पतङ्ग बुरादा	३-००

नाम वस्तु	१सेर
पटोल पत्र	२—००
पद्मकाष्ठ (पद्माख)	०—५०
परस्योशां (हंसराज)	१—००
प्रसारणी	०—७५
पाटला त्वक्	०—५०
पाठा मूल(पाढ़ मूल)	१—००
पाषाण भेद	०—७५
पिप्पली लघु	१२—००
पिप्पली वृहत	५—५०
पिप्पली मूल नं०१	८—५०
पिप्पली मूल नं. २;	५—००
पीपल जटा	३—००
प्रियंगू फल (बङ्गाल)	८—००
प्रियंगू (पञ्जाब) असली	१—५०
पित्तपापड़ा (शाहतरा)	०—५०
पियाबांसा	०—७५
पिपरमेन्ट५४)पौंड	१—७५ तो०
पृश्निपर्णी लम्बा पत्र	३—००
पृश्निपर्णी	१—००
पुनर्णवा मूल	१—००
पुष्कर मूल	४ ५०
पुदीना पंचांग	०—७५
पुदीना जंगली	०—७५
फरफीऊन विलायती१पौंड	२—००
फालसा छाल	०—७५
फिन्दक	२—००
फिरंजमुश्क	२—००
वच मधुर	३—५०
वच मधुर बारीक	३—००
बला पञ्चांग (खरेटी)	०—७५
वहमन सफेद	३—००
वहमन लाल	३—००
वहुफली	०—७५
वच तीक्ष्ण	०—५०
बकायन छाल	०—५०
बकायन फल	०—७५
बबूल छाल	०—५०
वृद्धि (सालब कसेरू)	४—००
ब्रह्म दण्डी	०—७५
ब्रह्मीबूटी धुली हुई	२—००
ब्रह्मीबूटी	१—५०
बराहीकन्द	१—००
बावची	०—६५
बालछड़ (बिछीलोटन)	३—५०
बादरंजबूया	०—६५

नाम वस्तु	१सेर
बादावरद	१—५०
बायविडंग	१—५०
बासा मूल त्वक्	३—००
बांसा पत्र (पञ्चाङ्ग)	०—५०
बांसा मूल	०—७५
वट जटा	०—७५
विजया बीज मोटे	१—२५
विहीदाना	११—००
विदारी कन्द	१—००
विधारा बीज	१०—००
विधारा मूला	१—००
विरोजा सूखा	१—००
विरोजा गीला	१—००
बिस्फायज	१—५०
विजयसार छाल	१—००
विजयसार लकड़ी	०—७५
विजयसार गोंद(दमुलखवैन)	५०—००
विल्वछाल	०—७५
बीजाबोल (मुरमकी)	१४—००
बीजबन्द (काले)	१—५०
बीजबन्द लाल	०—६०
बंशलोचन नं. १	६२—००
वंसलोचन नं. २	५०—००
वंशलोचन नं. ३	४५—००
भिलावां	०—५०
भूआंवला	१—५०
भोजपत्र	१—२५
मकोय दाना	३—००
मगज कद्दू	४—५०
मगज खरबूजा	५—००
मगज खीरा	६—००
मगज तरबूज	१—४०
मगज बादाम	१०—००
मस्तगी रूमी असली	२८—००
मयूर शिखा	१—५०
ममीरी मूल	८—००
महाबला (सहदेवी)	०—७५
महामेदा	८—००
मूषाकर्णी असली	८—००
मरोड़फली	०—७५
मैनफल	१—००
महुआ फूल	१—००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम वस्तु	१ सेर
माजूफल	८—५०
माषपर्णी	१—००
माईं	१—५०
मिर्च श्वेत	८—००
मिर्च काली नं० १	३—००
,, ,, ,, २	२—७५
मुनक्का काला (असली)	२—००
मुश्कतरामसी	२—५०
मुद्गपर्णी	०—७५
मुलहठी	१—५०
मूसली श्वेत	६—५०
मूसली श्याम	१—००
मेदा (शकाकल)	३—००
मेढ़ासिंगी	१—५०
मैदा लकड़ी	०—५०
मोचरस असली	३—५०
मौलश्री छाल	१—५०
मजीठ	३—००
रतन जोत	१—७५
रसौंत	३—००
रास्ना मूल बंगाल	१—७५
राल	३—५०
रुद्रवन्ती	२—००
रेणुका बीज	२—५०
रेशा खत्मी	३—००
रेवंद चीनी	१—७५
रोहितक छाल	१—००
लता कस्तूरी	७—००
लवंग (लौंग)	१२—५०
लाख पीपल	३—००
लाजवन्ती बीज (छोटे)	३—००
लोवान कौड़िया	५—५०
शरपुंखा	०—६५
श्योनाक छाल	०—७५
शालपर्णी	०—७५
शिवलिंगी बीज	६—००
शङ्खपुष्पी	१—००
समुद्रशोष	१—२५

नाम वस्तु	१ सेर
सत्यानासी बीज	१—००
सप्तपर्णछाल	१—५०
सपिस्तान(लसूड़ियां)	०—७५
सकमूनिया ऊंटनी	१पौ.२५—००
सतावर	सेर २—००
सनाय	२—००
समुद्र फल	०—६५
स्थौणेयक (जम्बू)	४—००
सातला (शिकाकाई)	१—५०
सालब प्याजी	४—५०
सालब लहसुनिया	४—५०
सालब मिश्री	४५—००
सालब पंजा नं०१;	४५—००
सालब पंजा ,, २;	२६—००
सिरसबीज सफेद	२—००
सिरस बीज काले	३—००
सिम्बलमूसली	१—००
सीतलचीनी(सर्दचीनी)	१२—००
सुपारी काठा	५—५०
सुपारी दक्षिणी	७—००
सुगन्धवाला पंचांग	१—००
सत्व गिलोय	१०—००
सत्व अजवायनप्रतिपौंड	२२—००
सत्व पुदीना ,, ,,	५४—००
सत्व लोवान ,, ,,	६—००
सत्व निम्बू सेर	६—००
सत्व मुलेठी	१०—००
सुरञ्जां शीरीं (मीठी)	५—६०
सुरञ्जांतलख (कड़वी)	६—००
सुहांजना छाल	०—६५
सोंठ पूर्वी (वम्बई)	२—००
सोमवल्ली (ईफेड्रावलेगरस)	१—५०
सोया	०—६५
सौंफ	२—५०

नाम वस्तु	१ सेर
सौभाञ्जन बीज	३—००
हरमल बीज	०—५०
हाथी सुण्डी	०—७५
हाऊवेर	१—००
हिरन तूतिया	२०—००
हिरनखुरी	०—६५
हिंगु पत्री	१—५०
हींग तालाब	४०—००
हींग अंगूरी	३६—००
हींग हीरा	३२—००
हींग वाजारी	६—००
क्षीर काकोली(बंगाल)	६—००
क्षीर विदारी	१—५०
त्रायमाण	४—००

वर्क (पत्र) सोना चांदी

स्वर्ण दफ्तरी १२०पत्र ५रत्ती	७.५०
स्वर्ण ,, ,, १ मा.	१४.००
स्वर्ण ,, ;, २ ,,	२६.००
स्वर्ण ,, ,, ३ ,,	४१.००
स्वर्ण का चूरा १ ,,	१०.५०
चांदी १ दफ्तरी ३ ,,	१.५०
चांदी दफ्तरी ४॥ ,,	२.५०
चांदी ,, ६ ,.	३.००
चांदी ,, ८ ,,	३.५०
चांदी ,, १० ,,	४.००
चांदी चूरा १ तो.	३ ५०

हरीतकी भेद

नाम वस्तु	१सेर
हरड़ जीवन्ती नं० १	२४-००
हरड़ जीवन्ती नं० २	१६-००
हरड़ जीवन्ती- नं०३,४,५	१२-००,८-००,४-००
हरड़जीवन्ती साधारण	२-००
हरड़जीअभया(लघुवीजा)न०१,	१२.०
हरड़ अभया-नं० २, ३, ४	८-००, ६-००, ४-००
हरड़ विजया गोल	२०-००
हरड़ अमृता (काबली)- नं० १, २, ३;	१०-००,४-००,२-००

हरीतकी प्रति नग

हरीतकी नग एक ३।)तो.	४०-००
हरीतकी ,, ,. ३) ,,	३०-००
हरीतकी ,, ,,२।।।) ,,	१५-००
हरितकी ,, ,, २।।) ,,	१०-००
हरीतकी ,,,, २।=) ,,	८-००
हरीतकी ,, ,, २।-) ,,	६-००
हरीतकी ,, ,, २।) ,,	४-००
हरीतकी ,, ,, २≡) ,,	३-५०
हरीतकी ,, ,, २=) ,,	३-००
हरीतकी ,, ,, २-) ,,	२-५०
हरीतकी ,, ,, २) ,,	२-००
हरीतकी १तो. ११माशा की	१-५०

आयुर्वेदीय सिद्धांतों की विज्ञान सम्मत विवेचना के लिये एवं नव्य ज्ञान विज्ञान की नित्यप्रति हो रही प्रगति से अपने आपको परिचित रखने के लिये प्रसिद्ध मासिक पत्र 'आयुर्वेद विज्ञान' का स्वाध्याय करें। वार्षिक मूल्य केवल ३)

आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय

२२-फतहबाजार, दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी द्वारा आविष्कृत

गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया से रजिस्टर्ड

हजारों बार की परीक्षित औषधियां

अनेमीन

(पाण्डु, कामला, हलीमक की औषध)

लाभ——विषम ज्वर के पश्चात् यकृत, प्लीहा बढ़ जाने पर यह दवा लाभ करती है। शरीर में रक्त की कमी को दूर करती है। एक सप्ताह के सेवन से ही इसका प्रभाव दिखाई देता है। रक्त की कमी, शोथ, जलोदर आदि रोगों में रामबाण है। मात्रा १ गोली सुबह, १ गोली शाम को।

सेवन विधि—दही, तक्र व दूधसे दोनों समय सेवन करावें

१४ गोली के पैकट का मूल्य १—५०

अमीरी जुलाब

योग——**गुलाब की गुलकन्द में कुछ सरल रेचक द्रव्य मिलाये गये हैं।**

गुण—नाजुक और अमीर मिजाज के आदमी या निर्बल स्त्रियों के लिये जुलाबी गुलकन्द बड़ी स्वादिष्ट है और बच्चे से लेकर बड़ों तक जिनका मृदुकोष्ठ हो बड़ी मुफीद है। इसके खाने से न तो जी मचलाता है, न पेट में दर्द, जलन व मरोड़ ही होता है; इतना बेनजीर जुलाब है कि रात्रि को सोते समय ३-४ माशा पानी से या दूध से खा लो सुबह को १-२ दस्त खुलकर आ जाते हैं। जुलाब लेना हो तो सुबह को गर्म दूध या गर्म जल से ३-४ माशे के लगभग दवा खा लें २-३ दस्त खुलकर आ जाएंगे।

२॥ तोले दवा के पैकट का मूल्य १—५०

अनिद्रांतक वटी

(उन्माद और रक्तचाप की उत्तम दवा)

गुण—जिन रोगियों को खून का दबाव बढ़ जाने के कारण नींद नहीं आती या किसी मानसिक रोग जैसे उन्माद, मालीखोलिया, चिन्ता या अन्य ऐसे विकार जिनका प्रभाव दिमाग पर बना रहता है और नींद नहीं आती-ऐसी हालत में इस दवा को दो चार दिन खिलाने से ही रोगी को आराम की नींद आने लगती है। उक्त कारण के उन्माद रोगियों में से ८० प्रतिशत को यह पूरा लाभ पहुँचाती है। २॥ तोला के पैकट का मूल्य १—५०, ५ तोला का २—५० है।

मात्रा—१ से २ टिकिया पानी या दूध से दें।

अलसोरीन

(मुँह के छालों की दवा)

लाभ—किसी भी रोग के कारण मुँह में छाले पड़े रहते हों और जख्म बने रहते हों, यह दवा उक्त छालों को ठीक करने **के लिये उत्तम है**। मुँह में छिड़कते ही ठण्डक मिलती है, और दर्द शीघ्र ही जाता रहता है।

½ औंस का पैकट मूल्य १—५०

ऑपथलमीन

लाभ——आंख आना या आंख दुखना, आंख की पुरानी लाली, आंख के गोलकों का दर्द, रोहे या कुकरे, धुन्ध, जाला, आंख से पानी जाना और खारश पर फौरन लाभ दिखाती है। **बहुत थोड़ी दवा** सलाई द्वारा आंख में लगावें। दो ड्राम की शीशी का मूल्य १—५०, **३ माशे शीशी का मूल्य ०—५०**

आस्थमीन

(बलगमी दमा की उत्तम दवा)

लाभ——यह दवा बलगमी दमा पर अच्छा काम देती है, जिसका दौरा प्रभातको अधिक होता हो और बलगम गाढ़ी, पीली अधिक मात्रामें निकलती हो, कुछ दिन सेवन करने पर दमा जड़ से जाता रहता है।

सेवन—१ गोली पानी या दूध से दें।

१४ गोली के पैकट का मूल्य १—५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एट्रोफील

(सूखिया मसान रोग की **उत्तम** दवा)

गुण—यह दवा बच्चों के **सूखा** रोग (मसान) में अत्यन्त गुण करती है। जिसे लोग सूखिया मसान या परछाई पड़ना भी कहते हैं, उसमें यह दवा अत्यन्त लाभ करती है। कुछ दिन सेवन करने से बच्चा खूब मोटा ताजा हो जाता है। १ गोली सुबह १ शाम पानी से दें। १४ गोली के पैकट का मूल्य १—५०

एलोप्सीन

(बालचर की **उत्तम** दवा)

गुण—कभी-कभी एकाएक सिर के या दाढ़ी मूँछ के बाल गिरने लग जाते हैं और दुवन्नी चुवन्नी के बराबर जगह बिल्कुल साफ हो जाती है। इस रोग को बालचर या बालखोर भी कहते हैं। इसके लिये हमारी यह औषध अत्यन्त लाभदायक है। सेवन-थोड़ी सी मरहमको अँगुलीसे उस जगह पर लगाकर मालिश करें। आधे औंस के पैकट का मूल्य १—५०।

एस. टुथ पौडर

(सर्वश्रेष्ठ सुगन्धित मंजन)

लाभ—दांतों का दर्द, दांतों में पानी लगना, दांतों का कमजोर होना, हिलना, मुँहसे दुर्गन्ध आना इत्यादि दांतों व मसूढ़ों की बीमारियों में लाभ करता है।

एक औंस का पैकट मूल्य ०—५० न. पै.

एस. डिस्पेप्सोल

शाही हाजमा

(बड़ा स्वादिष्ट, पाचक चूर्ण)

लाभ—वदहजमी, खट्टे डकार, वमन, मितली, अतिसार, उदरपीड़ा आदि को दूर करता है। १ पाव के पैकट का मूल्य २—००। ५ तोले के पैकट का मूल्य ०—६२

एस. पायोरीन

(पायोरिया की अचूक औषध)

लाभ—यह धारणा अब छोड़ दो कि पायोरिया दांत निकलवा कर ही जा सकता है। एस. पायोरीन के प्रयोग से एक तो गला हुआमांस ठीक होकर पुनःभरने लगता है, दूसरे हिलते हुए दांत फिर मजबूत होजाते हैं।

प्रयोग—ब्रश या दातुन पर दवा को लगाकर मसूढ़ों की जड़ों में मंजन की तरह लगाओ, और कुल्ला कर डालो। एक औंस के पैकट का मूल्य २—५०

एस. बाल घूंटी

प्रायः देखा जाता है कि जहां पेट में नुक्स हुआ कि बच्चों के पेट में दर्द, अतिसार, ज्वर आदिके उपद्रव दिखाई देने लगते हैं। ऐसे समय यह बाल घूँटी बड़ी ही लाभदायी है। इसकी १-२ माशे तक की मात्रा जलमें घोलकर पिला देने से एक दो **दस्त** खुलकर आ जाते हैं। यदि १ माशेसे कम दिया जाय तो मल का पाचन होजाता है जिससे आते हुए दस्त बन्द होजाते हैं और ज्वर आदि उपद्रव सब जाते रहते हैं। इस घूंटी को सप्ताह में एकबार बच्चों को देते रहें तो किसी किस्म की बीमारी होने का भय नहीं रहता।

१ तोला का पैकट मूल्य०—५०; २॥तो०का १—५०

एस. बाल शर्बत

(बच्चों की ताकत के लिए आयुर्वैदिक शर्बत)

यह शर्बत बच्चों की प्रत्येक निर्बलता में अत्यन्त लाभदायक है। बीमारी से उठे हुए बच्चों के लिए तो यह शर्बत अमृततुल्य है, अत्यन्त रक्त-वर्द्धक तथा शक्ति वर्द्धक है। पाण्डु, रक्त की कमी आदि रोगोंमें बड़ों को भी फायदा करता है। मू० २औंसकी शीशी ०—७५

एस. वेजीटेबोल

(विष्टब्धहर और रेचक गोली)

लाभ—रात्रि को सोते समय ३ से ४ गोली तक यदि खाई जायें तो सुबह तक एक दो पाखाने साफ आ जाते हैं, ४ से ६ गोली दिनमें खाई जावें तो चार पांच जुलाब श्राकर उदर साफ हो **जाता है**।

२० गोली का पैकट ०—५० न. पै.

८० गोली का पैकट मूल्य १—५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओजीना

नये-पुराने जुकाम, पीनस की तत्काल फलप्रद औषध

लाभ—जिन व्यक्तियों का जुकाम के कारण दिमाग कमजोर हो या जुकाम बिगड़कर नजला या पीनस बनगया हो, कोई औषध शरीर के अनुकूल न बैठती हो ऐसी दशा में ओज़ीना की दो चार खुराकें ही जुकाम ठीक कर देती हैं।

१० तोला माजून का पैकट मूल्य १—५०

कटारीन

लाभ—दमा की बीमारी, पुरानी खांसी में सुबह के समय जब काफी बलगम खारिज होती हो और बलगम की अधिकता से रोगी अधिक कमजोर हो चुका हो तो कटारीन के सेवन से अत्यन्त फायदा होता है।

सेवनविधि—सारी दवाको १० तोला खांड में डालकर मिलालें और शीशी में भर कर रखलें खुराक १½-१½ माशे दोनों समय पानी से खांय। १ मास की दवा के पैकट का मूल्य १—५०

कर्णदुःख हर तैल

लाभ—यह तेल कान के दर्द को फौरन बन्द करता है। इससे भिन्न इसमें सबसे बड़ी खूबी यह है कि कान से पानीवत् पाक या राद सदा बहता हो, कान के भीतर जख्म हो रहे हों तो इसके कुछ दिन डालते रहने से कान का बहना बिल्कुल बन्द हो जाता है। १ तोले की शीशी ०—५०, २॥ तोले की शीशी १—००

कफसोल (खांसी की दवा)

लाभ—राजयक्ष्मा की खांसी को छोड़ कर बाकी प्रत्येक खांसी में इसके सेवन से अवश्य लाभ होता है। श्लेष्मज श्वास व दौरे के श्वास को भी रोकती है। इसके सेवन से पुरानी से पुरानी खांसी भी जाती रहती है

मात्रा—आधी रत्ती से एक रत्ती तक शहदमें दें।

३ माशे का पैकट मू० ०—३०

१ औंस के पैकट का मूल्य २—००

कायाकल्पवटी

लाभ—जिन आदमियों को अस्थि व्रण हो रहे हों, गम्भीर व्रण निकलते रहते हों, नासूर हो गया हो, जिनके जख्म जल्दी न भरते हों, शरीर पर रक्त विकार के भयङ्कर चिन्ह बने रहते हों, ऐसे व्यक्तियों को इन गोलियों के सेवन करने से पूरा लाभ होता है

५० गोली पैकट १—५०

१०० गोली पैकट २—५०

कार्बंकोलीन

लाभ—कार्वंकल फोड़ा, शराविका, कच्छपिका अदीठव्रण आदि जिसके नाम हैं, यह मरहम उस व्रण को राजी करने में प्रभाव दिखाता है। यह मरहम-केन्सर में भी लाभदायक हैं। जो व्रण प्रसरण शील भयङ्कर उपद्रव वाले दाहकारी हों जिनमें मांस, त्वचा गलती चली जाती हो उनमें अत्यन्त शांति देता है।

२॥ तोले के पैकटका मूल्य ४—००

कुन्तल-जीवन

(केशवर्धक लेपन)

लाभ—जिन व्यक्तियों के बाल अधिक झड़ते हों या किसी निर्वलतादि कारणों से टूटते रहते हों या आधुनिक कृत्रिम सुगंधित तेलों के बुरे प्रभाव से गिरने लग रहे हों, किसी चिन्ता, शोक के कारण निर्बल होकर झड़ रहे हों अर्थात सामूहिक रूप में समय से पूर्व ही बाल कमजोर होकर गिर रहे हों तो उस दशा में इस लेप को एक सप्ताह लगा कर स्नान करने से बालों को पुनः नवजीवन प्राप्त होता है। बालों की ग्रंथियां इस लेप से पुनः पुष्ट होकर दृढ़ बालों को जन्म देती हैं और इसके १—२ मास इस्तेमाल से बाल इतने सघन लम्बे और दृढ सचिक्कण हो जाते हैं कि स्त्रियां उन्हें देख कर प्रसन्न हो जाती हैं।

प्रयोग विधि—स्नान से पूर्व १ तोला दवा को पानी में घोलकर पतला करलें और उसे सिर में लगालें। कुछ देर मलें और उसके सूखजाने पर स्नान करलें। चाहे साबुन लगा कर स्नान करें कोई हर्ज नहीं। यही सरल इसकी प्रयोग विधि है। २० तोले के पैकट का मूल्य २—००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खोराञ्जन

(पड़वाल का सुरमा)

लाभ-जिन व्यक्तियों की पलकें सुर्ख और मोटी होकर उनमें फुन्सियां निकला करती हैं तथा आंखों में बाल चुभते रहते हैं, जिन्हें पड़वाल या पद्मकोप भी कहते हैं, इस अञ्जन के लगाने से उक्त रोग समूल जाता रहता है।

३ माशा की शीशी का मूल्य ०—७५

६ माशा **की** शीशी का पैकट १—२५

गनरोल

(**पूयमेह**, मूत्रकृच्छ्र की दवा)

लाभ-यह योग इतना अद्‌भुत है कि तीव्र से तीव्र और जीर्ण से जीर्ण **पूयमेह** में भी लाभ **करताहै इसकी** पहली मात्रा से ही लाभ दिखाई देता है-कृच्छ्रता दवा खाने के दो तीन घंटे बाद ही बंद हो जाती है और जख्म दो तीन दिन में भर जाता है

२४ कैपसूल का पैकट मूल्य ४—००

डाईसैंट्रोल

(पेचिस मरोड़ की दवा)

लाभ-यह औषध ९९ प्रतिशत व्यक्तियों को पेचिस में अवश्य ही लाभ करतो है। कैसा ही मरोड हो, आंव और खून जाता हो गुद-भ्रंश या कांच निकलती हो, दिन में तीन-चार मात्रा खाते ही आराम आजाता है। पुराने से पुराने पेचिश वाले भी इसके सेवन से निराश नहीं हुए।

सेवन विधि-प्रथम हल्का जुलाब देकर पश्चात ६-६ माशे औषध **दिन में दो या तीन बार** तक्रसे दें।

२ औंस के पैकट का मूल्य ०—७५

४ **औंस का पैकट** मूल्य १—५०

छूमंत्र

लाभ-सिर दर्द, दाढ़ दर्द और इनके अतिरिक्त कहीं भी कोई दर्द हो जरासी दवा लगाते ही दर्द छू-मन्त्र हो जाता है, बिच्छू, बरैया, ततैय्या (भिड़) आदि के काटने पर इसके लगाने से जहर जाता रहता है

मूल्य प्रति शीशी ०—७५, १ दर्जन ८—५०।

दद्रुसंहार

लाभ—यह दवा सचमुच दाद पर लगाने से दाद को जड़ से मिटा देती है, और सबसे बड़ी खूबी तो यह है कि लगती जरा नहीं। बिना तकलीफ के दाद को समूल नष्टकर देती है।

½ औंस मरहम **की** शीशी ०—५०

१ दर्जन का मूल्य ५—००

न्यूरेलजीन

(आधाशीशी की त्वक्‌वेधी औषध)

लाभ--आयुर्वेद में सर्वप्रथम त्वक्**वेधन** द्वारा सिर दर्द को लाभ पहुँचाने वाली यह औषधि है। एकबार के त्वक्**वेधन** करने पर दर्द इस तरह जाता है जिस तरह मन्त्र द्वारा भूत। एक शीशी ५०-६० बीमार के लिये काम में आ सकती है। मूल्य प्रति पैकट १—५०

नज़लोल

(नजले की अपूर्व औषध)

लाभ--नजला चाहे हलक में गिरता हो या नाक के रास्ते से बहता हो प्रत्येक प्रकृति के व्यक्ति को अवश्य ही लाभ करता है। उष्ण प्रकृति व्यक्ति इसे शर्बत के साथ सेवन करें। **२० गोली के पैकट का मूल्य** ०—५०, ८० गोली का पैकट मू० १—५०

न्यूमोनिओल

(न्यूमोनिया में ८० प्रतिशत लाभकारी दवा)

लाभ—न्यूमोनिया की प्रत्येक अवस्था में इसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवन करातेरहने से फेफड़े व श्वास नाली पर पड़ा हुआ न्यूमोनिया का प्रभाव दब जाता है। हृदय की निर्बलता में, व हार्टफेल की स्थिति में यह बहुत लाभ करता है। १४ गोली का मूल्य १—५०

पुंसोलीन (तिला)

लाभ—ध्वजभंग (नामर्दी) चाहे प्रकृति विपरीतमैथुनसे हुआ हो अथवा अति मैथुनसे हुआ हो, एकबार तो यह अपना फल अवश्य दिखाता है और नष्ट हुई शक्तिकोपुनः लौटा लाता है।

एक सप्ताह के सेवन योग्य दवा का मूल्य १—५०

पुंसोल

(ध्वजभंग की दवा)

लाभ—जिन व्यक्तियोंको इच्छानुसार समय पर चैतन्योदय नहीं होता, या मैथुनके समय शिथिलता आजाती है वह विकार चाहे किसी कारण से हो, सब में लाभ करता है।

१४ खुराक का मूल्य १—५०

प्रोराईगोन

(खारिश, खुजली की दवा)

लाभ—यह औषध प्रत्येक प्रकार की गीली सूखी छूतदार खारिश (खुजली)में अत्यन्त लाभप्रद है।

प्रयोग — दवा में १० तोला तेल सरसोंका मिलाकर मालिश करें और बाद में साबुन लगाकर स्नान करें।

१ पैकट का मूल्य १—५०

प्लोरीन

(पार्श्वशूल या दर्द पसली की दवा)

लाभ—सर्दी लगकर या न्यूमोनिया के आरम्भ में जो श्वास के साथ पसलियों के नीचे दर्द उठ रहा हो और दर्दके कारण श्वास न लिया जाता हो, उस हालत में इसकी एक मात्रा देते ही दर्द जाता रहता है। यह जोड़ों के दर्द, बदन के दर्द, पेट के दर्द में भी अपना चमत्कार दिखाती है। ३ माशे का पैकट मूल्य ०—३० न. पै. । आधे औंस के पैकट का मूल्य १—५०

फीवर पिल्स

लाभ—हमने हजारों रोगियों पर उक्त दवा को आरम्भिक ज्वरावस्था में देकर इसका खूब अनुभव लिया है। हर प्रकार के साधारण ज्वर को यह दवा एक से दो दिन में ही अवश्य उतार देती है। जिनका बुखार दूर नहीं होता उनके ज्वर के रूप को भी यह दवा प्रकट कर देती है और वह चौथे पांचवें दिन ज्वर का रूप स्पष्ट हो जाता है। इसके सेवन से कभी कोई कष्ट नहीं बढ़ता। २० गोली का मूल्य ०—५०, ८० गोली का मूल्य १—५०

मकर ध्वजवटी

शक्ति वर्धक प्रसिद्ध योग

योग—स्वर्ण-घटित मकरध्वज, केसर, कस्तूरी आदि मूल्यवान द्रव्यों के योग से यह दवा तय्यार की गई है। निर्बलता, प्रमेह, धातु क्षीणता, शीघ्रपात, स्वप्नदोष आदि में लाभदायी पाई गई है। इस योग की मांग अधिक देखकर हमने भी निर्माण करना आरम्भ कर दिया है।

१४ गोली का पैकट मूल्य ३—००

माजून सिर दर्द

लाभ—कुछ व्यक्तियों को दौरे से सिर दर्द की बीमारी होती है। दर्द इतना जोर का होता है कि रोगी अत्यन्त व्याकुल हो जाता है। कुछ बीमारोंको वमन भी आती है। सिर दर्द दो तीन दिन रह कर जाता रहता है। कई व्यक्तियों को दर्द आरम्भ होने के समय पीठ की ओर से दर्द सिरकी ओर बढ़ता प्रतीत होता है। यह दर्द ऐसा खराब है कि कई २ साल पीछा नहीं छोड़ता। हमने उक्त माजून का अनुभव कई वर्ष से किया है। इस माजून को यदि दो चार महीना सेवन किया जाय तो पुराने से पुराना सिर का दर्द जाता रहता है।

मात्रा—६ माशे से १ तोलातक। दोनों समय पानी से सेवन करना चाहिए। मूल्य एक पाव का पैकट ४—५०

मेहोरीन

[प्रमेह की दवा]

लाभ—पेशाब के साथ मिलकर आने वाली या पेशाब के पीछे आने वाली लहेस को रोकता है तथा बहुमूत्र में भी बड़ा ही लाभ करती है। बड़ा ही बलवर्द्धक, शक्तिवर्द्धक है। १४ गोली की शीशी का मूल्य १—५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेमो

[सूखी खांसी, तालुकण्टक, कौवा गिरने की दवा)

लाभ—जब बच्चोंके दांत निकलनेवाले होते हैं तो प्रायः बच्चों का तालु लटक जाता है और हरे पीले दस्त आने लग जाते हैं। बच्चा रात दिन सिर मार कर रोता रहता है। गर्दन सूख जाती है, कान की लौर पतली पड़ जाती है, मन्द-मन्द ज्वर बना रहता है। ऐसी हालत में रोगीके तालु भागको उक्त दवा लगी अंगुली से दो-चार बार उठाने पर और इसी दवाको दिनमें दो तीन बार खिलाने पर अवश्य हीलाभ होता है। इससे भिन्न जिन व्यक्तियों को सोते समय सीधा लेटने पर सूखी खांसी उठती है उनको इसके सेवन से अद्भुत लाभ होता है। मूल्य १ औंस का पैकट १—५०

रसवटी

(संग्रहणी के लिये आविष्कृत)

लाभ—पुराने अतिसार ग्रहणी जिसमें भोजन अपक्व रूप में ही दस्तों के द्वारा निकल जाता है पेट में गुड़-गुड़ाहट होकर प्रायः दस्त आते हैं। यह रसवटी ऐसी तकलीफ को दो चार दिन में ही ठीक करदेती है मल तो दो तीन दिन में बन्ध कर आने लगता है और भूख बढ़ जाती है।

इसमें अफीम, धतूरा बीज आदि कोई नशीली चीज नहीं पडती, यह तो कुछ वनस्पतियों का सार है।

सेवन—तक्र से १—२ गोली (मात्रा ४ माशे तक)

मूल्य ५ तोला २—५०, १० तोला ४—००

रोमेटीन

(गठिया या आमवात की दवा)

लाभ—सन्धिवात, चलितवात, नुकरस, गठिया आदि व्याधियां चाहे उपदंश जनित हों या स्वतन्त्र नई पुरानी सब में **उत्तम** लाभ पहुंचाती है।

मूल्य ५० गोली का पैकट ३—००, १०० गोली का ५—५०

रिनालकोलीन

(पथरी निकालने वाली दवा)

लाभ—यह दवाई दर्द गुर्दा व पथरीकी उत्तम औषध है। १ मात्रा देते ही दस मिनट में वृक्कशूल बन्द हो जाता है और मूत्र साफ आता है। कुछ दिन में धीरे-धीरे सारी पथरी घुलकर बाहर आजाती है, हजारों बार की आजमाई हुई औषध है। १० तोला कच्चे दूधमें पावभर पानी मिलाकर उसके साथ दोनों समय सेवन करें। मात्रा ६ माशे। ४ औंस पैकट का मूल्य २—५०

रक्त शोधक अर्क

(५० के लगभग रक्तशोधक औषधियों का अर्क)

लाभ—बरसातके दिनोंमें बच्चों को सफेद पानीवाली फुन्सियां निकलती व फूटती रहती हैं जहां फुन्सी निकलती है वहां छाले जैसी सूरत बन जाती है। बड़े आदमियों को उपदंश, आतशक आदि के कारण रक्त के विकार हो जाते है। उनको यह अर्क बहुत फायदा करता है। हजारों बार आजमाया हुआ उत्तम रक्त-शोधक अर्क है

मूल्य एक पौंड अर्क १—५०

ल्यूकोरीन टेबलेट

(प्रदर की **उत्तम** औषध)

लाभ—स्त्रियों को प्रदर हो जाता है जिसके कारण कमर में दर्द, भूख की कमी व निर्बलतादि बढ़ जाती है, इस दवा के सेवन से सब दूर हो जाती है। १४ टिकियों का पैकट मूल्य १—५०

ल्यूकोरीन वर्तिका

(प्रदर-विनाशनी-वर्ती)

लाभ—यह वर्तिका इतनी फलप्रद है कि रात्रि को एक बर्ती रखने पर अगले दिन ही इसका फल दिखाई देता है। अनेक बार केवल वर्ती के प्रयोग से ही प्रदर की शिकायत जाती रहती है।

१४ बत्ती के पैकट का मूल्य १—५०

विषमोल

(कुनैनसम लाभकारी मैलेरिया की दवा)

लाभ—सर्दी लगकर चढ़ने वाले बुखारों में तो यह दवा रामबाण है और कुनैन से निम्न बातों में विशेष है—एक तो कड़वी नहीं, दूसरे चढ़े बुखार में दीजिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसरे गर्मीखुश्की नहीं करती, चौथे शर्बत निम्बू खटाइ आदि के साथ दें, पांचवें लम्बे चौड़े परहेज की जरूरत नहीं। सेवन--१ टिकिया सुबह एक टिकिया शाम को निम्बू के शर्बत या पानी से सेवन करायें। मलेरिया के दिनों में यदि ५--७ दिन एक २ गोली नित्य सेवन कर ली जाय तो फिर मलेरिया ज्वर के होनेका भय नहीं रहता। मूल्य ८० गोली का पैकट १–५० २० गोली का पैकट ०–५०

व्रणोद्धूलन

(फोड़ा फुन्सी का पांउडर)

लाभ—छोटे-छोटे बच्चों को वर्षाकाल में प्रायः फोड़े फुन्सियां व पाका निकलता रहता है और कई कई महीने बच्चे विचारे इन फोड़े फुन्सियों से तकलीफ उठाते रहते हैं। हमारा यह धूड़ा ऐसा है जिसे लगाते ही जलन दर्द, पीप, पानी सब बन्द हो जाते हैं और रोते हुये बच्चों को अपूर्व शान्ति मिलती है। यह धूड़ा या उद्धूलन स्फोटी (छाले) फैलने वाली फुन्सियां, खारश के जख्म व एक फुन्सी के लाग से बनने वाली अन्य फुन्सियां सब में अच्छा लाभ करता है।

मूल्य ५ तोला १–५०, १ तोला ०—४०न०पै०

शाही नस्य

लाभ—सिर दर्द, जुकाम, नजला नाक में छिछड़ा और नकसीर जाना आदि कष्टों में सेवन करके चमत्कार-पूर्ण लाभ देखिये। ६ माशे वाली शीशी का मूल्य ०–५० एक दर्जन शीशी का मूल्य ५–००

शाही सुरमा

लाभ—नेत्र ज्योति का कम हो जाना, चश्मा लगाने की आदत पड़ना, नेत्रकी खारिश, पानी जांना व मैल आना आदि कष्ट इसके सेवन से दूर होकर अद्भुत लाभ होता है।

१॥ माशा छोटी शीशी ०–२५, १ दर्जन का२–५०
३ माशा बड़ी शीशी ०–५०, १ दर्जन का५–००

श्लेष्मान्तक अवलेह

(दमा की नव्य आविष्कृत औषधि)

कटारीन और अस्थमीन तो दमा की विशेष विशेष अवस्था में लाभ करते है। किंतु श्लेष्मान्तक अवलेह प्रत्येक प्रकार के दमा पर अद्भुत लाभ दिखाता है। यह दौरा तो नहीं रोकता, पर एक एक तोला इसे दोनों समय सेवन करने पर धीरे धीरे दमाका दौरा कम होता चला जाता है। यही नहीं दमा का मूल कारण-सुबह सोकर उठतेही खांसी आना और बलगम निकलना-यह जो नित्य प्रति होता रहता है इसे शनैः २ कम करता है। धीरे धीरे रोगी को इतना आराम मिलता है कि वह चित्त चारपाई पर लेटने लग जाता है। और चित्त लेटने पर गले में खराश होकर जो खांसी आती है वह बिलकुल जाती रहती है। थोड़े दिन में ही इसके सेवन से बलगम का उत्पन्न होना, गले में सरसराहट, नाक का बन्द होना, दमकशी वगरह जितने भी दमे के चिह्न हैं सब जाते रहते हैं। प्रयोगविधि--१ तो० अवलेह को १० तोला श्वासान्तक अर्क के साथ दोनों समय सेवन करें। मूल्य १ पाव पैकट का ४–००

श्वासान्तक वटी

गत वर्षों में न जाने कहां से श्वास रोगियों की संख्या एकाएक हमारे औषधालय में बढ़ गई। रोगी ऐसे पुराने आये जिनको "श्लेष्मान्तक अवलेह" से लाभ तो होता था पर प्रभातको श्वासारम्भक खांसी का जो ठसका उठता था वह जल्दी न रुकता था, वही ठसका धीरे २ कुछ मिन्टों में श्वासावरोध की ओर रोगी के श्वासको बदल देता था इसको कैसे रोका जाय ? इसके निवारणार्थ कई योग बनाये, अन्त में यह गोलियाँ कारगर सिद्ध हुई। इन गोलियों को मिश्री की डली के साथ मुंह में डालकर सुबह, शाम व रात तक ८-१०-१२ गोली तक चूसते रहने से इसका इतना प्रबलप्रभाव देखा गया कि श्वासावरोध के साथ श्वास के खिंचकर आनेका कष्ट घटते२ बिल्कुल घटगया और रोगी अनुभव करने लगा कि मेरा दमा दम के साथ न जाकर "श्लेष्मान्तक अवलेह और श्वासान्तक वटी" से अवश्य जाता रहेगा।

इन दोनों औषधियों के दो दो, तीन तीन माह सेवन से स्वस्थ होने की सम्भावना विश्वास में परिणत होते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखी गई है। मूल्य ५० गोली के पैकट का २—००, १०० गोली के पैकट का ४—००

श्वासान्तक अर्क

यह अर्क भी श्वासके रोगियोंके लिये ही तय्यार किया गया है। कई रोगियों पर श्लेष्मान्तक अवलेह के साथ दिया गया। जिनका गला खुश्क रहता था या बलगम बहुत खुश्क थी खांसी भी आती रहती थी उन्हें इस अर्कके पीते ही श्लेष्म शीघ्र निकलने लग पड़ी और रोगी को उससे चैन मिला।

मूल्य प्रति पौंड १—००

शीतपित्तान्तक रस

शीतपित्त या उदर्द ऐसा साधारण किंतु अत्यन्त कष्टदायक रोग है जो कई२ वर्षों तक रोगी का पीछा नहीं छोड़ता। वैद्य और डाक्टर इसे रक्तविकार समझ कर जो चिकित्सा करते हैं उसमें सफल नहीं होते। १० वर्ष से अनुभव लेते २ अनुभव से यह रस ऐसा सिद्ध हुआ है कि ४-६ मात्रा देने पर पुराने से पुराना उक्त रोग जड़ से चला जाता है। पथ्य कोई नहीं, मात्रा १ रत्ती शहद से दोनों समय।

मूल्य १ तोला २—०० रु०। ६ माशे का १—५

शीत वातेश्वर रस

प्रभाव—हृदय पर होता है।

गुण—बहुतसे हृदय रोगसे पीड़ित रोगियों को यह कष्ट देखा जाता है कि एकाएक ठण्डा पसीना आने लगता है और स्पर्श से शरीर ठण्डा लगता है हाथ-पैर भी ठण्डे शीत होजाते हैं। हृदय बैठता हुआ या उड़ता हुआ प्रतीत होता है कुछ व्यक्ति तो व्याकुलता वश बतला भी नहीं सकते, कुछ कहते हैं हमें कुछ हो रहा है। हृदय की गति रुक-रुक कर चलती है, उस समय हृदयावसादके लक्षण दिखाई देते हैं, इस दशा में यह 'शीत-वातेश्वर रस' अमोघ सिद्ध हुआ है, नव्य आविष्कृत सद्यफल-प्रद रस है।

मात्रा—१ रत्ती शहदसे मिलाकर चाट लें या खांडमें डालकर पानी से सेवन करें। कुछ दिन सेवन करने पर हृदय रोगसे मुक्ति मिल जाती है।

मूल्य १ तोला २—००।

श्री सुख धारा

(प्रत्येक घर में सदा सर्वदा रहनी चाहिये)

(१) पेटका दर्द, दांत दर्द, सिरदर्द वगैहरा कोई दुःख दर्द हो उसको फौरन हरन कर सुख देने वाली धारा

(२) बिच्छूके डंक का दर्द, वर्य्या, ततैय्या के डंक का दर्द और कनखजूरा के जहर का दर्द दूर कर सुख लाने वाली धारा।

(३) वमन, रेचन से उत्पन्न कष्ट, विशूचिका की भयंकर व्यथाको मिटाकर सुख पहुंचाने वाली धारा।

प्रयोग—पेटदर्द, वमन, कालरा में ५—१० बूंद खांड में डालकर पानी से दें। विच्छू, वर्य्या, ततैय्या के डंक मारे स्थान पर लगावें। दांत दर्द, दांत में कीड़ा लगा हो, रूई की फुरेरी बनाकर लगावें, बहुत अच्छी कीट विनाशक, कीटाणु नाशक, शरीर संरक्षक है।

छोटी शीशी का मूल्य १—०० बड़ी शीशी २—००
छोटी शीशी १ दर्जन १०—०० बड़ी शीशी १ दर्जन २०—००

सारस्वत वटी

(हिस्टीरिया की दवा)

यह औषध अभी तैयार की है और कई रोगियों पर आजमाया है दिमागी कमजोरी से या मानसिक व्यथा से हिस्टीरिया का दौरा होता हो तो उसमें लाभ करती है। यह गोलियां नींद न आना मानसिक उद्वेग आदि मानसिक कष्ट में भी लाभ करती हैं। १०० गोली का मूल्य ३—००रु० वी. पी. खर्च भिन्न।

सेवनविधि—पानी से एक-एक गोली दोनों समय। वैद्य लाभा-लाभ से सूचित करें।

स्वदेशी चाय

जुकाम, खांसी, गले की खर्खरी, साधारण ज्वर, दर्द बदन, सर्दी लगना, हड़ फूटन इत्यादि में इसका सेवन चाय की तरह करें। इसमें चाय जैसे नशे का दुर्गुण नहीं। मूल्य प्रतिपैकट आधा पाव ५० नये पैसे, एक छटांक २५ नये पैसे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिफलोल

(उपदंश-आतशक की दवा)

लाभ—बिना मुँह आये ही यह दवा उपदंश को जड़ से उखाड़ देती है और पुराने से पुराने रोग के फिसाद को दो सप्ताह मेंदूर कर देती है ।

सेवन विधि—दवाई जो केपसूल में बन्द है केपसूल सहित पानी से निगल जाना चाहिये, दोनों समय ।

१४ केपसूल का बन्द पैकट मूल्य २—५०

सुरमा ज्योतिवर्द्धक

(नेत्र ज्योति बढ़ाने वाला सुरमा)

लाभ—जिन व्यक्तियोंकी नेत्र ज्योति किसी भी कारण से कम हो रही है वह एकबार अवश्य ही प्रयोग कर के देखें नेत्र की ज्योति बढ़ाने में इस जैसा उत्तम सुरमा नहीं मिलेगा । ३ माशे का पैकट मूल्य ०—५०

६ माशे का ,, १—००

हिमसोल

(गर्मी, बुखार, घबराहट को दूर करने वाली दवा)

लाभ-बुखार की अधिक घबराहट, अधिक गर्मी, धूप से लू लगना, चक्कर, प्यास आदि कष्ट बढ़नेपर इसका सेवन कराइये और अमृततुल्य लाभ देखिये । इसकी समता की शीतलता उत्पन्न करने वाली अन्य ओषधि आपको किसी भी चिकित्सा में नहीं मिलेगी ।

एक औंस का पैकट मूल्य १—५०

हुपीन

(बच्चों की काली खांसी की दवा)

लाभ—काली खांसी या कुत्ता खांसी, ऐसी बुरी बीमारी है कि इसकी चिकित्सा कठिन है, किन्तु इस दवा के सेवन से अच्छा लाभ होता है । मात्रा ½ रत्ती । ½ औंस के पैकट का मूल्य १.५०, ३माशे के पैकट का मूल्य ४५न. पै.

हैडीक्योरीन

(सिर दर्द की दवा)

लाभ--सर्दीसे, गर्मीसे, कब्ज से और बुखार के समय होने वाले दर्द में इसे दीजिये, ५-७ मिनट में इस दवा का लाभ देखिये । इसको कितनाही सेवन करें हृदय और रक्त पर कोई बुरा प्रभाव नहीं होता । पुराने से पुराने सिर दर्द में या दौरे से होने वाले दर्द में भी यह अपना लाभ दिखाती है ।

४० टिकियों का पैकट मूल्य १—५०

लक्ष्मणारिष्ट

(आसव-विज्ञान)

मुझे यह योग एक तपस्वी बाबा ने बताया था । योग बनाने का अवसर १९२१ में लगा था । मैंने जिन वन्ध्या स्त्रियों को सेवन कराया इसके सेवन से ५० प्रतिशत के सन्तानें हुई किन्तु पुरुषों में यदि वन्ध्यत्व हो उसमें इससे लाभ होता है या नहीं ? इसका मुझे ज्ञान नहीं था, मैंने यह योग अपने लिखे आसव-विज्ञान में प्रकाशित कर वैद्यों से प्रार्थना की कि इस योग को बना कर उसके लाभालाभ से हमें सूचना दें । इस ३० वर्ष में एक दर्जन वैद्य इस योग को बनाकर समय-समय पर हमें सूचना देते रहे हैं, उनमें से तीन वैद्यों ने लिखा है कि यह योग स्त्री-वन्ध्यत्व में जितना लाभ करता है उससे अधिक पुरुषों को लाभ करता है ६० वर्ष की आयु को पहुंचे व्यक्ति इसके सेवन से सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ हुए ऐसा उनके पत्रों से प्रकट हुआ । इसीलिए हमने इसे विक्रयार्थ निर्माण करने का निश्चय किया । आशा है जो वैद्य इसे बनाने में असमर्थ हैं इससे लाभ उठायेंगे । मूल्य प्रति पौण्ड ३-०० सेवन विधि साथ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुटाई, पिसाई, गोली, टिकिया

बनवाई भाव

कोई भी दवाई जो एक सेरसे कम होगी कुटाई १-००सेर
१ सेर से ५ सेर तक दवाई की कुटाई ०—७५ ,,

नोट नं० १—अधिक दवाई का चूर्ण कराना हो तो रेट विशेष पत्र-व्यवहार द्वारा तय करें।

नो० २—कुचला, निर्मली, चिरायता, विधारा-मूल आदि कठोर चीजें यदि कोई सेर दो सेर कुटावेगा तो इनकी कुटाई १—५० प्रति सेर होगी। मन दो २ मन कुटाने के लिये पत्र-व्यवहार करें।

गोली, टिकिया बनवाई

½ रत्ती से २ रत्ती तक का भाव २—०० पौण्डं।
२½ रत्ती से ५ रत्ती तक १—५० पौण्ड।
६ रत्ती से १ मासे तक १—०० पौण्ड।

इसमें पालिश कराई भी शामिल है।

चिकित्सा सम्बन्धी उपकरण

शरीर-ताप-मापक (Thermometer)—जील का मूल्य ३—५०
" " जापानी १—५०
दवाई मिलाने की छुरी (Spatula)—मूल्य—बढिया १—२५
साधारण १—००
गर्म पानी की रबड़ की बोतल (Hot Water Bottle)—का मूल्य ५—००
फुफ्फुस परीक्षा यन्त्र (Stethoscope)— मूल्य १०—००
सूचिकाभरण पिचकारी (English Record Syringe) २ c.c. का मूल्य ६—००, ५cc ८—५०, १० c.c. ११—००
प्रांब (शलाका)—मरहम-पट्टी के लिए मूल्य ०—५०
कान धोने की पिचकारी (Ear Syringe)—२ औंस ६—००
४ औंस ८—००
दांतों का जम्बूर (Universal Tooth Forceps)--मूल्य ६—००
द्रव औषध मापक ग्लास (MeasureGlass)—
२ ड्राम ०—८५, १ औंस १—२५, ४ औस १—५०
ड्रापर (Droppers)—बढिया १—०० दर्जन
दुग्धआचूषक-ब्रैस्टपम्प (Breast pump)-- मूल्य १—५०
ग्लिसरीन सिरिंज (Glycerine Syringe)-२ औंस ६—००
बस्ति यंत्र (Irrigator) नाली व टूटी सहित-मूल्य ५—५०
स्पिरिट लैम्प (Spirit lamp) कांच का— मूल्य २—००
कैंची (Scissors)—बढिया मूल्य २—००

पावर और हाथ से चलने वाली टिकिया बनाने की मशीन

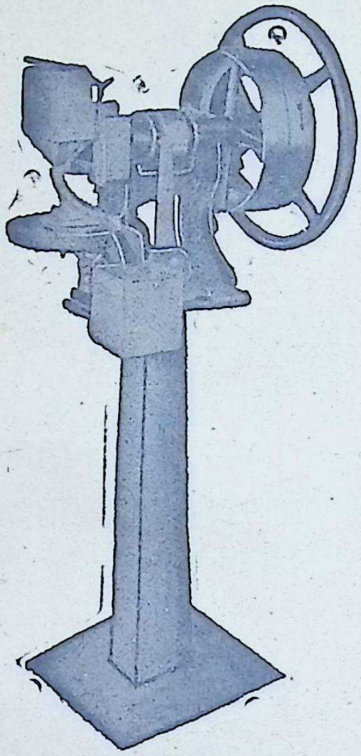

½ रत्ती से लेकर 1½ माशे तक की टिकिया बनाने वाली बड़ी मशीन। मशीन के साथ दो साइज डाई पंच होंगे। मूल्य ४००—००

स्थायी ग्राहकों के लिये विशेष रियायत

कार्यालय के नियमानुसार पेशगी भेजना आवश्यक है यदि आप १०) रुपये एक बार भेज कर स्थाई ग्राहक बन जांएगे तो आप को निम्न सुविधाएं दी जाएंगी।

(१) फार्मेसी की प्रस्तुत तथा पेटेन्ट दवाईयों पर एक-आना प्रति रुपया (एजण्ट न होने पर) कमीशन दिया जाएगा

[२] बार-बार पेशगी भेजने की आवश्यकता न रहेगी स्थाई ग्राहक नम्बर देना पर्याप्त होगा।

[३] यह रकम स्थाई ग्राहक न रहने पर वापिस कर दी जायगी।

मैनेजर
पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी
अमृतसर, व देहली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवास पेटिका नं० १ जर्मन डिजाईन

स्टील क्लिप सहित ऊपर चमड़ा चढ़ा हुआ
साईज
११½ × ६ × ८ इंच
इसमें होमियोपैथिक ४ ड्रामकी ४८, १ औंसकी १२ और २ औंस स्टापर ४ शीशियां आती हैं।
मूल्य ३४—००

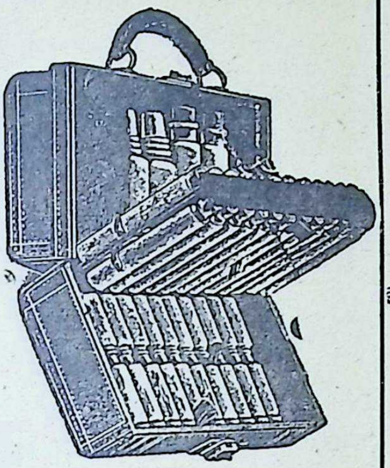

प्रवास पेटिका नं० २ जर्मन डिजाईन

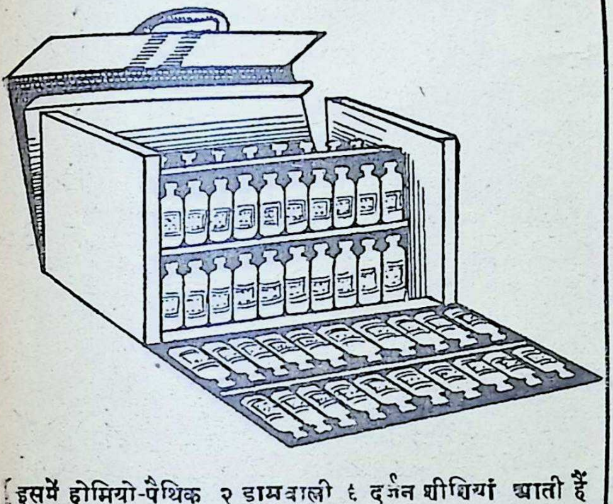

इसमें होमियो-पैथिक २ ड्रामवाली ६ दर्जन शीशियां आती हैं
मूल्य २४—००

प्रवास पेटिका नमूना नं० ३

बहुसंख्यक वैद्यों के हमें पत्र प्राप्त हुए हैं जिस में प्रार्थना की गई है कि प्रवास पेटिकामें दो साइज आने चाहियें। अर्थात् बड़ी शीशियोंके साथ छोटी शीशियां भी आसकें अब हमने प्रवास-पेटिका नमूना नं० ३ भी तैयार कराया है। इसमें होमियोपैथी की २ ड्राम वाली २४ शीशी, ४ ड्राम वाली १८ शीशी तथा १ औंस की लम्बी गोल ८ शीशी होती हैं। इस का साईज़ 9½×6½×4½ इंच है। मूल्य २१—००

औषध पाकेट बक्स नं० १

यह बक्स बटुए के समान है। बक्स सुन्दर और छोटा होने से जेब में आ सकता है। प्रत्येक वैद्य को यह बक्स अवश्य रखना चाहिए। इस में २ ड्राम होमियोपैथिक की १८ शीशी आ सकती हैं। अगर आप वैद्य हैं और दूर रोगी देखने जाना है बड़ा बक्स नहीं ले जा सकते तो इसे आराम से जेब में डालकर ले जाइये। मूल्य शीशी युक्त ६—००

औषध पाकेट बक्स नं० २

इसमें २ ड्राम होम्योपैथिक की १२ शीशियां आसकती हैं। मूल्य ५—००

नोटः—प्रवास पेटिकाएं ग्राहक की इच्छानुसार डिजाईन प्राप्त होने पर भी बना कर भेजी जाती हैं। परन्तु आधी रकम पेशगी आनी आवश्यक है।

हाथ से गोलियां बनाने की मशीन

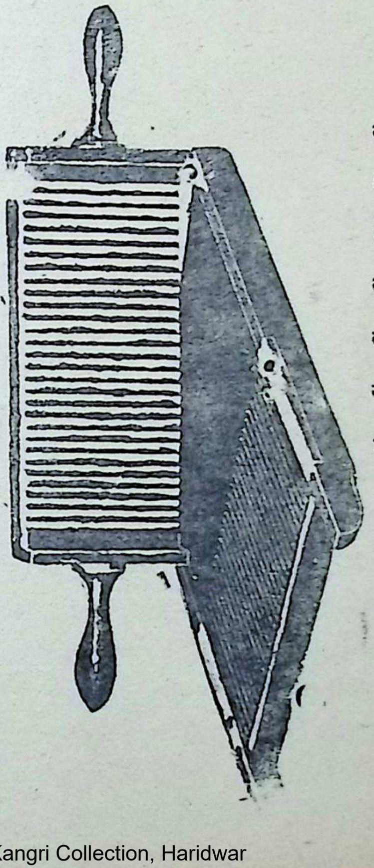

इस मशीन से बड़ी आसानी से एक व्यक्ति दिन में ४—५ सेर दवाई की गोलियां तैयार कर सकता है। गोली का साइज २½ से ३ रत्ती का रहता है।
मूल्य ३०—००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य की अनुपम कृति

भस्म-विज्ञान

भाषा-टीका सहित दो भागों में मूल्य १०)

धातु भस्मों व रस-चिकित्सा के आविष्कारक कौन थे वह कब हुए ? और आयुर्वेद में रस-चिकित्सा का प्रवेश कैसे हुआ ? साधु सन्तों, महात्माओं की भभूती, सिद्धों की रस सिद्धियों का ज्ञान वैद्यों तक कैसे पहुँचा ? इसके इतिहास का ज्ञान आयुर्वेदज्ञों को बिलकुल नहीं, वास्तव में रस चिकित्सा सिद्धों महात्माओं की देन है। इसका सही इतिहास जानना चाहते हो तो भस्म-विज्ञान का उपोद्घात पढ़िये।

इसमें ८४ सिद्धों का सचित्र विवरण सहित इतिहास दिया है, जिसको खोजने में स्वामीजी ने भारतवर्ष के बड़े-बड़े पुस्तकालयों में जा-जाकर १४० से ऊपर हस्तलिखित ग्रन्थों में से खोजकर सारा विवरण ढूंढ़ निकाला है। वह ऐसा अकाट्य प्रामाणिक ग्रन्थ है कि वैद्य समाज पढ़कर स्तम्भित व चकित रह गया है। ग्रन्थ की यही एक विशेषता नहीं।

सब से बड़ी विशेषता तो इस ग्रन्थ की यह है कि जितने भी सिद्धों महात्माओं द्वारा भस्में बनाने की विधियां आविष्कृत हो चुकी हैं तथा जो रस ग्रन्थ अभी तक प्रकाशित नहीं हुए उनमें जो भस्म बनाने की विधियां आई हैं वह सब अप्रकाशित होने के कारण वैद्य समाज उनके निर्माण को नहीं जानता, उनको ढूंढ कर सप्रमाण इस ग्रंथ में संग्रह किया गया है। यही नहीं, इससे भी अधिक विशेषता यह है कि यूनानी, मिश्रानी चिकित्सा में जिन पत्थरों, रत्नों, धातुओं की भस्में बनती हैं उनका ज्ञान भी वैद्यों को बहुत कम है वह समस्त विधियां भी इस ग्रन्थ में सप्रमाण संकलित कर दी गई हैं। इससे भिन्न अनेक धातु भस्मों की विधियां जो अब तक महात्माओं के गुरु परम्परा में चली आ रही थीं, उनमें से अनेकों विधियों को बड़े प्रयत्न से प्राप्त कर सब को स्वामी जी ने प्रकट कर दिया है। पुस्तक कैसी है ? इस पर विद्वान् वैद्यों की सम्मतियों से इसका अन्दाजा लगाइयेगा।

भस्म विज्ञान पर कुछ सम्मतियां

'स्वास्थ्य' कृष्ण गोपाल धर्मार्थ औषधालय
कालेड़ा बोगला

रस, भस्म विज्ञान भारतीय चिकित्सा विज्ञान का महत्वपूर्ण विषय है, इस विषय के सभी ग्रन्थों में प्रायः रस-भस्मों का परिचय सूक्ष्म रूप से मिलता है। किन्तु विशद विवेचन सह स्वतन्त्र पुस्तक अभी तक प्रकाशित नहीं हुई थी जो रस एवं भस्मों के विषय में ठोस शिक्षा दे सके। इस कमी को लक्ष्य में रख कर आयुवद के प्रकाण्ड विद्वान् स्वामी हरिशरणानन्द जी ने अनेक रस ग्रन्थों के आधार स्वरूप बहुत परिश्रम करके संकलित कर सुन्दर हिन्दी टीका सह इस पुस्तक की रचना की है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन के लिये लेखक को में बधाई देता हूं।

इस ग्रन्थ में भस्म बनाने की प्रचीन शास्त्रोक्त विधि विभिन्न प्रमाण भत ग्रन्थों से ही हैं उसे नव्य विज्ञान संमत उल्लेख किया है और महत्वपूर्ण सूचनायें भी देदी ह। इसके अतिरिक्त इस सम्बन्ध में उपोद्घात के भीतर लेखक ने धातु, उपधातु, रस, रत्न आदि के सम्बन्ध में विज्ञान सम्मत विस्तृत विवेचन किया है, यह अनुभव लेखक को भारतीय रसशास्त्र एवं नव्य विज्ञान सम्पन्न रसायन शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् डा० प्रफुल्लचंद्रराय द्वारा परम्परागत मिला। फिर काफी धन खर्च द्वारा दीर्घ काल पर्यन्त परिश्रम करके तथा विश्लेषण करवा कर अनुभव प्राप्त किया है इस तरह जो अनुभव मिला वह लेखक ने हृदय खोलकर पुस्तक में दे दिया है।

पुस्तक के प्रारम्भ में रस शास्त्र का इतिहास दिया है, एवं रसाचार्यों के नाम, परिचय तथा समय का उल्लेख भी साथ-साथ दिया है, संपूर्ण भस्मों का विस्तृत विवेचन किया है एवं साथ में हिन्दी टीका देकर और अपना अनुभव दर्शाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक को अत्यन्त उपयोगी बना दिया है यह पुस्तक फार्मेसी वालों के लिये मार्गदर्शक है, एवं आयुर्वेद के विद्वान्, सामान्य चिकित्सक, छात्रगण तथा सर्व साधारण आयुर्वेद प्रेमी सज्जनों के लिये अत्यन्त उपयोगी होगी मैं हृदय से इसका प्रचार चाहता हूं।

जय आयुर्वेद, जोधपुर अगस्ताङ्क १९५४—

भस्म-विज्ञान के दो भाग हमारे पास आये हैं। प्रथम में तो आयुर्वेद में धातुओं का उपयोग कब कैसे हुआ और उसके बाद रस विद्या तथा शिव, नागार्जुन, ८४ सिद्ध आदि के सम्बन्ध में विभिन्न मत मतान्तरों का वर्णन है। पारद क्या वस्तु है? इस विषय पर लेखक ने प्रगतिशीलता से काम लिया है और लेखक ने जगत् को एक नवीन देन दी है। आगे द्रुति विधानों के बाद महारसों, वायु और वायव्य तत्त्वों, धातुओं की रचना और उसके कार्यों पर गम्भीरता पूर्वक प्रकाश डाला गया है। तृतीय साधनपाद द्वारा इस विद्या और चिकित्सा के उपयोग में आने वाले विभिन्न उपकरणों पर भी प्रकाश डाला गया है ताकि नवीन रस वैद्य व चिकित्सक कहीं अटकें नहीं।

द्वितीय भाग में भस्मों के प्रकार और भस्मों की निर्माण विधि पर अनुभव पूर्ण विवेचन दिया गया है। लेखक ने व्यवहार में लाकर विभिन्न गुणों अवगुणों एवम् तकलीफों व सुविधाओं का स्पष्ट वर्णन किया है जो ग्रन्थकी खास विशेषता का निर्देशक है।

अब तक इस विषय पर अधिक ग्रन्थ नहीं लिखे गये हैं और जो लिखे भी गये हैं वे केवल शाब्दिक परिवर्तन मात्र एवम् टीका मात्र ही सिद्ध हुए हैं। किन्तु प्रस्तुत पुस्तक में लेखक का अक्षय ज्ञान भण्डार हमारे सम्मुख आता है? इस बातका प्रत्यक्ष अनुभव प्रस्तुत पुस्तक द्वारा आसानी से हो सकता है।

विद्वान लेखक की विद्वत्ता पूर्ण पुस्तक का अध्ययन प्रत्येक वैद्यको अवश्य करना चाहिए। विशेषतः रस चिकित्सक इस पुस्तक को पढ़कर नवीन पथ प्राप्त करेंगे। वास्तव में परीक्षा संस्थाओं को केवल टीका मात्र ग्रन्थको पाठ्यक्रम में न रख ऐसे मौलिक एवम् ठोस साहित्य पूर्ण ग्रन्थों को निर्धारित करना चाहिए ताकि विद्यार्थी आरम्भ से ही उनके सं- [illegible] शुद्ध बनें और आयुर्वें- [illegible] समर्थ

सिद्ध हो सकें। वैद्योंकी स्थितिको देखते हुए ग्रन्थका मूल्य कुछ विशेष है किन्तु उपयोगिता को देखते यह मूल्य नहीं के बराबर है।

अनुभूत-योगमाला-बरालोकपुर, इटावा (यू. पी.)

यों तो भस्मों का विधान यत्र तत्र ग्रन्थों में वर्णित ही था परन्तु वैज्ञानिक विधिसे उनका वर्णन कहीं भी उपलब्ध न था, किस धातुमें कौन २ से अवयव कितने २ परिमाण में है? क्यों यह लाभकारी हैं? कैसे तत् प्रतिनिधि रूप में किस भस्म का उपयोग हो सकता है आदि २ विषयों की पूर्ण जानकारी को बड़ी विशिष्ट शैली से प्रतिपादन कर भस्म-विज्ञान में चार चांद लगा कर एक नवीनता ला दी गई है। पुस्तक प्रत्येक वैद्य के देखने योग्य बन गई है।

आपका लिखा उपोद्घात जो २२३ पृष्ठों में समाप्त हुआ है, बड़ा ही महत्व का है और ८४ सिद्धोंके सचित्र पूर्ण पते एवं विवरणात्मक विवेचन बड़ा सुन्दर है। १४६ ग्रन्थों के आधार से उपोद्घात लिखा गया है वस्तुतः इन अमूल्य अप्राप्य ग्रन्थों की खोज एवं उनके अध्ययन के बाद ग्रन्थ प्रणयन कर स्वामी जी ने अपने अदम्य साहस का परिचय दिया है। लेखक अपने विषयके ज्ञान प्रसार में सफल हुए हैं एतदर्थ बधाई के पात्र हैं।

पूज्य श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य बम्बई

२४—५—५४ के पत्र में लिखते हैं 'भस्म विज्ञान को अक्षरशः सम्पूर्ण तो नहीं परन्तु ऊपर ऊपरसे बहुत कुछ देखा इसमें वैद्यों के काम की और उपादेय बातें बहुत हैं।

वैद्य घनानन्द जी पन्त,

३१०१ बाजार सीताराम, देहली।

११-४-५४ भस्म विज्ञान दोनों भाग मिले। आ के पूर्व प्रकाशित क्षार विज्ञान, आसव विज्ञान ल निबन्ध पहिले देख चुका था तदनु कूपी पक्व रस निर्मा विज्ञान बड़ा ग्रन्थ जो कि पारद विषयक उत्कृष्ट ग्रन्थ है— समस्त पढ़ा आज भस्म विज्ञान देखा जिसका २२३ पृष्ठ उपोद्घात अनेक ज्ञातव्य बिषयों से परिपूर्ण है। प्रत्येक भ विधि पर प्राचीन विचारों का नवीन विचारों स विवेचन कि गया है। आप अपनी लगन के बड़े पक्के हैं। भस्मों विषय वर्तमान शताब्दी में यूनानी चिकित्सकोंने आयुर्वेद लेकर जो इसमें ऊहापोह की है उसका भी उस में दिग्दर्शन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकीकादि द्रव्य जो की यूनानी चिकित्सा में विशेषोपयोगी समझे जाते हैं उनका भी आपने समावेश कर आयुर्वेदज्ञों को यूनानी द्रव्य ज्ञानमें सहायता दी है । रत्न उपरत्नों का अनेक प्रकार स शोधन मारण गुणादि का विशद वर्णन, सरल भाषामें है। आपने इस ग्रन्थ को लिखकर भस्मोंके विषय में आयुर्वेद को ऊपर उठा दिया है। पाठ्य पुस्तकों में आलोचनोपयोगी पुस्तक है।

रसायन-दरियागंज, देहली।

एक लम्बे समय के बाद श्री स्वामी हरिशरणानन्द का यह नवीन ग्रन्थ अभी २ प्रकाशित हुआ है 'कूपी पक्वरस-निर्माण-विज्ञान' और 'त्रिदोष-मीमांसा' के पाठक श्री स्वामी जी के वैज्ञानिक दृष्टिकोण और मौलिक विचार धारा से सुपरिचित हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ 'भस्म-विज्ञान' में भी उपरोक्त दोनों बातों का पूर्ण परिचय दिया गया है। धातुओं की मौलिक रसायनिक रचना भूगर्भसे यौगिक रूपमें प्राप्त हुई धातुओं की शुद्ध रूपमें प्राप्तिके आधुनिक ढंग और भौतिक तथा रासायनिक गुणोंके आधार पर किया गया उनका विवेचन वैद्य समाज के लिए वास्तव में नई चीज है।

खर्पर आदि संदिग्ध पदार्थों के निर्णय में आयुर्वेदिक यूनानी और आधुनिक रसायन शास्त्र के आधार पर दी गई सम्मति विद्वानों के लिये विचार का विषय है। वास्तव में ऐसे स्थल अनुसंधान की दिशा में प्रयत्न शील वैद्यों का पथ प्रदर्शन करते हैं। संदिग्ध द्रव्यों के निश्चय में स्वामी जी का मत शास्त्र तथा प्रत्यक्ष के गहरे अध्ययन और अनुभव पर आधारित है।

भस्मों के आधुनिक रासायनिक विश्लेषण, भिन्न-भिन्न विधिसे तैयार की गई भस्मों में अन्तर, अग्निके प्रमाण और पुट संख्या आदि के सम्बन्ध में दिये गये तथ्य तथा विचार वैज्ञानिक भित्ति पर आश्रित होने के कारण नितान्त नवीन और मौलिक है। निःसन्देह यह लेखक के आधुनिक रसायन शास्त्र के गहरे अध्ययन और कठोर परिश्रम का फल है।

भस्म निर्माण सम्बन्धी सम्पूर्ण उपलब्ध ग्रन्थों के पाठों का एकत्र संकलन भी इस पुस्तक की एक विशेषता है। उपोद्घात में रस शास्त्र की ऐतिहासिक परम्परा का वर्णन करते हुए ८४ सिद्धों का सचित्र वर्णन है। पुस्तक विद्वान वैद्यों, सामान्य चिकित्सकों तथा अनुसन्धान के विद्यार्थियों सब के लिए समान रूप से उपादेय है। आशा है वैद्य समाज में इसे उचितआदर प्राप्त होगा।

कूपीपक्व-रस-निर्माण-विज्ञान

यह ग्रन्थ स्वामी हरिशरणानन्दजी की मौलिक कृतियों में से एक है। इस ग्रन्थ की ऐतिहासिक पदार्थ सामग्री सञ्चित करनेमें आपने १५-१६ वर्ष व्यतीत किये और जिन कूपीपक्व रसोंको आप अनेक प्रकारसे बनाकर इसविषयको आज ३०वर्ष से समझते व अनुभव लेते आ रहे हैं उन्हीं रहस्योंका उद्घाटन आपने अपने इसग्रन्थमें किया है। इस ग्रन्थको आयुर्वेदमार्तण्ड यादवजी त्रिकमजी आचार्यने आयुर्वेद विद्यापीठके रसतन्त्र की पाठ्यविधिके आलोच्य ग्रन्थोंमें रखने की सिफारश की है।

२०×३० सोलह पेजी ऐंटिक पेपर पृष्ठ संख्या ५०० आर्ट पेपर पर मनोहर १४ चित्रोंसे सुसज्जित, ग्रन्थ का मूल्य सजिल्द ५) रुपया, पोस्ट और पैकिंग खर्च भिन्न।

इस ग्रन्थ पर सम्मतियां

(१) "सुधानिधि" इलाहाबाद जून १९४१

स्वामी हरिशरणानन्दजीने यह बहुतही गवेषणा पूर्ण और महत्वकी पुस्तक लिखी है। चन्द्रोदय, मकरध्वज, रससिन्दूर स्वर्णराजवंगेश्वर, समीर पन्नग आदि कूपीपक्व रस कहलाते हैं। इसमें छोटे बड़े सब मिलाकर ढाई सौ से अधिक कूपीपक्व रसों की निर्माण विधि अनुपान और गुण लिखे गये हैं। किसी किसी रस के सम्बन्धमें यह भी लिख दिया गया है कि इसमें कितनी और कैसी आंच देनी चाहिये। इस पुस्तकमें सबसे महत्वकी बातें १२० पृष्ठके उपोद्घातमें लिखी हुई हैं। रस, निर्माणशाला, उसके उपकरण, शोधन, रस-निर्माणके सिद्धान्त आदि पर अनुभव पूर्ण अच्छा प्रकाश डाला गया है। स्वामीजी की निर्मित अब तक की सभी पुस्तकों में यह शिरोमणि है। रसायन विद्याके इतिहास विवेचनके समय की कुछ बातों में मतभेदभी होसकता है। किन्तु हम उस पर न जाकर इसके गुण गौरवका ही अभिनन्दन करते हैं। पुस्तक सर्वथा संग्राह्य है।

(२)श्रीयुत बालचन्द्र जी नाहटा सरदार शहर, बीकानेर से १९-२-४२ के पत्र में लिखते हैं—बहुत अर्से के बाद आप को यह पत्र लिख रहा हूँ। दो कारणों से—एक तो आप को बधाई देने के लिये और दूसरे कुछ जानने के लिये।

बधाई! आपके अनुपम ग्रन्थ 'कूपीपक्व-रसनिर्माण-विज्ञान, के प्रकाशनार्थ है जिसको पढ़कर मैंने बहुत अधिक व्यावहारिक ज्ञानप्राप्त किया। मैं आपके उक्त ग्रन्थमें दिये विधानकी विद्युत् भट्टी बनाने की बहुत इच्छा रहने पर भी समयाभावसे कलकत्ते में न बना सका। किन्तु सामान लाकर एक विद्युत् शास्त्री की सहायता से यहां उसे तैय्यार किया और उसमें १०तोला पारद, १० तोला गन्धक, १ तोला सुवर्ण डालकर उस विद्युत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भट्ठीमें मकरध्वज चढ़ाया। १००० हजार वाट प्रति घण्टे के हिसाबसे विद्युत् शक्ति खर्च करके ६ घण्टेमें मकरध्वज बना ही लिया।

जिस परीक्षणकी इच्छा वर्षोंसे थी और जिसकेलिये कलकत्ता की एक फर्मने विद्युत् भट्ठीकी कीमतका इस्टीमेट २५०) का दिया था वह विद्युत् भट्ठी आपकी कृपासे १५) या २०) रुपये में ही बना कर देखली, देखही नहीं ली उसपर कूपीपक्व रस तय्यार भी कर लिया।

इसके लिये आपको बधाई नहीं अनेकानेक धन्यवाद देना चाहिये। किन्तु यदि इतना ही होता तो धन्यवाद देकर ही रह जाता. आपने तो उसमें और इतनी अधिक प्रायौगिक बातें दी हैं जिसके लिये धन्यवाद पर्याप्त नहीं। बधाई इस लिये कि आप अपने प्रयत्न में सफल हुए।

(३) आयुर्वैदिक कालेज पत्रिका, काशी विश्वविद्यालय अक्टूबर १९४९

उपर्युक्त पुस्तक कूपी द्वारा पके हुए रसों पर लिखी गई है। लेखक उन वैद्योंमेंसे हैं जो हर एक विषयको वैज्ञानिक तरीकों से समझने और समझानेका प्रयत्न करते हैं। पूरी पुस्तक इस बात का प्रमाण है। उपोद्घात विद्वत्तापूर्ण है। रसशास्त्र और उससे सम्बन्धित अन्य विषयोंके इतिहास का संग्रह जिस परिश्रमसे किया गया है वह प्रशंसनीय है। स्थान स्थान पर विषय को नवीन विज्ञानके अनुसार स्पष्ट किया गया है। कई रसों पर प्रयोगोंका वर्णन किया गया है। अग्नि देनेके विषय में निश्चित शतांश देकर लेखक ने रसशास्त्रकी दृष्टि से आयुर्वेदज्ञ लोगोंका उपकार ही किया है पृष्ठ १५५ से अन्त तक शास्त्रोक्त कूपीपक्व रसों का वर्णन है। नवीन आयुर्वेद जगत्को ऐसी ही पुस्तकोंकी आवश्यकता है। आशा है वैद्य समुदाय इस पुस्तक का स्वागत करेगा।

(४) नृसिंहदेव शर्म्मा शास्त्री B. A. आयुर्वेदाचार्य, कविरत्न, रावलपिंडी

श्री स्वामी हरिशरणानन्द जी

अध्यक्ष 'पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी, अमृतसर द्वारा रचित रसायनकी नवीन पुस्तक, कूपीपक्व-रस-निर्माण-विज्ञान मैंने आद्योपान्त पढ़ी है। स्वामी जी की यह मौलिक कृति है, जिसे पढ़कर कोई भी वैद्य रसों को बिना कुछ हानि उठाये निर्माण कर सकता है। स्वामी जी ने वैज्ञानिक सिद्धान्तोंके इस विषय पर गम्भीर और मौलिक विवेचन किया है। पुस्तकके प्रत्येक पृष्ठ से स्वामीजीके अत्यन्त गम्भीर अध्ययन, मनन और विशाल अनुभव का पता लगता है। पुस्तक वैद्य समाजके लिये अत्यन्त उपयोगी और विद्वानोंके लिये संग्रहणीय है।

(५) वैद्य-रत्न कविराज डा. प्रतापसिंह जी

(भू० पू० डायरेक्टर आफ आयुर्वेद राजस्थान)

मैंने श्री स्वामी हरिशरणानन्द जी द्वारा लिखित 'कूपीपक्व रस निर्माण विज्ञान, का आपात अवलोकन किया। श्री स्वामी जी सिद्ध-हस्त लेखक हैं।

इसके पूर्व स्वामी जीने 'कूपीपक्व रसायन' और 'त्रिदोष-मीमांसा'नामक पुस्तकें प्रकाशित की हैं और उससे वैद्यसमाज में नवीन चिन्तन का प्रादुर्भाव किया है।

स्वामीजी क्रान्तिवादी हैं। आयुर्वेद समाज के मृत-जीवन में पुनः क्रान्ति करके नवीन जीवन संचार करने के अभिलाषी हैं,इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये कठिन परिश्रम करते रहते हैं।

कूपीपक्व रस निर्माण-विज्ञान इसी मनोवृत्ति का परिणाम है। पुस्तक का प्रकाशन बड़ा ही सुन्दर हुआ है। इसका उपोद्घात प्रत्येक वैद्यके लिये मनन करने योग्य है। इस उपोद्घात में पौर्वात्य एवं पाश्चात्य रसायन शास्त्र का क्रमबद्ध अच्छा इतिहास है। यदि पाश्चात्य मौलिक तत्वोंके सामने उनके प्रचलित वैज्ञानिक नाम अंग्रेजी भाषा में भी दे दिये जाते तो पाठकों के लिये अधिक सरलता होती।

मैं स्वामी जी को इस वृद्धावस्था में भी कठिन परिश्रम के लिये हार्दिक बधाई देता हूँ।

आशा है स्वामी जी 'धातुवाद' पर भी विशेष प्रयोग कर आज के आणविक रसायनवाद का विवेचन कर वैद्यों के ज्ञान में परिवर्धन करने का यत्न करेंगे।

भगवान् जगन्नियन्ता से प्रार्थना है कि स्वामी जी को दीर्घायु करे और स्वास्थ्य प्रदान करे ताकि अपने अनुभव और प्रयोगोंसे चिरकाल तक आयुर्वेदका उपकार करते रहें।

क. प्रतापसिंह. १६-६-५२.

आसव विज्ञान

(तृतीय परिवर्द्धित संस्करण)

यह किसी से छिपा नहीं कि आयुर्वेद का एक चमत्कार-पूर्ण अंग आसवारिष्ट का निर्माण क्रम हमारे पास कितने अपूर्ण रूप में रह गया है। सौ बार आसव बनाइये कठिनता से दो-चार बार खराब होने से बचता है। इसका मुख्य कारण है हमारी प्राचीन रीति का लुप्त हो जाना। इसी लुप्त प्राय: विधि को स्वामी जी ने बड़े परिश्रम से पुन: प्राप्त किया है और उसी का आधुनिक विज्ञान से परिमार्जित कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उक्त पुस्तक में सरल सुस्पष्ट रूप में अंकित किया है। जिसका विस्तार निम्न रूप में है—

[१] आसव की प्राचीनता और उसका ज्ञान, [२] आसव का व्यवहार और उसकी मादकता का अनुभव, [३] नाड़ी यन्त्र का आविष्कार और उसके भिन्न-भिन्न सचित्र रूप, [४] आसव व सुराकी ऐक्यता और उसके प्रभाव, [५] आयुर्वेद में आसव का स्थान [६] आसव बनावे का प्राचीन क्रम व भेद, [७] बने बिगड़े आसव की परीक्षा, [८] आसव बिगड़ने का कारण और उसका विकृत रूप, [६] आसव और चुक्र अम्लादि में भेद, [१०] आसव बनने का कारण, [११] आसव में परिवर्तन और किण्व कीटाणु [१२] आसवोत्पादक वस्तुएं और उनका परिमाण, [१३] उत्ताप ऋतु परिवर्तनादि से आसव का बनना, बिगड़ना, [१४] भिन्न-भिन्न ऋतुओं में आसव का बनाना, [१५] आसव को सुरक्षित रखने का अनुभूत उपाय, [१६] आसव बनाने का अधिकार व राज्य नियम, [१७] आसव का शुद्ध रूप और उसका वैज्ञानिक विश्लेषण [१८] आसव के मौलिक पदार्थ व उनका गुण इत्यादि बातों का खूब अनुभवजन्य वर्णन है। स्वामी जी ने इस पुस्तक को दस वर्ष के परिश्रम के पश्चात् लिखा है।

दूसरे संस्करण की विशेषता

इस पुस्तक का जब पहिला संस्करण निकला तो अनेक रूढ़िवादी वैद्यों ने उस पर पेट भर कर आलोचनायें की। दूसरे संस्करण के प्रकाशन समय में स्वामी जी ने उनकी आलोचनात्मक बातों का जब प्रामाणिक व तर्कसिद्ध उत्तर दिया और उन वैद्यों को आह्वान किया गया कि वे पुनः इन पर अपने पक्ष का पुष्ट करने के साधन ढूंढें, इस पर उन वैद्यों से कुछ न बन पड़ा। तीसरे संस्करण तक उन वैद्यों में से एकने भी उत्तर देने का साहस नहीं किया, न स्वामीजी के दिये तर्कों का किसी ने खण्डन किया। इससे स्पष्ट हो गया कि स्वामी जी के तर्क प्रायोगिक आधार पर स्थित हैं। आसव बनाते समय उन प्रायोगिक बातों की सचाई जब स्पष्ट दिखाई देती है तो वे अपनासा मुंह लेकर चुप हो जाते हैं।

तीसरा संस्करण

इस तीसरे संस्करण में स्वामी जी ने कई संदिग्ध तथा अन्य कई ऐसी बातों की भी व्याख्या दे दी है जिसे वैद्यों द्वारा प्रश्न रूप में उपस्थित किया गया था। पुस्तक अपने विषय की इतनी जानकारी से पुष्ट हो गई है कि वैद्यों को अन्य पुस्तक की आवश्यकता नहीं रहती। ऐसी अत्युपयोगी पुस्तक का मूल्य डेढ़ रुपया पोस्ट खर्च भिन्न।

त्रिदोष-मीमांसा

'गवेषणापूर्ण-नव्यउपोद्घातयुक्त विवर्द्धित"

द्वितीय संस्करण

लेखक—स्वामी हरिशरणानंद वैद्य

प्रथम बार जब यह पुस्तक प्रकाशित हुई थी, वैद्य संसार में खलबली मच गई थी। बहुतसे वैद्योंने उसे पढ़कर अपनी राय दी—कि "स्वामीजीने यह आयुर्वेद जगत् पर एक बड़ा ही जबरदस्त बम मारा है।" यदि उस समय त्रिदोष मीमांसा वैद्य संसारके लिये बमवत थी तो निश्चय ही इसबार उसका उपोद्घात परमाणु बमका रूप ही समझिये।

उस समय वैद्य संसार त्रिदोष-मीमांसामें दिये स्वामीजी के प्रत्यक्ष अकाट्य वैज्ञानिक तर्कों को एलोपैथीके बताकर अपने मनको सान्त्वना देताथा, पर इस बारके दिये उपोद्घातको पढ़कर अब काल्पनिक मृग मरीचिकासे उनकी प्यास नहीं बुझ सकती।

त्रिदोष-मीमांसाका यह उपोद्घात ऐसे वैसे तर्कों व प्रमाणोंसे युक्त नहीं प्रत्युत, यह निबन्ध शुद्ध वेद भगवान् की सर्वोपरि अकाट्य प्रामाणिकताके आधार पर संकलनकर सिद्ध किया गया है कि हमारी प्राचीन चतुर्विध चिकित्सामें आयुर्वैदिक चिकित्साका उद्गम स्थान कहांसे है और वैद्यक वृत्ति का वास्तविक आदि स्रोत कहांसे चलता है।

यदि वैद्य संसार त्रिदोष-मीमांसाके इस दूसरे संस्करणको पढ़ कर भी उस अन्ध प्रगाढ़ निद्रासे न उठा और समयको न पहिचाना तो मानना पड़ेगा कि वैद्य जगत्का अस्तित्व नाम मात्र को है वास्तवमें वह समाप्त हो चुका है। वैद्य संसारको प्रबल उद्बोधन कराने वाली ३०० पृष्ठ की सर्वोत्तम पुस्तक का मूल्य २रु०—५० न. पं., पोस्ट खर्च भिन्न।

सम्मतियां

श्रीयुत डाक्टर सत्यप्रकाश जी एम. डी-लिट्.

वेलीएवन्यू, इलाहाबाद ता० १८-२-४८

"त्रिदोष मीमांसा" के द्वितीय परिवर्धित संस्करण की प्रति के लिये अनेक धन्यवाद।

आपका उपोद्घात मैंने आद्योपान्त देखा। मैं नहीं समझता था कि "त्रिदोष-मिमांसा" जैसे ग्रन्थ के उपोद्घात में प्राच्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयों का इतना सुन्दर समीचीन विवेचन होगा। वैदिक युग पर आपने बहुत अच्छा प्रकाश डाला है इसकेलिये बधाई है। वैद्यवर्ग में त्रिदोषवादके प्रति जो विप्लव आपने आरम्भ किया है, उसका समस्त श्रेय आपको ही रहेगा। न जाने कब हमारा आधुनिक वैद्य समाज रूढ़ियों को त्याग कर सत्यके अन्वेषण के लिये उसी प्रकार अग्रसर होगा, जैसा कि अपने पुरातन ऐतिहासिक काल में था। सत्यप्रकाश

आयुर्वेदाचार्य श्री हरदयालु जी

भूतपूर्व प्रिंसिपल श्रीमद्दयानन्दायुर्वेदिक कालिज, अमृतसर प्रधान—आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी रजिस्ट्रेशन बोर्ड, पूर्वी पंजाब

त्रिदोष मीमांसा—जनवरी १९४८ में प्रकाशित द्वितीय संस्करण मेरे सामने है।

इस संस्करण में लेखक ने विद्वत्तापूर्ण उपोद्घात के ६६ पृ. और बढ़ा दिये हैं। इस उपोद्घात से अनेक भ्रम दूर होजाते हैं, वास्तव में यह उपोद्घात सर्वप्रथम पठनीय है। इसमें संशयात्मक स्थलों पर प्रकाश डाला गया है तथा नये और प्राचीन प्रमाणों से सन्देह स्थलों को बोध गम्य बनाने का सफल प्रयास हुआ है।

त्रिदोष मीमांसा के प्रथम संस्करण को पढ़कर वैद्य समुदाय में एक विशेष प्रकार का वायुमण्डल उत्पन्न हुआ था, उन सब प्रश्नों तथा आक्षेपों का उत्तर पूर्ण प्रयत्न से दिया गया है। यदि इससे वैद्य समुदाय का सन्तोष हो जाय तो निःसन्देह लेखक का प्रयत्न सफल समझना चाहिये।

इस विचार से लेखक महोदय अवश्य धन्यवाद के पात्र हैं कि उन्होंने आयुर्वेदोन्नति के सम्बन्ध में निर्भीकता से अपने विचारों को लेखबद्ध करके आयुर्वेद के महारथियों को सचेत कर दिया है। मत भिन्नता के आधार पर किसी का विरोध करना आर्यत्व का चिन्ह नहीं है। विचारास्पद गहन विषय सर्वदा गूढ़ मनन और तद्विषयक सम्भाषा परिषदों द्वारा निर्णय-स्थान तक पहुँच पाते हैं, लेखक के हृदय में आयुर्वेद के प्रति अश्रद्धा व घृणा नहीं है, प्रत्युत वह उसे विज्ञानानुमोदित शिलोतल पर देखना चाहते हैं।

हरदयालुवैद्य १३-४-४८

ज्वर-मीमांसा

आयुर्वेद-ग्रन्थों में जिन ज्वरों व सन्निपातों का उल्लेख आया है, इस समय उनमें से कौन-कौन से ज्वर तथा सन्निपात मिलते हैं उनके इस समय नाम रूप और लक्षण क्या हैं? तथा कौन-कौन से ज्वर व सन्निपात इस समय नहीं मिलते लुप्त हो चुके हैं। इसका ठीक-ठीक ज्ञान बहुत कम वैद्योंको है।

चिकित्सा के लिये रोगका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना बहुत जरूरी बात है। लक्ष्य को जिसने लक्षित नहीं किया वह ठीक निशाना नहीं लगा सकता। जो वैद्य रोग को (ज्वर) नहीं पहचान पाते निश्चियही वह चिकित्सामें कभी सफल नहीं होते।

इस प्रकार के कठिन कामों को करनेका काम तो निखिल भारतीय आयुर्वेद सम्मेलन के संचालकों का था, वह वैद्य समुदायको प्राचीन और अर्वाचीन ज्वरों (रोगों) का विवेचन करके आधुनिक समय के अनुकूल उन्हें मार्ग प्रदर्शित कर चिकित्सामें उनकी सहायता करते। किन्तु उन्हें अपने ही कामों से अवसर कहां; अकर्मण्यताको देखकर स्वामीजी ने समयानुसार इस कमी को पूर्ण करने का दृढ़ संकल्प किया। उसी के परिणाम-स्वरूप यह ज्वर-मीमांसा है।

स्वामीजी ने ज्वर-सम्बन्धी विषय को लेकर निदानार्थ जो सुझाव पेश किए है तथा रोग-परिज्ञान-सम्बन्धी उनका अपना २५ वर्ष का जो अनुभव था, विस्तृत रूप से दिया है। पुस्तक कितनी उपादेय है वैद्य स्वयं पढ़कर इसकी गम्भीरता का अनुभव ले सकते हैं। मूल्य १रु-५० न० पै०

मन्थर-ज्वर-विज्ञान
(दूसरा संस्करण)
लेखक—स्वामी हरिशरणानन्द जी वैद्य

पाठकों को ज्ञात होगा इस पुस्तक का प्रथम संस्करण 'मन्थर-ज्वरकी अनुभूत चिकित्सा' के नाम से प्रकाशित हुआ थी। आज से २५ वर्ष के मध्य मन्थर-ज्वर पर बहुत ही खोजें व छान-बीन हुई, न जाने कितनी नई नई सैद्धान्तिक बातें सामने आई, हजारों रोगियों की चिकित्सा करने पर इतने समय के बाद जो अधिक अनुभव व ज्ञान लेखक को प्राप्त हुआ, उन सबका इस वार के संस्करण में संकलन कर दिया है। चिकित्सा क्षेत्र में पुस्तक की क्रियात्मक उपयोगिता बढ़ाने के लिए आधुनिक प्रत्यक्ष विज्ञान के अनुसार मन्थर ज्वर जीवाणु की उत्पत्ति, वृद्धि एवं संचार का विस्तृत वर्णन उसमें दिया है जिसे पूर्ण तरह से समझ लेने पर इस रोग के प्रसार को रोकने सम्बन्धी समस्त ज्ञान पाठकों को प्रत्यक्ष हो जाता है। मन्थर ज्वर जीवाणु का शरीर के अन्य अंगों पर क्या २ प्रभाव पड़ता है और क्या २

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपद्रव होते हैं। तथा उनकी चिकित्सा का भी पूरा वर्णन है।

लेखक के चिरकालिक अनुभव के आधार पर कुछ ऐसे सांकेतिक लक्षणों का वर्णन दिया है जिन्हें देख कर सन्दिग्धावस्था में न रह कर निश्चयात्मक निदान करने में सहायता मिलती है।

चिकित्सा में भी स्वामी जी के चिरकाल से अनुभूत सिद्ध प्रयोगों के साथ २ नवीन आविष्कृत प्रभाव शाली औषधियों का वर्णन भी है जिससे विगड़े से बिगड़े रोगी के उपचार में चिकित्सक को सहायता मिल सकती है।

शरीर की रोग रोधक शक्ति (क्षमता) क्या है वह कैसे बढ़ाई जा सकती हैं? रक्त के श्वेताणु किस प्रकार रोगों के आक्रमण का मुकाबला करते हैं इत्यादि सब बातों का विस्तृत वैज्ञानिक वर्णन भी पुस्तक में किया गया है जो ज्ञान के पिपासु पाठकों के लिये अवश्य ही सन्तोषप्रद सिद्ध होगा। अकेले मन्थर ज्वर पर इतना विस्तार पूर्वक तथा ज्ञानवर्द्धक ग्रन्थ आपको अन्यत्र न मिलेगा। नव्य ज्ञान विज्ञान से पूर्ण होने के कारण ही पुस्तक का नये सिरे से नाम करण करना उचित समझा गया।

पुस्तक को जो भी वैद्य एक बार पढ़ कर इसमें लिखी विधि अनुसार मन्थर-ज्वर या टायफाइड का निदान करेगा तथा उसकी चिकित्सा में प्रवृत्त होगा वह कभी भी असफल नहीं होगा। मूल्य २) डाक खर्च भिन्न।

वैद्य समाज तथा जनसाधारण का परमसहायक

औषध-गुण-धर्म-विज्ञान

(अर्थात् औषधि गुण परिचय तथा सेवन-विधि)

संशोधित एवं परिवर्धित—तृतीय संस्करण

छप कर तैयार हो गया है जिसकी सहायता से वैद्य समाज के अतिरिक्त साधारण मनुष्य भी आयुर्वेदोक्त प्रत्येक औषधि प्रयोग कर लाभ उठा सकता है क्योंकि इस पुस्तक में रोग-व्यवस्था तथा समस्त विख्यात आयुर्वैदिक औषधियों का परिचय, गुण, सेवन-विधि तथा मात्रादि का निरूपण बहुत ही उत्तम शैली और सरल भाषा में किया गया है। इस बार स्वामी जी ने औषधियों के सम्बन्ध में अपने आज तक के अनुभवों को इस पुस्तक में संकलित कर दिया है।

तृतीय संस्करण की विशेषता यह है कि इसमें आयुर्वैदिक औषधियों के अतिरिक्त स्वामी जी की अपनी जितनी भी अनुभूत पेटेंट औषधियां हैं उन सबका विशद विवेचन तथा लाभ सेवन-विधि मात्रादिक का वर्णन भी अच्छी तरह किया गया है। मूल्य १) डाक खर्च भिन्न।

क्षार-निर्माण-विज्ञान

यह किसी से छिपा नहीं कि आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति में भिन्न-भिन्न वानस्पत्योद्भूतक्षारों का काफी प्रयोग होता है। किन्तु हम देखते हैं कि वैद्यों द्वारा बनाये हुए क्षार प्रायः मैले धूसर वर्ण और देखने में चित्ताकर्षक नहीं होते।

स्वामी जी ने बड़े परिश्रम से क्षार-निर्माण विज्ञान का अनुभव किया और उसको वैद्यों के लाभार्थ क्रमवद्ध कर दिया है। उसमें निम्नलिखित विषयों का समावेश है:—

१. आयुर्वैदिक-चिकित्सा-पद्धति में क्षारों की उपयोगिता। २. वनस्पतियों के मौलिक तत्व व क्षारोद्भव धातुएं। ३. भिन्न-भिन्न क्षारों का रासायनिक रूप। ४. भिन्न-भिन्न वनस्पतियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के क्षारजन्य धातुओं की मात्रा। ५. भिन्न भिन्न वनस्पति भस्म से क्षार निकालने की विधि। ६. क्षारों को विशुद्ध स्वच्छ बना कर उसको कण रूप में लाना। ७. भिन्न भिन्न क्षारों के गुण और वज्र-क्षार आदि के बनाने का क्रम तथा क्षारों का उपयोग इत्यादि विषय का खूब खुलासा वर्णन है।

मूल्य प्रति पुस्तक ५० नये पैसे

रुद्रयामल तन्त्र

भैरवानन्द योगी कृत

भैरवानन्द योगी ने तान्त्रिक काल के अन्तिम दिनों में एक तन्त्रविषयक रुद्रयामल तन्त्र लिखा था। उस ग्रन्थ के भीतर धातु निरूपणम् नाम से एक अध्याय भिन्न दिया गया था। उस अध्याय के रसायन विषयक-प्रमाणिक ग्रंथ के कुछ उद्धरण डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र राय ने हिन्दू रसायन शास्त्र का इतिहास लिखकर उसके परिशिष्ट में उद्धृत किये थे। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ अप्राप्य था। श्रीयुत यादव जी त्रिकम जी आचार्य की कृपा से इस की हस्तलिखित प्रति प्रकाशनार्थ प्राप्त हुई, दूसरी प्रति कृष्ण गोपाल जी काशी निवासी से प्राप्त हुई दोनों ही प्रतियां लेखन प्रमाद से काफी अशुद्ध थी। उन्हें पं श्रीधर मायाधारी जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य से यथाशक्य शुद्ध कराकर प्रकाशित किया है।

मूल्य ३) रु. पोस्ट खर्च भिन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसव निर्माणार्थ सागवान काष्ठ के उत्तम ढोल

प्राचीन काल से ही वैद्यों में आसव निर्माणार्थ प्रायः मट्टी के पात्रों को प्रयोग करने का प्रचलन है। परन्तु मट्टी के पात्र में दो बड़े दोष हैं एक तो मसामदार होने से आसव द्रव उस में से चू कर बाहर निकल सकता है। दूसरे मृत्पात्र तापवाहक होने के कारण सन्धानार्थ द्रव के अन्दर आवश्यक उत्ताप को स्थिर नहीं रख सकता, जिस से आसव निर्माण क्रिया (सन्धान) में बाधा उत्पन्न हो सकती है। लकड़ी के ढोल इन दोनों दोषों से मुक्त हैं। लकड़ी में भी सागवान की लकड़ी ऐसी कठोर है कि निरन्तर वर्षों तक पानी के संसर्ग में रहने पर भी यह नहीं गलती। अतः सागवान के बने ढोल चिर काल तक खराब नहीं होते और आयु पर्यन्त काम देते रहते हैं। मृत्पात्र की तरह इन्हें घृत परिप्लुत करने का झंझट भी नहीं करना पड़ता। जल से प्रक्षालन कर स्वच्छ करके इन का प्रयोग किया जा सकता है। मृत्पात्र की तरह इनके फूटने का भी भय नहीं।

हमारे यहां वर्षों से इन ढोलों का प्रयोग हो रहा है। श्री स्वामी हरिशरणानन्द जी द्वारा लिखित "आसव विज्ञान" पुस्तक के प्रकाशन के बाद से देश के प्रत्येक कोने से इन लकड़ी के ढोलों के लिये अनेकों वैद्यों की मांग आती रही है। अतः हमने विलायत से आने वाले माल के खाली ढोल जो बड़ी बड़ी मिलों में रासायनिक पदार्थों में लग कर आते हैं उनके संग्रह का प्रयत्न किया है वह साफ करने पर आसव निर्माण के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। आशा है वैद्य समाज तथा औषध निर्माता इन का प्रयोग कर आसव निर्माण प्रक्रिया को समुन्नत करने की दिशा में अग्रसर होंगे। इस से उन्हें सुविधा भी होगी और आसव भी उत्तम बनेंगे। प्रत्येक ढोल की समाई इतनी है कि उसमें ६ मन आसव तैयार हो सकता है। मूल्य प्रति ढोल २०) मार्ग व्यय भिन्न।

आर्डर के साथ पेशगी आना जरूरी है।

निवेदक—मैनेजर पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी
अकाली मार्केट-अमृतसर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेद विज्ञान पर कुछ सम्मतियां

सम्पादक, स्वास्थ्य सन्देश, पटना

आयुर्वेद विज्ञान—प्रकाशक-आयुर्वेद विज्ञान आफिस, २२ फैज बाजार, देहली। वार्षिक मूल्य—३)।

यह मासिकपत्र स्वामी हरिशरणानन्द जी के सम्पादकत्व में सम्पादित होता है। प्रकाशक भी आप ही हैं। कुछ दिन पूर्व भी आप इस नाम का मासिक पत्र निकालते थे। अब पुनः इसी वर्ष इस पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया है। मेरे सामने तीसरा अंक है आपकी लेखनी द्वारा लिखा गया लेख बड़ा ही जोश पूर्ण होता है। आप प्राचीन आयुर्वेद अर्थात् त्रिदोष और पंचभूत वाद के विरोधी रहे हैं। आपका यह मासिक पत्र आपके विचार का प्रचारक है। आपका तर्क भी आपने ढंग का होता है। पत्र तर्क की दृष्टि से सुन्दर है। इसे वैद्यों को अवश्य पढ़ना चाहिए।

पं० गिरिजा शंकर भट्टाचार्य वैद्य "शेखर"
अमोघ औषधालय मु० उमरामउ पो० ऐहार
जि० रायबरेली

श्रीमान जी द्वारा प्रेषित आयुर्वेद-विज्ञान पत्र अप्रैल मास का अंक मेरे सम्मुख प्रस्तुत है। इसका सस्नेह ध्यान पूर्वक साद्योपान्त समावलोकन कर मन को महान् मोद मिला।

आप का यह अनुपमेय प्रयास है। पत्र में प्रकाशित लेख पंक्तियां आप की निर्भीकता एवं प्रचुर प्रज्ञान का पवित्र परिचय दे रही हैं।

मैं मानता हूँ कि आप में आधुनिक आयुर्वेद को समझने समझाने की यह अद्वितीय ईश्वर प्रदत्त विमल बुद्धि है।

वास्तव में तमसावृत्त आयुर्वेद जगत को नूतनालोक प्रदान करने वाला यह पत्र सम्पूर्ण कला युक्त सुधाकर है। मैं इस पत्र की हृदय से अभ्युन्नति चाहता हूँ।

प्रिंसिपल क० जगदीशचन्द्र भारद्वाज B. A. M. S.
अध्यक्ष श्री राम आयुर्वेदिक फार्मेसी
पनाकितान भवानी (हिसार)

आप का प्रेषित "आयुर्वेद विज्ञान" नामक मासिक पत्र अप्रैल १९५७ का प्राप्त हुआ। जो कि देखने में छोटा परन्तु उसकी सामग्री तथा प्रस्तुत लेख अति सुन्दर तथा सुपाठ्य थे जिसके द्वारा जनता भी लाभ उठा सकती है। विशेषतः चिकित्सक बन्धुओं को तो इस पत्र का ग्राहक बनना आवश्यक है। क्योंकि यह आयुर्वेद क्रांति का अग्रदूत है। अतः इस पत्र की मैं हृदय से उन्नति चाहता हूं। भगवान इसे सफलता प्रदान करता रहे।

कविराज माधव प्रसाद जी शास्त्री
सम्पादक जय आयुर्वेद जोधपुर
(राजस्थान)

"आपके द्वारा सम्पादित "आयुर्वेद विज्ञान" के ५ अंक प्राप्त हुए, धन्यवाद !

पत्र में प्रकाशित लेखों की निर्भीकता वास्तव में आयुर्वेद जगत् को रसातल जाने से अवश्य ऊपर उठाने में समर्थ सिद्ध होगी। आजके पत्र किसी की गुण-गाथा या विज्ञापन करनेके अतिरिक्त और कुछनहीं करते प्रसन्नता की बात है कि आप इन बातों से बहुत ऊपर उठे हुए हैं आपके सुलझे हुए विचार आयुर्वेद महारथियों के उलझे हुए दिमागों की इसी प्रकार सफाई करते हुए उन्हें स्वस्थ बनाते रहेंगे। आपका पत्र आयुर्वेद-विरोधियों से डट कर मुकाबला लेने वाला है। हम इसकी उत्तरोत्तर उन्नति चाहते हैं।"

वैद्यरत्न पं० श्री प्रभुदत्त शास्त्री भिषगाचार्य
प्रिंसिपल—श्री परशुराम पुरीया राजस्थान
आयुर्वेद कालेज सीकर (राजस्थान)

"आपके द्वारा प्रेषित 'आयुर्वेद विज्ञान' मासिक पत्र का अक्टूबर मासीय अंक देखने को मिला।

आयुर्वेद को आधुनिक विज्ञान के सम्पुटसे समृद्ध बना कर इसके वैभवका विस्तार और व्यावहारिक उपयोगिता की पराकाष्ठा से वैज्ञानिक जगत् को नवीन आलोक प्रदान करने वाला यह पत्र अविलम्ब ही वैद्य महानुभावों द्वारा कराम्बुज स्पर्श से उद्दीप्तिमान् हो उठेगा। इसमें संदेह जरा भी नहीं, चूंकि यह आपकी ओजस्विनी लेखनी से आपूरित सम्पादन कला—वैचित्र्य का उत्कृष्ट प्रतीक है। आधुनिक युग में ऐसे ही नूतन दृष्टिकोण से उन्मेष पाने वाले पत्रों की पाश्चात्य जगत पर धाक जमाने के लिये आवश्यकता है। धन्यवाद !"

आयुर्वेद वाचस्पति डा० रघुवंशलाल [illegible]
(M. Sc. [illegible])
श्री रविनन्दन आयुर्वेद भवन, मुरादाबाद

आपके द्वारा सम्पादित "आयुर्वेद विज्ञान" का चतुर्थ अंक प्राप्त हुआ अतः धन्यवाद। प्रस्तुत पत्र को ध्यान पूर्वक समावलोकन किया। मैं आपकी इस उत्तम कृति तथा आयुर्वेदोद्धार की प्रशंसा करता हूँ। मैं वैद्य समाज से सानुरोध प्रार्थना करूंगा कि प्रत्येक वैद्य बन्धु "आयुर्वेद विज्ञान" के ग्राहक बन कर अंधकार में पड़े हुये आयुर्वेद को प्रकाश में लायें। मैं इस पत्र की उत्तरोत्तर उन्नति चाहता हूं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यु त् की भट्ठियां और औषध निर्माण की मशीनें !!

हम अभी तक धातु भस्में उपलों की अग्नि में तय्यार करते हैं। उपलों की आंच देने में यह त्रुटि सदा रहती रही है कभी आंच कम कभी अधिक लग जाती है, इसके नियन्त्रण के जो भौतिक साधन बताये हैं उन्हें अपनाने पर भी यह त्रुटि दूर नहीं होती, इसीलिये अन्य साधन ढूंढने पड़े। उनमें से विद्यु त् की भट्ठियां सर्वोत्तम सिद्ध हुईं। विद्युत्भट्ठी में ताप नियन्त्रण की पूर्ण व्यवस्था होती है, जितनी भी मात्रा में आंच देना चाहें आप प्रसन्नता से दे सकते हैं। प्रत्येक धातु भस्में बनाने पर देखा गया है कि उन्हें एक जैसी आंच नहीं चाहिये। किस धातु भस्म को कितनी आंच देना है? इसका सही-सही ज्ञान आप हमारे लिखे भस्म विज्ञान नामक ग्रन्थ में प्राप्त कर सकते हैं।

और वह भस्में विद्यु त् भट्ठी पर ही एक मात्रा में आंच देकर बन सकती है इसका अनुभव लिया जा रहा है और उस पर एक भिन्न ग्रन्थ तैयार हो रहा है। हमने ऐसी विद्यु त् भट्ठियां निर्माण की हैं जिन पर धातु भस्म और कूपी-पक्व रस दोनों ही बन सकते हैं। छोटे बड़े कई आकार की भट्ठियां तय्यार करके उन पर अनुभव ले रहे हैं जो वैद्य इन भट्ठियों का उपयोग करेंगे वह निश्चिन्त बैठे हुए भस्में व कूपी-पक्व रस निर्माण कर सकते हैं। जिन्हें भट्ठी लगाने की इच्छा हो वह पत्र-व्यवहार करें।

और आज-कल औषधियों की मांग इतनी बढ़ गई है कि हाथ से औषधियां कूट, पीस कर उतनी जल्दी रस, वटी तय्यार नहीं होतीं जितनी मशीनों से होती हैं। हाथ तो लगातार घंटा, आधा घंटा काम कर सकते हैं फिर थक जाते हैं पर मशीन तो लगातार ८-६ घंटा या जितनी देर चाहें उन्हें चलावें क्या वह थकने वाली हैं? फिर खूबी सबसे बड़ी हमारी मशीन में यह है कि जिस तरह आयुर्वेद के ग्रन्थों में औषधियों की कुटाई, पिसाई और घोटाई (भावना) का जो विधान दिया है जिससे औषधियों का सार भाग गरम न हो कर वह नष्ट नहीं होते, बिल्कुल उसी विधि के अनुसार हमारी मशीनों से कुटाई, पिसाई घुटाई होती है और औषधियां घुट कर इतने सूक्ष्म अणु-अंशों में आ जाती हैं कि जिनका प्रभाव शीघ्र होता है। प्रत्येक मशीन बिजली की शक्ति से चलने वाली है। मशीनें निम्न हैं :-

चट्टू मशीन, ढोल मशीन, खरल मशीन, गोली मशीन, टिकिया मशीन, पालिश मशीन, आसव छानने की मशीन फिल्टर आदि। अधिक मात्रा में औषध निर्माण-कर्ता यह मशीनें हमारे कारखाने में आकर देखें और सारी व्यवस्था समझ कर अपने यहां यह मशीनें लगाएं।

निवेदक-- मैनेजर पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

६०--६१ अकाली मार्केट, अमृतसर।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं० डी-७२०

शिवा गुटिका

(दिव्य रसायन)

वैद्यों ने चक्रदत्त या योगरत्नाकर का रसायनाधिकार पढ़ा होगा या भारत भैषज्य रत्नाकर पढ़ा होगा इन ग्रन्थों में शिवा गुटिका एक शिलाजीत सूर्य तापी का योग आया है जिसे कुछ वनस्पतियों, जीवनीय गणों की औषधियों द्वारा ग्रीष्म काल के आतप में भावना देकर उसकी मलाई उतारने का विधान है फिर उसमें कुछ और औषधियां डाल कर गुटी बनाई जाती है। वहां लिखा है इसे एक वर्ष तक सेवन करना चाहिये उसके निम्न लाभ लिखे हैं :—

दारुण आमवात, आढ्यवात, यक्ष्मा, पांडु, संग्रहणी, गुल्म, कुष्ठ, जड़ता, शून्यता, नपुन्सकता, उन्माद, मृगी, कृशता, भगन्दर, नेत्ररोग, शिरोरोग, उदर रोग, कर्णरोग; कंठरोग, फुफुसरोग, हृदयरोग आदि विविध रोगों में लाभ करती है।

एक हमारे मित्र जिन्हें कर्णनाद और सिर में चक्कर आते थे, सिर हल्का उड़ता सा, मन अस्थिर रहता था बीमारी किसीकी समझमें नहीं आ रही थी एक वयोवृद्ध वैद्य के बताने पर उन्हों ने उक्त योग की औषध लेकर विधि पूर्वक बनाया और उन्हों ने चार महीना सेवन किया ६० वर्ष की अवस्था में वे बिल्कुल ठीक हो गये। उन्होंने मुझे भी खाने का आग्रह किया, क्योंकि आज तीन वर्ष हुए मैं एक अंगरेजी दवाई (हार्मोन्स) की बनी दो गोलियाँ खा बैठा, उनका मेरे मस्तिष्क पर इतना बुरा प्रभाव पड़ा कि पढ़ने में मेरा दिमाग चट थक जाता। मैं १०-१० घंटे लगातार पढ़ने लिखने का काम करने वाला आदमी था, बड़ी परेशानी में पड़ा वड़े इलाज किये, पर कोई लाभ नहीं हो रहा था कई किताबें लिखते लिखते अधूरी रही हुई थीं, कैसे पूरी हो ? बड़ी चिन्ता थी। मैंने उनके कहने पर ३ महीना लगातार उक्त गुटिका खाई धीरे धीरे मेरी हालत ठीक होते होते बिल्कुल ठीक हो गई।

एक कनफटा योगी मेरे पास आया, उसे ५ वर्ष से मूत्र कृच्छ था उसने किसी साधु से ४ खुराक संखिया भस्म की खा ली थीं, बस तब से उसका मूत्र कम हो गया था और भूख बन्द हो गई थी बड़े इलाज किये थे पर लाभ नहीं हो रहा था, मैंने उस से कहा तुम भी दो चार महीना शिवा गुटिका खा लो. शायद इससे तुम्हें लाभ हो उसने चार महीने खाई और बिल्कुल ठीक हो गया।

ग्रन्थकारों ने इसे रसायन लिखा है, किसी रोग से, किसी विष प्रभाव से, जरावस्था से किसी भी तरह शरीर की जब कार्य व्यवस्था बिगड़ जाय, शरीर की कोषाएं निर्बल विकृत हो जायं तो ऐसी दशा में रसायन औषधियां उस के स्वास्थ्य को बिल्कुल ठीक कर देती हैं, रसायन इसी का अर्थ है। यह हमने अपने पर प्रयोग कर प्रत्यक्ष देखा और अपने मित्र पर देखा। रसायन औषध दो चार दिन खाने वाली नहीं होतीं। इन्हें तो दो चार महीने ही खाना चाहिये। शास्त्र में इसकी मात्रा बहेड़े के दाने के बरावर लिखी है, मगर हमने ४ रत्ती की गोलियां बनाई थीं और दो दो गोलियां दोनों समय खाते थे। ५ तोला गुटिका एक मास के लिये होती है। हमने विक्रयार्थ इसके ५ तोला के पैकट बनाये हैं जिसका मूल्य ५ रु० रखा है आशा है जीर्ण वृद्ध रोगी इसका उपयोग कर फलाफल से सूचना देंगे।

पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी
अकाली मार्केट, अमृतसर
ब्रांच—खारी बावली, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ५ | वैशाख सम्वत २०१५ | संख्या ५

मई १९५८

आयुर्वेद-विज्ञान

चिकित्सा संसार में क्रान्ति लाने वाला मुख्य वैज्ञानिक पत्र

AYURVED-VIJNAN

The Leading Hindi Journal Explaining The Ayurvedic System on Scientific Lines

सम्पादक

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

विषय-सूची

१. आयुर्वेद की मान्यता का प्रश्न ६९
२. खाद्योजांश और रोग ७७
३. रीठा से उसका सत्व निकालना ७९
४. विषम ज्वर (मलेरिया) नियन्त्रण ८०
५. आधुनिक प्रयोग विधियां ८०
६. सर्प विष का उपयोग ८१
७. अलौपैथी को आयुर्वेद से दूर रखा जाय ८२
८. महासम्मेलन और विद्यापीठ भंवर में (लेखक--श्री किशोरीदास वाजपेयी) - ८३

प्रकाशक—

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य, आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय, २२ फैज़ बाज़ार, देहली।

मुद्रक—बदलिया प्रिंटिंग प्रेस, दाईवाड़ा नई सड़क, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम

१—आयुर्वेद-विज्ञान प्रत्येक अंग्रेजी मास की १ तारीख को प्रकाशित होता रहेगा।

२—डाक-व्यय सहित इसका मूल्य ३) वार्षिक, एक प्रति का मूल्य ३० नये पैसे होगा।

३—पत्र मंगाने वालों को अपना पता साफ २ अक्षरों में लिखना चाहिये।

४—जिन व्यक्तियों के पास उस मास की ५ ता० तक पत्र न पहुंचे उन्हें इसकी सूचना देनी चाहिये।

५—यदि एक-दो मास के लिये पता बदलवाना हो तो उसका प्रबन्ध स्वयम् डाकखाने से कर लेना चाहिये। अधिक समय के लिये पता बदलवाना हो तो फिर हमें सूचित करना चाहिये।

६—पत्र व्यवहार करते समय ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये। अन्यथा उत्तर नहीं दिया जावेगा।

७—पत्र व मूल्य सम्बन्धी पत्र-व्यवहार मैनेजर आयुर्वेद विज्ञान के नाम से और लेख, समालोचनादि व पुस्तकादि सम्पादक के नाम से भेजना चाहिये।

८—कोई भी पत्र, पुस्तक समालोचना के लिये भेजी जाय उनकी दो प्रति भेजनी चाहिये।

९—आयुर्वेद विषयक वैज्ञानिक गवेषणापूर्ण लेखों को पत्र में सर्व-प्रथम स्थान दिया जायेगा और श्रेष्ठ सचित्र लेखकों को पुरस्कृत भी किया जायगा।

१०—वृथा के आडम्बर पूर्ण पृष्ठ-पोषक लेखों के लिये इसमें स्थान नहीं मिलेगा। किसी भी लेख को घटाने, बढ़ाने व प्रकाशित करने, न करने का सम्पादक को पूर्ण अधिकार होगा।

११—जो लेख भेजे जायें, कागज पर एक तरफ हाशिया छोड़ कर लिखे होने चाहिये।

१२—उत्तम २ अलभ्य आयुर्वेद साहित्य सम्बन्धी चित्र लेख व वनस्पतियों आदि को जो सुरक्षित भेजेंगे उनको सपारिश्रमिक मार्ग व्यय आदि सब आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय से दिया जायेगा।

१३—आयुर्वेद शास्त्र सम्बन्धी प्रश्नों को छोड़ कर किसी परामर्श सम्बन्धी या किसी रोगी के लिये रोग-सम्बन्धी प्रश्नों पर प्रति प्रश्न के लिये. आयुर्वेद-विज्ञान के ग्राहक आठ आना, जो ग्राहक नहीं वह प्रति प्रश्न एक रुपये का टिकट प्रश्न के साथ भेजेंगे तभी उनके प्रश्न और उत्तर छापे जायेंगे।

विज्ञापन छापने के नियम

१—किसी भी विज्ञापन छापने वाले या बन्द करने वाले को पत्र प्रकाशन से १५ दिन पूर्व सूचना देनी चाहिये।

२—अश्लील सभ्यता के विरुद्ध विज्ञापन नहीं लिये जायेंगे।

३—कोई भी विज्ञापन जनता को धोखा देने वाला सिद्ध होने पर उसका प्रकाशन बन्द कर दिया जायगा और जब तक वह सन्तोषप्रद प्रमाण न देगा जो मूल्य आ चुका है वापस नहीं दिया जायगा।

४—विज्ञापन का मूल्य सर्वथा प्रथम लिया जायगा।

५—आधे कालम से कम विज्ञापन दाताओं को आयुर्वेद विज्ञान बिना मूल्य नहीं दिया जायगा।

६—एक वर्ष के लिये विज्ञापन देने वाले को =) रुपया कमीशन काट दिया जायगा।

विज्ञापन के दर

७—१ पृष्ठ यानी २ कालम की प्रतिबार की छपाई ४०)

आधा पृष्ठ " १	"	"	" २४)
चौथाई ,, १।२	"	"	" १६)
टाईटल के पीछे के पृष्ठ की		"	" ५०)
" तीसरे " की		"	" ४५)
" चौथे " की		"	" ६०)

८—ट्रेड डायरैक्टरी में विषय वार विज्ञापन प्रति ३) रु० के हिसाब से लिया जावेगा।

मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेद-विज्ञान

आयुर्विदेव वितते किल शास्त्र जाते पुम्भिः प्रयत्नपरकैर्भवतीह लभ्यम् ।
शवितं शिवं च जनता यदि कांक्षतीयम् विज्ञानमेव भजतां सततं विशेषम् ।।

वर्ष ५ | वैशाख २०१५ वि०, मई १९५८ ई० | अंक ५

आयुर्वेद की मान्यता का प्रश्न

हमारे नेताओं का दृष्टिकोण सामने आ गया

अभी-अभी की ताजी घटना है २४ मार्च को लोक-सभा के सत्र में स्वास्थ्य मन्त्रालय के व्यय के लिये मांगी गई रकमों पर बहस के समय देसी चिकित्सा प्रणाली के समर्थक सदस्यों ने कहा कि सरकार देसी चिकित्सा प्रणाली के साथ सौतेली मां जैसा व्यवहार कर रही है । इन प्रणालियों में से किसी को भी वह मान्यता देना नहीं चाहती, हालांकि ग्रामों में जहां सबसे अधिक देश की आबादी बसती है, वहां सिवाय देसी चिकित्सकों के एक भी डाक्टर नजर नहीं आता । देसी चिकित्सा प्रणाली से जब जन-समाज को लाभ पहुँच रहा है फिर सरकार इधर ध्यान क्यों नहीं देती ? इस बार लोक-सभा में देसी चिकित्सा के पक्ष को लेकर इतने अधिक सदस्य बोले, देसी चिकित्सा प्रणाली को प्रोत्साहन देने की मांग इतनी जोरदार थी, कि स्वास्थ्य-मन्त्री जी के लिये वर्तमान चिकित्सा प्रणाली में परिवर्तन किये बिना सदस्यों को सन्तुष्ट करना कठिन दिखाई पड़ रहा था । वातावरण इतना गरम हो गया, कि श्री डी० पी० करमरकर जी संकट में पड़कर घबरा गये । सरकारी पक्ष को निर्बल होता देख हमारे माननीय प्रधान-मन्त्री श्री नेहरू जी इस विवाद में हस्तक्षेप करने के लिये अचानक कूद पड़े । आपने बीच में हस्तक्षेप करते हुए कहा :—

"देसी और अलोपैथी चिकित्सा प्रणाली के मध्य विवाद छेड़ने की कोई आवश्यकता नहीं, इस मामले पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया जाना चाहिये । आपने कहा—हमारे विचार से चिकित्सा एक ही विषय है । हमें इस बात पर कोई आपत्ति नहीं कि वैद्य या डाक्टर रोगी की चिकित्सा किस प्रणाली से करते हैं । वह चाहे जिससे करें किन्तु हम अनुभव करते हैं कि चिकित्सा करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को वैज्ञानिक शिक्षा अवश्य मिली हो । जो व्यक्ति यह नहीं जानता कि हमारे शरीर के भीतर कौन सा अंग कहां पर है उसकी बनावट कैसी है, जिसे ऐसी बातों की कोई जानकारी नहीं होती ऐसे आधुनिक अनुसन्धानों से अनभिज्ञ व्यक्तियों को चाहे वह किसी भी चिकित्सा प्रणाली का व्यक्ति हो, हम उसे उपयुक्त नहीं समझते ।"

पंडित जी के उक्त कथन से लोक-सभा में सन्नाटा छा गया । ४ घन्टे से जो विवाद चल रहा था, आपके कथन को सुनकर सदस्यगण अपने भीतर टटोलने लगे कि क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपके कथन में सच्चाई है। क्या वास्तव में देसी प्रणाली के चिकित्सकों में ज्ञान-विज्ञान का इतना अभाव है? क्या आयुर्वेद ज्ञाता आधुनिक विज्ञान की शिक्षा से रहित होते हैं। क्या वे वास्तव में शरीर के मर्म को भी ठीक तौर पर नहीं जानते? अभी सदस्यों में यह चर्चा हो रही थी, तब हमारे स्वास्थ्य-मन्त्री जी को फिर बोलने का साहस हुआ। आपने सदस्यों का ध्यान अपनी ओर खींचते हुए कहा, "कि मैं आप सबों से अनुरोध करूंगा, कि आप सब एक चिकित्सा प्रणाली का दूसरी चिकित्सा प्रणाली से वैरभाव उत्पन्न न करें। हमें सबसे अच्छी चीज को स्वीकार करना चाहिये। हमें खुले दिल से इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए। आधुनिक समय में औषधि विज्ञान में इतनी अधिक उन्नति हो चुकी है कि जिन बीमारियों से १०-१५ वर्ष पूर्व बहुत अधिक लोग मरते थे, अब उन बीमारियों को पूरी तरह दूर किया जा सकता है। उन्होंने कहा—सरकार सभी प्रणालियों को सहायता पहुँचाने के लिये तैयार है। अनुसन्धान के बाद आयुर्वेद की जिन औषधियों को अच्छा पाया गया सरकार उनका व्यापक रूप से उपयोग करेगी। लेकिन, इस मामले में सरकार स्वदेशी की भावना को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है।"

पाठक श्री पं० जवाहरलाल जी नेहरू और स्वास्थ्य-मन्त्री श्री करमरकर जी के उक्त कथन से समझ गये होंगे कि सरकार देसी चिकित्सा प्रणाली को प्रोत्साहन देना नहीं चाहती, न संरक्षण देना चाहती है। वैद्य-समाज कहता था, कि जब राजकुमारी अमृतकौर जी स्वास्थ्य मन्त्री थीं, तो इसी बात से उसे लोग कोसते थे। उसका क्या कसूर था? वह तो वही बात कहती और करती थीं, जो सरकार की नीति थी। हमारे नये स्वास्थ्य-मंत्री भी अब वही बात कहते हैं, जो कि सरकार की नीति है।

सरकारी नीति क्या है? स्पष्ट शब्दों में माननीय प्रधानमन्त्री जी ने कह दिया है कि जिन चिकित्सा प्रणाली के चिकित्सकों को शरीर सम्बन्धी विषय का पूर्ण ज्ञान नहीं, उनका किस तरह चिकित्सा करने का अधिकार स्वीकार कर लें। क्योंकि चिकित्सा प्रणाली के जिन चिकित्सकों को वैज्ञानिक विधि से पूरी शिक्षा मिली हो, उसी को चिकित्सा करने का अधिकार मिलना चाहिये। क्या सरकारी नीति में कुछ औचित्य है? क्या इसमें कुछ नैतिक बल है? वैद्य-समाज को इस पर गम्भीरता से विचार करना चाहिये। आइये! हम ठण्डे दिल से इस प्रश्न पर विचार करें, कि देसी चिकित्सा प्रणाली से चिकित्सा करने वाला वैद्य-समाज चिकित्सा शास्त्र की उन्नति में क्या पिछड़ा हुआ है। क्या इसके चिकित्सा-साधनों में कमी है?

हमारी सदा से नीति यह रही है कि हम किसी का भी पक्ष न लेकर जो सत्य हो, उसका समर्थन करते आये हैं। जो बात सच्ची हो उसे स्पष्ट रूप से कहेंगे, चाहे कोई बुरा माने या भला।

हमारी सरकार की स्थिति—हमारी सरकार नीति निर्धारण का काम करना तो अच्छी तरह जानती है और बातें बनाने में वह इतनी पटु है, कि दार्शनिक विद्वानों के कान काटती है, पर राजकाज के काम किस तरह चलाने चाहिये, देशोन्नति के काम कैसे ढग से होने चाहिये जिससे देश आगे बढ़ सके, इस बात का उन्हें बहुत कम अनुभव है। 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' की कहावत के अनुसार चूंकि कांग्रेसियों ने वक्तृत्व-शक्ति का अभ्यास किया हुआ है इनमें इसका अनुभव खूब है, इसी से वह बोलने में खूब पटु हैं।

देश की बागडोर उन के हाथ में जबसे थमा दी गई, उनके नीचे इस बागडोर को पकड़ने वाली नौकरशाही नाम की पटु जमात देशरूपी पशुशाला का संरक्षण, सम्पीडन करना खूब जानती थी। नेता लोग तो थे व्याख्यान पटु। चलती हुई नौकरशाही पर केवल मालिक ही बदला था और सारा का सारा ढांचा वही था। यही नहीं इन नेताओं में से अनेक अवसरवादी भी थे उन्हें आगे आने का अवसर मिला और उन्होंने स्टेज संभाल ली।

फिर क्या था, यह किसी से छिपा नहीं कि अंगरेजी सरकार की हकूमत के समय रिश्वतखोरी कम नहीं थी। नौकरशाही के कारिन्दे इसमें पहले ही पटु थे। अवसरवादी नेताओं के आते ही भाई-भतीजावाद बढ़ा और कुनबा परस्ती की अनुचित घुस पैठ के कारण दफ्तरों के कायदे कानून उनके लिये ढीले करने पड़े, इस निर्बलता का लाभ उठाने का उन्हें अवसर मिला। इसीलिये रिश्वतखोरी बेइमानी खूब बढ़ी। आज सरकार का कोई भी माहकमा ऐसा नहीं जहां रिश्वतखोरी आम न हो रही हो। अवसरवादी तो ऐसे समय की प्रतीक्षा में ही थे, दोनों हाथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़ा। यह सिलसिला १९४७ में आरम्भ हुआ और आज यह बुराई देश में ऐसी व्यापक हो रही है, कि सरकार के पास इसका कोई इलाज नहीं।

सरकारी काम कैसे चल रहे हैं? इसकी मिसाल का एक ताजा नमूना ही वैद्य समाज के सामने रखना काफी होगा—यहां भी चिकित्सा सम्बन्धी विषय को लेकर इसी अंश पर प्रकाश डालना उचित समझता हूँ।

दिल्ली की सरकारी कोढी बस्ती

जहां चारा मिले वहीं चिड़िया अनायास पहुंच जाती हैं। दिल्ली राजधानी बनी, इसका नाम फैला। भिखमंगों ने समझा जब वह राजधानी है, तो क्या वहां दाता न होंगे? इसी ख्याल से कोढ़ियों की संख्या बढ़ने लगी। १९५६ में यहां कोढ़ियों की संख्या ५-६ सौ हो गई। यह बेचारे यमुना के किनारे टूटी-फूटी झोंपड़ियों में रहा करते और भीख मांगकर गुजारा करते थे। पर उन्हें तो दैव ने और दुःख दिखाना था, उन पर नई आपत्ति आई। १९५६ में यमुना में बाढ़ आ गई, बेचारों की झोंपड़ियां बहा ले गई। उनको सरकार के कर्मचारियों ने ट्रकों में भरकर महरौली में लाकर छोड़ दिया, कि कहीं वह न जायँ। जिन्हें सरकार ने वहां लाकर छोड़ा वहां खाना-दाना न था। उसे छोड़ आने के कारण मुफ्त की बलाय सरकार के गले पड़ गई। उनके भरण-पोषण की जिम्मेदारी सरकार पर आन पड़ी। उसके प्रबन्धार्थ एक परामर्शदाता समिति बनी, जिसके चेयरमैन श्री व्रजकिशोर जी चांदीवाले एक बड़े समाज सेवी को बनाया गया। उन्होंने इस सेवा को इसलिए स्वीकार किया था, कि इन मुसीबत जदह लोगों की कुछ सेवा कर सकेंगे। पर नौकरशाही के कारिन्दों का सेवा से क्या मतलब! अभी-अभी ४ अप्रैल को इस कोढ़ी बस्ती के सम्बन्ध में 'सरकारी कमेटी की उपेक्षा' नीति पर जो आपने वक्तव्य दिया वह 'हिन्दुस्तान' दैनिक ४ अप्रैल के ५ कालमों में प्रकाशित हुआ है। उसके कुछ अंश यथावत् उद्धृत करता हूँ।

"इन कोढ़ियों का सरकारी खर्च—मेहरौली से हटाकर इन कोढ़ियों को यमुना पार ताहीरपुर गांव के पास ५० एकड़ का टुकड़ा लेकर इन्हें वहां बसाने का प्रबन्ध किया गया। मगर वहां कोई मकान तो बने हुए नहीं, खुले मैदान में फटी-पुरानी तम्बोटियां खड़ी कर दी गईं। राशन लाने के लिए ठेकेदार साहब रखे गये। देखभाल करने को एक कम्पोडर और एक डाक्टर, पूरे ६० हजार रुपया सालाना का खर्च बंध गया। मगर राशन की कैफियत यह रही कि कई-कई दिन वह मिलता ही नहीं। भूखे मरने की नौबत आ जाती और मिलता है तो वह इतना खराब कि इन्सान उसे खा नहीं सकता। बराबर इसके खिलाफ आवाज उठाई गई मगर आज तक सही प्रबन्ध न हो सका। दूध मिलता है वह पहले ही सफेद पानी था, ठेकेदार की कृपा से उसे और पतला कर दिया जाता है। इधर चिकित्सा का हाल सुनिये।

डाक्टर डरते हैं

जो डाक्टर साहब देखभाल के लिये नियत किये गए हैं उनकी हालत यह है कि उन्हें इस बस्ती में आने से शायद जाड़ा चढ़ता है। वेतन पाते हैं इसलिये उन्हें और कम्पौण्डर महोदय को जाना तो पड़ता ही है मगर निहायत मजबूर होकर। समय पर तो जाते ही नहीं। जब जाते हैं तो क्रोध से भरे हुए जो भी अपनी अर्जी पेश करे डाँट खाता है। दवाओं की यह कैफियत है कि वे वक्त पर मिलती ही नहीं। जब भी मैं वहां गया सिवा शिकायतों के अम्बार के और कुछ न पाया। सुन-सुनकर शर्म से सिर झुक जाता है। उनकी लाचारी और बेबसी को देखकर और उनकी असुविधाओं की करुण कहानी सुनकर। एक बेचारा बीमार कई महीने से वहां पड़ा है जिसकी देखभाल का कोई सन्तोषजनक प्रबन्ध न हो सका। खाना उसे साधारण लोगों का दिया जाता है, जो वह खा नहीं सकता। न है उसके लिए फल-दूध का प्रबन्ध, न सही खाने का प्रबन्ध। महीनों इन लोगों को कपड़े नहीं दिये गये। पिछले दिनों बड़ी कठिनाई से धोतियां और कम्बल दिये गये। जो व्यक्ति वहाँ रहकर उनकी सेवा करना चाहते हैं उनको लिया नहीं जाता, क्योंकि सरकार के मुलाजमत के कायदे ही ऐसे हैं, चुनाचे जब यह देखा कि इनकी देखभाल करने के लिये कोई तैयार नहीं होता, तो गोरखपुर कोढ़ी आश्रम के एक सज्जन को यहां आने के लिये तैयार किया जो बड़े सेवाभावी हैं और बरसों से कोढ़ियों की सेवा कर रहे हैं। वह बेचारे त्यागपत्र देकर गोरखपुर से यहां आ गये। करीब दो महीने उन्हें यहां बैठे हो गये। सरकारी फ़ाइल इधर से उधर घूम रही है और वह भाई दफ्तरों की खाक छानते फिर रहे हैं। कभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनते हैं कि फायल गायब हो गया, कभी वह उभर आता है। बड़ा कसूर उनका यह है कि यह भाई एलोपैथिक न होकर आयुर्वेदिक हैं। गुरुकुल से इन्होंने पास किया है। तब इनको स्थान कैसे मिले। हालांकि यह सब बातें बताकर मैंने इन्हें वहां से बुलाने की मन्जूरी ली थी और डा० युद्धवीरसिंह खुद उनके लिये प्रयत्न कर रहे हैं ताकि कोढ़ी बस्ती की हालत सुधर सके।

सरकारी मामले इतने पेचीदा हैं कि साबुन की एक टिकिया भी चाहिये तो उसके लिये टेण्डर भरना पड़ता है। एक बार में जब इस कालोनी में गया तो एक बीमार वहां पड़ा था जिसके लिये कमोड की जरूरत थी। पता लगा कि हालांकि बड़े डाक्टर ने उसको लाने का हुक्म दे दिया था फिर भी वह आ नहीं सका था, हालांकि कई दिन गुजर चुके थे क्योंकि दफ्तरी कार्यवाही पूरी नहीं हुई थी।

पिछले दिनों इन लोगों के रहने के लिये छप्पर की झोंपड़ियां बन गई हैं। एक बड़ी योजना इनको बसाने को तैयार हुई थी जो सुना है अब रद्द कर दी गई है।

इन तमाम हालात को देख-सुनकर मन में सिवा खेद और क्षोभ उत्पन्न होने के कुछ बन नहीं पाता। प्रतीत होता है कि सब कोई लाचार हैं हालात की मजबूरी से जो भला करना चाहते हुए भी कुछ कर नहीं सकते। क्योंकि इनका प्रबन्ध किसी ऐसी समाजवादी संस्था को दे दिया जाये जो इस काम को कर रही हो। उससे यह लाभ होगा कि सरकारी लालफीते की माया से मुक्त होकर इस साठ हजार रुपये सालाना की रकम में से इन लोगों को अधिक सुविधायें दी जा सकेंगी और समाज का यह बहिष्कृत अंग कुछ काम करने योग्य बनकर अधिक सुखी हो सकेगा।" यह है नौकरशाही का खुला चिट्ठा।

हमारे नेताओं की अपने-अपने महिकमों सम्बन्धी प्रबन्ध में अनुभवविहीनता होने के कारण सारा प्रबन्ध उन्हीं लाल फीताशाही के हाथ में होता है। मन्त्री अदल-बदल कर आने से वह सर्वज्ञ तो होते नहीं, न वे नये महकमे में पहुंचकर चलते काम को जानने सीखने का प्रयत्न करते हैं। अन्दर जब तक न घुसें उन्हें नौकरशाही के चलते पुर्जों की समझ कैसे आ सकती है। इसीलिये तो सर्वेसर्वा वही नौकरशाही के संचालकगण रहते है, लेबिल जरूर मन्त्री जी का लगा होता है। इसी निर्बलता से रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार इतना बढ़ गया है कि जिसकी आंच मन्त्रियों तक पहुंचती रहती है। मूंदड़ा काण्ड में वित्त-मन्त्री श्री कृष्णामाचारी तक पर उसकी आंच पहुंची। प्रान्तों में पंजाब में कैरों मन्त्रीमण्डल पर, बंगाल में डा० विधानचन्द्र राय तक पर यह आंच आ रही है। सरकार की बड़ी-बड़ी बांध-योजनाओं में भारी-भारी घोटाले के समाचार पत्रों में पाठक नित्य पढ़ा करते हैं। जो सरकार केवल नीति निर्धारित करना ही जानती हो, उससे यह आशा करना कि देशी चिकित्सा पद्धति के लिये वह कुछ करेगी बालू से तेल निकालना है।

इधर हमारी क्या स्थिति है

हमें भी अपने बगलों को झांककर देखना चाहिये कि हम अधिकार के लिये जो लड़ रहे हैं क्या वास्तव में जितने अधिकार हम मांग रहे हैं उतने के अधिकारी भी हैं? हम पहिले अपनी शिक्षा की स्थिति को ही लेते हैं। आयुर्वेद शिक्षा के लिये कोई पूर्ण प्रबन्ध युक्त देश भर में आज तक एक भी कालेज नहीं है। गुरुकुल कांगड़ी, डी० ए० वी० आयुर्वेदिक कालेज, हिन्दू विश्वविद्यालय आयुर्वेदिक कालेज, ललितहरि आयुर्वेदिक कालेज बरेली, तिब्बिया कालेज दिल्ली, अहमदनगर आयुर्वेद विद्यालय, पूना आयुर्वेद विद्यालय आदि १०-१५ जो नाम के विद्यालय हैं उनमें से जितने भी स्नातक निकले और निकल रहे हैं सभी विद्यमान चिकित्सा विज्ञान से कोरे होते हैं। उन्हें वहां क्रियात्मक ज्ञान तो इतना कम मिलता है, जो चिकित्सा व्यवसाय में पड़ने पर वे अनुभवविहीन कई-कई वर्ष धक्के खाकर फिर सैंकड़ों में २-४ ही सफल होते हैं। हमारी प्रान्तीय सरकारें आयुर्वेद के प्रति कुछ दिखावे की श्रद्धा अवश्य रखती हैं, उनमें से कहते हैं कि उत्तर प्रदेश की सरकार सबसे अधिक देसी चिकित्सा पद्धति के लिये कार्य कर रही है। उसने लखनऊ में आज कुछ वर्ष हुए स्टेट आयुर्वेदिक कालेज भी खोला था। अब पता लगा है कि सरकार ने उसे अनिश्चित काल के लिये बन्द कर दिया है। यह क्यों खोला गया और क्यों बन्द कर दिया गया? इसमें खोलने बन्द करने में सरकार की मनोवृति और आयुर्वेद विद्यार्थियों की योग्यता तथा मनोवृत्ति के महान उज्जवल उदाहरण सामने आये हैं। वह निम्न पंक्तियों में देखिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकार प्राप्ति का झगड़ा

छात्र पिछले दो वर्ष से इसीलिये संघर्ष कर रहे हैं कि हमें अलौपैथी डाक्टर वत् उतने ही अधिकार मिलने चाहियें जो उन्हें मिले हुये हैं। इसके लिये उन्होंने पिछले वर्ष भूख-हड़ताल की थी और धरना भी दिया था। पर सरकार टस से मस न हुई।

उक्त कालेज का प्रबन्ध कैसा है—आज कई वर्ष से यह कालेज खुला हुआ है किन्तु सरकार की ढिलमिल नीति के कारण अभी तक सरकार ने इस कालेज योजना को स्थायी करने की घोषणा नहीं की। यहां तक कि उस कालेज के लिये कोई प्रिन्सिपल ही निश्चित नहीं हो पाया। कालेज के प्रिन्सिपल के लिये यह काम श्री डी० ए० कुलकर्णी जी को सुपुर्द किया हुआ है किन्तु यह भी सुना है कि सरकार उन्हें इस अतिरिक्त काम के लिये अतिरिक्त पारिश्रमिक (एलाउन्स) नहीं दे रही। इस कालेज के लिये प्रयोगशाला में काम आने वाले उपकरणों को लगाने की स्वीकृति कब की मिली हुई हैं, पर आज तक वहाँ उपकरण लाने-लगाने की ओर कोई ध्यान ही नहीं देता। जो विद्यार्थी पढ़ते हैं उन्हें अनुसन्धान विषयक जानकारी प्राप्त करने के लिये बलरामपुर के मैडिकल कालेज में जाना-आना पड़ता है। जिस सरकारी कालेज में अच्छे अध्यापक, प्राध्यापक, प्रिन्सिपल तक न हों उपकरण न हो वहां क्या प्रबन्ध होगा? पाठक स्वयं अनुमान लगावें। सरकारी आयुर्वेद विद्यालय वास्तव में नाम के लिये खोला गया है, काम के लिए नहीं। सरकार तो केवल प्रोपेगण्डा करना चाहती है, काम करना नहीं। देशोत्थान के ख्याल से यह काम नहीं हो रहे। रुपया मिलता है केन्द्र से पर उसे खर्च तो जब करें आगे कोई सीखने वाला दिखाई दे तब न।

यह कालेज किस योग्यता के छात्र लेता है। इन विद्यार्थियों की योग्यता इन्टर साइंस तक होती है, संस्कृत का ज्ञान न होने के बराबर है। संस्कृत की इनके पास शायद ही कोई छोटी से छोटी डिग्री हो। इन विद्यार्थियों का कहना है कि हम लोग संस्कृत के विद्वान नहीं। न यहाँ सर्वांग आयुर्वेद पढ़ने के लिये आये हैं। हम तो इन्टर साइन्स पास करके इस इच्छा से इस कालेज में प्रविष्ट हुए हैं, कि यहाँ मिश्रित प्रणाली की शिक्षा दी जाती है अतः खिचड़ी कोर्स पढ़ने वाला विद्यार्थी पं० सत्यनारायण शास्त्री नहीं बन सकता।

उन विद्यार्थियों की मांगें हैं कि इस कालेज के लिये (१) सरकार एक करोड़ रुपया खर्च करे। (२) मैडिकल कालेजवत् इसे साधन-सम्पन्न बनावे। (३) प्रत्येक विभाग के लिए अच्छे अध्यापक नियुक्त किये जाँय। (४) और हमें वही विषय पढ़ाये जांय जो विद्यार्थी पढ़ना चाहते हों। पाठ्य-क्रम में वर्णित जिन विषयों को वे उपयुक्त नहीं समझते उन्हें पाठ्य-क्रम से निकाल दिया जाय। (५) इस कालेज से निकले स्नातकों को एम० बी० बी० एस० के बराबर की डिग्री माना जाय और (६) उन वैद्यों का वेतन डाक्टरों के समान स्तर पर रखा जाय और (७) उन्हें कालेज से निकलते ही सरकारी नौकरी देने का पूर्ण आश्वासन मिले। (८) यदि सरकार उपर्युक्त मागें स्वीकार करने के लिये तैयार न हो, तो इसे कानपुर मैडिकल कालेज के सुपुर्द कर दे। और हम सबों को अलोपैथी छात्रोंवत् एम० बी० बी० एस० के छात्रों में बदल कर ले ले।

यह है आयुर्वेद छात्रों की योग्यता की मुंह बोलती तस्वीर। जो कुर्सी तो मांगते हैं एक डाक्टर के बराबर बैठने की पर योग्यता की दृष्टि से साइन्स की अभी वर्णमाला ही पढ़े हैं और आयुर्वेद ग्रंथ जिस भाषा में लिखे गए हैं उस संस्कृत नाम के उड़ते हुए पक्षी का कभी स्वप्न में भी निदर्शन किया हो, पर अधिकार कम नहीं मिलने चाहिये। बलिहारी इस योग्यता की।

अब तुलना कीजिये उस छात्र से जो एम० बी० बी० एस० के पाठ्य-क्रम के लिए अपने को तैयार करता है। कोई भी छात्र जो एफ० एस-सी० कर प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण नहीं हुआ उसे मैडिकल कालेज में स्थान नहीं मिलता। यहां स्टेट आयुर्वेदिक कालेज के छात्र जिनकी साइन्स में योग्यता अभी वर्णमाला के अक्षर तक है, वह चाहते हैं कि उन्हें डिग्री उतनी ही बड़ी मिलनी चाहिये जितनी कि एक पांच वर्ष पढ़कर निकले अलोपैथी छात्र को दी जाती है। फिर उस पर तुर्रा यह कि हमें वही विषय पढ़ाये जायं जो हम पढ़ने की इच्छा रखते हों अन्य विषय कोर्स से निकाल दिये जायं। शिक्षा न हुई बच्चों का खिलौना हुआ।

पाठ्य-क्रम के विषयों का निर्धारण जहां बड़े-बड़े विद्वान मिलकर छात्रों की योग्यता बढ़ाने की दृष्टि से ऐसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय चुनकर, ढूंढकर रखते हैं कि जिसे पढ़कर प्रत्येक छात्र चिकित्सा विषय में प्रवीण हो सके। यहां छात्र चाहते हैं हमारे मन मर्जी का विषय पढ़ाया जाय। यह है आयुर्वेद विद्यार्थियों की मनोवृत्ति। फिर चाहते हैं हमें उतने ही अधिकार मिलें जितने अलोपैथ छात्र को मिलते हैं।

इधर तो हमारी सरकार की नीति यह है कि कोई भी चिकित्सा-व्यवसाय करना चाहता हो वह प्रत्येक विषय को प्राचीन पद्धति से ही नहीं नव्य अनुसन्धान पूर्ण वैज्ञानिक चिकित्सा के प्रत्येक पहलू से पूर्ण दक्ष होना चाहिए और चिकित्सा का अधिकार ऐसे ही व्यक्ति को मिलना चाहिए, न कि शतमारी भवेत वैद्यः जन-समाज के सौ व्यक्तियों के जीवन के साथ खेलकर जावन का अनुभव प्राप्त करने वाले वैद्यों को।

क्या हम आयुर्वेद के मानदंड को नीचा नहीं कर रहे ?

एक तो हमारे प्राचीन लिखे ग्रन्थ ही आज से दो हजार वर्ष पूर्व की स्थिति के हैं। उस समय से लेकर क्या संसार उसी स्थिति में ठहरा हुआ है। यदि हमारे ज्ञान वृद्धि का मार्ग अवरुद्ध हो गया है, तो संसार की अन्य जातियों का तो अवरुद्ध नहीं हुआ। वह आगे बढ़ी हैं उन्होंने खोजें की हैं और उन्हें इतनी अधिक जानकारी मिली है, कि उसकी तुलना में पिछला ज्ञान पासंग भी नहीं रहता।

एक व्यक्ति को मानसिक रोग है या मस्तिष्क में रसौली है तो क्या आज का चिकित्सक मस्तिष्क को मज्जा मात्र एक निर्जीव वस्तु मानकर मानसिक स्थिति को समझेगा या रसौली का इलाज मज्जा समझकर करेगा ? क्या गुर्दे केवल शरीर की पुष्टि देने वाले अंग हैं "वृक्कौपुष्टिकरौज्ञेयो" क्या इतना ही माना जायगा ?

जब इस बात का पूर्ण बोध हो चुका हो कि वृक्क रक्त में से मूत्र जैसे विकारी तरल को छानकर निकालने वाला शरीर का एक महान उपयोगी अंग है, तब क्या संसार का चिकित्सक इसी ज्ञान पर सन्तुष्ट हो सकेगा।

"शिराभिस्तज्तले नीतं बस्ती मूत्रत्वमाप्नुयात्"

मूत्र सिरा मार्ग से वस्ति में जाता है, बस ! मूत्र बनता कहां पर है। और शिराओं में आता कहां से है। क्या मूत्र प्रणाली को सिरायें कहना चाहिए ? वास्तव में उस समय इसका ज्ञान ही नहीं था। बस, इतना ही जानते थे 'विण्मूत्रमाहारमलः' विष्टामूत्र आहार का मल है। इसी शरीर ज्ञान के बूते हम उन चिकित्सकों के तुल्य अधिकार मांगते हैं जो इन बातों को पूछने पर हमारा केवल मौखिक रूप से सन्तोष नहीं करते प्रत्युत प्रत्यक्ष दिखलाने के लिये जिनके पास साधन भी हैं। आयुर्वेद छात्र जो पढ़ने के लिए आए हैं न तो वह संस्कृत का ज्ञान रखते हैं न अंगरेजी का। थोड़ी सी हिन्दी पढ़कर चाहते हैं वैद्य नहीं उन्हें डाक्टर की उपाधि दे दी जाय। वह हमारी सरकार से यह आशा किये बैठे हैं। काई मूर्ख ही सरकार होगी जो उन्हें अधिकारी प्रदान करेगी।

मान्यता देने का प्रश्न—सरकार के वरिष्ठ अधिकारी जब स्पष्ट रूप से कह रहे हैं कि इस समय चिकित्सा सम्बन्धी विषय का जितना ज्ञान बढ़ चुका है, देसी चिकित्सक उसे नहीं जानता। स्वास्थ्य सम्बन्धी सिद्धांतों को विद्यमान अनुसन्धान के आधार पर नहीं समझता, शरीरधर्म शास्त्र के सम्बन्ध में जो जानकारियां प्राप्त हुई हैं, उनका उसे कोई ज्ञान नहीं। ऐसा चिकित्सक यदि कहे कि हमें सरकार मान्य करके वही अधिकार दे जो उसने अलोपैथ डाक्टरों को दिये हैं। यह बात कहना तो एक मूर्ख और एक पठित को एक कोटि में लाने के तुल्य मसला है।

शल्य हमें आता नहीं, शालाक्य हम नहीं जानते। न्याय वैद्यक के नाम से हमारे यहाँ कोई विषय नहीं, प्रसूतिशास्त्र का अध्ययन हम दाई का काम समझते हैं। जिस रसायनशास्त्र का औषध-निर्माण से पूर्ण सम्बन्ध हो जिसके आधार पर ही हम औषध के गुण-धर्म को निश्चित कर सकते हों, वह हमारे यहां कोई जानता नहीं। ऐसी दशा में इन्हें वैद्य की गद्दी पर नहीं—कहते हैं हमें डाक्टर की कुर्सी पर बिठा दिया जाय, यह मांग हो रही है। हम इस मांग को अत्यन्त अनुचित समझते हैं।

किन्तु साथ ही स्वास्थ्य-मन्त्री श्री डी०पी० करमरकर जी का यह कहना कि इस मामले में सरकार स्वदेशी की भावना को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं है। उनका स्वदेशी चिकित्सा-पद्धति को स्वीकार करने से मुकरना हम इससे भी अधिक अनुचित मानते हैं।

जो कांग्रेस के नेता स्वराज्य मिलने से पूर्व एक बार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं अनेकों बार इस बात का समर्थन करते रहे थे कि स्वतन्त्रता मिलते ही हम देशी चिकित्सा-पद्धति को अपनावेंगे, इसका संरक्षण करेंगे, इसकी उन्नति के लिए कुछ उठा नहीं रखेंगे। आज वही कांग्रेस सरकार के प्रधान मन्त्री व स्वास्थ्य-मन्त्री तक अपने दिये आश्वासन से मुकर रहे हैं। यह कितनी चिन्ता की बात है।

क्या देशी चिकित्सा-पद्धति को समुन्नत करना सरकार का कर्तव्य नहीं?

जब सरकार ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार किया और अधिक प्रान्तों ने भी इसे राज्यभाषा मान लिया तो जिस तरह राज्यभाषा को समृद्ध करने के लिये उसने कोष-निर्माण, साहित्य-निर्माण, लिपि-सुधार, टंकण-लिपि सुधार आदि कार्यों के लिये लाखों रुपया स्वीकार कर उसके लिये भिन्न-भिन्न कमेटियां निर्माण कर राष्ट्रभाषा को समृद्ध करने का प्रयत्न किया है। स्वदेशी के प्रचारार्थ देश के अनेक कला-कौशल, खादी वस्त्र उद्योग आदि के लिये सरकार ने लाखों रुपया खर्च करना अपना कर्तव्य समझ इन मामलों को विधानयुक्त बनाकर अपने हाथ में लिया है। तब देशी चिकित्सा-प्रणाली को मान्यता देकर इसे समुन्नत करने की योजना क्यों नहीं बनाती?

जब सरकार इस बात को मानती है कि देशी चिकित्सा पद्धति में अनेक रोगों की बड़ी अच्छी से अच्छी औषधियां विद्यमान हैं और हमारे स्वास्थ्य-मन्त्री जी कहते हैं कि अनुसन्धान के बाद जो आयुर्वेद की औषधियां उत्तम पाई गईं उन्हें सरकार व्यापक रूप में उपयोग करेगी। इस तरह देशी चिकित्सा-पद्धति के उपयोगी अंश को हड़प करने को तैयार हैं पर उधर देश की प्राचीन उपयोगी पद्धति को धत्ता बताना चाहते हैं। क्या यह देशी चिकित्सा-पद्धति से न्याय किया जा रहा है? देशी चिकित्सा-पद्धति के प्रति जो अनुदारता दिखाई जा रही है, क्या यह कांग्रेस सरकार के लिए शोभनीय बात है?

अलोपेथी के लिये सुझाव और देशी चिकित्सा के लिये कोरा जवाब

सौतेली के साथ प्यार और मां को देश निकाला

अभी १५ मार्च का जिकर है कि स्वास्थ्य-मन्त्री जी ने सभी राज्यों के स्वास्थ्य-मन्त्रियों का एक सम्मेलन बुलाया था। उनके सामने देश में अलोपैथी डाक्टरों को बढ़ाने के उद्देश्य से अलोपैथी की शिक्षा देने वाले शिक्षकों की संख्या बढ़ाने के उद्देश्य से स्वास्थ्य मन्त्री श्री करमरकर जी ने सात सुझाव दिए हैं। यथाः—

१. शिक्षकों के अवकाश प्राप्त करने की आयु बढ़ाई जाय।

२. भारतीय चिकित्सा परिषद ने शिक्षकों का जो स्तर रखा है, उसे कम किया जाय।

३. कालेज के शिक्षकों को निजी प्रैक्टिस करने की अनुमति न दी जाय।

४. कालेजों के शिक्षक जो पूरे समय के लिये अनफिट हो जायं, उन्हें भी आंशिक रूप में नियुक्त किया जाय।

५. डाक्टरी शिक्षा देने वालों की विभिन्न श्रेणियों में जो वेतन का अन्तर है, उसे कम किया जाय।

६. डाक्टरी की शिक्षा लेने वाले छात्र प्रथम अन्य शिक्षकों से भी डाक्टरी लाइन की शिक्षा का काम सीखें, ताकि छात्र मेडिकल कालेज में प्रवेश पाकर अधिक योग्य बन सकें।

७. डाक्टरी शिक्षा में प्रवेश करने वाले छात्रों को पढ़ाई के लिये वजीफे भी दिये जांय।

श्री करमरकर जी के उक्त सुझावों को पढ़कर हमारी सरकार के रुख का पता लगता है, कि अलोपैथी के प्रति तो उनका पूर्णतया स्नेह पाया जाता हैं, इसलिये उसकी उन्नति के लिये स्वास्थ्य-मन्त्री को सुझाव सूझा करते हैं, किन्तु देसी चिकित्सा को संरक्षण देने की ओर उनका जरा भी ध्यान नहीं जाता। यदि हमारी सरकार को देसी चिकित्सा के प्रति जरा भी प्रेम होता और शहरों से बाहर निकलकर गांवों में जाकर आंख खोलकर देखती कि जन-समाज के स्वास्थ्य की कौन सी चिकित्सा-पद्धति रक्षा कर रही है, किन चिकित्सकों की चिकित्सा से जन-समाज का कल्याण हो रहा है, तब उसे देसी चिकित्सा के महत्व का पता लगता। पर हमारी सरकार का देसी चिकित्सा के महत्व की ओर देखने का ध्यान ही नहीं है। उसकी तो आंखें अलोपैथी की नव्य औषधियों के चकाचौंध से बन्द हुई हैं। जिनका यश गाती नहीं थकतीं। वह तो डाक्टरों के शिकंजे में इतनी कसकर जकड़ी हुई है, कि जो कुछ वह चाहते हैं, वही करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि सरकार चाहे तो देशी चिकित्सा की तीन साल में कायापलट हो सकता है। सरकार जिस तरह हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार कर उसको व्यापक बनाने के लिये प्रत्येक महकमों के अधिकारियों को उसमें शिक्षित करने के लिए प्रयत्न कर रही है, राजकाज में व्यवहृत होने वाले शब्दों का अंगरेजी से हिन्दी में अनुवाद कर रही है, हिन्दी कोष निर्माण के लिये संस्थाओं को अनुदान दे रही है, इन कामों को सम्पादन करने के लिए सब कमेटियाँ बनाकर उस पर काफी व्यय कर रही है। इसी तरह यदि हमारी सरकार आयुर्वेद को मान्यता देकर वैद्यों को स्वास्थ्य विषयक आधुनिक ढंग की ट्रेनिंग देने का प्रबन्ध करे और उन्हें अंगरेजी में न सिखाकर हिन्दी में उक्त विषय पढ़ाये व बताये जाँय, गांवों में स्वास्थ्य रक्षा के देखभाल का काम उनके सुपुर्द किया जाय, तो थोड़े खर्च से सारे देश में फैले देशी चिकित्सकों से स्वास्थ्य सेवा का इतना भारी काम लिया जा सकता है, जो २० वर्ष के प्रयत्न करने पर भी उतने अलोपेथ डाक्टर कभी पैदा नहीं हो सकते, व वह कर सकते हैं।

सरकार का ख्याल यह बना हुआ है कि देसी चिकित्सकों में से अधिक संख्या ऐसे चिकित्सकों की है कि उन्हें विद्यमान समय की उन्नति का कोई ज्ञान नहीं है। वह चिकित्सा विषयक विवर्धित ज्ञान से कोरे हैं। ऐसे भी देसी चिकित्सा-पद्धति में वैद्य-हकीम नाम से रजिस्टर्ड हो चुके हैं, जो कुछ भी पढ़े-लिखे नहीं। इसलिए तो सरकार ने रजिस्टर्ड देसी चिकित्सा-पद्धति के चिकित्सकों की श्रेणियां बनाई हैं। ए. श्रेणी में उन वैद्य हकीमों को लिया गया है जो कालेजों के पढ़े या किसी मान्य संस्था से निकले स्नातक हैं। सरकार यदि देसी चिकित्सा पद्धति को मान्यता देकर केवल ए श्रेणी में आये वैद्यों-हकीमों को ही कानून द्वारा अधिकार सम्पन्न बना दे और उन्हें कानून द्वारा अपने अधिकार में बांध कर एक वर्ष की ट्रेनिंग देकर स्वास्थ्य संरक्षण के कामों की देखभाल उनके सुपुर्द करे, तो वे इतने अधिक जन-समाज के स्वास्थ्य की आवश्यकता को पूरा कर सकते हैं, जो २० वर्ष तक प्रयत्न करने पर इतने डाक्टर मिलकर नहीं कर सकते। इस बात को समझने के लिए हमारी सरकार को चीन की ओर ही निगाह उठा कर देखना चाहिये यदि हमारी सरकार देसी चिकित्सा का जरा भी महत्व समझती होती, तो चीन में कोई आयोग भेजकर यह मालूम करती कि उन्होंने देशी चिकित्सकों को स्वास्थ्य संरक्षण के कामों में किस तरह लगाया और खपाया है। उनसे वह किस तरह देश के स्वास्थ्य संरक्षण का काम ले रही है? तब इन्हें पता लग जाता कि देशी चिकित्सा पद्धति की मान्यता देने से इतने महान विस्तृत देश के स्वास्थ्य को किस तरह उसने आसानी से संरक्षण कर लिया है। हम भी इस उपयोगी मार्ग का अवलम्बन कर देश के गिरते स्वास्थ्य का संरक्षण कर सकते हैं। पर हमारी सरकार काम थोड़ा करना चाहती है, ढोल खूब पीटना चाहती है। और अलोपैथ हिमायतियों के चक्कर में पड़ी देशी चिकित्सा के महत्व की कुछ नहीं समझ रही। इसीलिये वह देश की एक महान प्राचीन चिकित्सा-पद्धति की उपेक्षा कर जन-स्वास्थ्य की स्थिति का कोई सुधार नहीं कर रही। यह सरकार की उपेक्षा नीति नितान्त निन्दनीय ही नहीं, प्रत्युत ग्रामों के बिगड़ते स्वास्थ्य की वह जिम्मेवार है। जहां उसके कारिन्दे पहुँचते ही नहीं और हजारों व्यक्ति चेचक, हैजा, पेचिस जैसी बीमारियों के शिकार बनते चले जा रहे हैं। सरकार को ग्रामों के स्वास्थ्य का जरा भी ख्याल होता तो लोक-सभा के सदस्यों की वह आवाज सुनती, कि उनके नुमाइन्दे क्या कह रहे हैं। पर उसका तो अपने विचारों के व्यक्तियों का बहुमत मिला होता है। इसी से वह जन-समाज के चुने सदस्यों का तिरस्कार करती चली जा रही है। सरकार की यह नीति देश के स्वास्थ्य संरक्षण के लिये बड़ी घातक सिद्ध हो रही है।

सरकार कोई आयोग नियत कर इस स्थिति का पता क्यों नहीं लेती?

यदि सरकार की देशी चिकित्सा-पद्धति के प्रति जरा भी सहानुभूति होती, तो उसे चाहिए था कि अपने सदस्यों में से निष्पक्ष व्यक्तियों की एक कमेटी ही बिठाकर इस बात की तहकीकात कराती कि क्या देश के जन-समाज के स्वास्थ्य संरक्षण में देसी चिकित्सक कोई उपयोगी सिद्ध हो सकते है। यदि हाँ, तो किस तरह? इनका उपयोग देश के स्वास्थ्य संरक्षण में कैसे लिया जा सकता है। क्या यह लोग लाभदायी सिद्ध हो सकते हैं? यदि इन बातों को वह मालूम करती, तो देशी चिकित्सा-पद्धति के

[शेष पृष्ठ ७८ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाद्योजांश और रोग

हम जब चिकित्सा कार्य में प्रवृत्त होते हैं, तो उस समय सबसे बड़ी कठिनाई यह आती है, कि रोगी जब अपनी नाड़ी वैद्य के हाथ में देता है और बिना कुछ बताये वैद्य जी से पूछा जाता है कि क्या तकलीफ है, तब वह चक्कर में पड़ते हैं। नाड़ी ऐसी दुरूह ज्ञान कराने वाली कोई टेलीफोन की तार तो होती नहीं जिसके रिसीवर को पकड़कर हम आसानी से दूसरे की बात को सुन लें। नाड़ी से तो वास्तव में हृदय के स्पन्दन गति का ज्ञान, रक्त द्रव की न्यूनाधिकता का ज्ञान, रक्तचाप की वृद्धि या ह्रास का अनुभव, ज्वर हो तो स्पन्दन की वृद्धि से ज्वर का अनुमान हमें लगता है। पर शरीर में विकार असंख्य होते हैं। उन सबों को नाड़ी पकड़ कर कभी नहीं जाना जा सकता। इसीलिये होशियार चिकित्सक नाड़ी को पकड़े-पकड़े फलादेश के मूल का उद्घोष करता है। ओहो! तुम्हारे भीतर तो वात, पित्त या कफ–जो उसकी आकृति से परिलक्षित होते हों––वह बढ़े हैं। वात, पित्त कफ या इनके मिश्रित रूप बताकर रोगी का मौन भंग करता है। रोगी अब अपनी व्यथा के रूप क्या हैं? उसका वर्णन स्वयं करने लगता है, इससे वैद्य रोग को कुछ समझने की ओर अग्रसर होता है। किन्तु जब रोगी निर्बलता के साथ शीतपित्ति, पाण्डुता, आक्षेप, मुखछाले, रक्तस्राव, नक्तान्ध, त्वक्स्फोट, नुकीली हाथों पैरों की फुन्सियां, अश्मरी, दांतों की निर्बलता, मसूढ़ों की शोथ, या हड्डियों की क्षीणता, उसके विकास में बाधा, या हाथ-पैर-छाती की हड्डियों का टेढ़ा-मेढ़ा होना, त्वचा का पीला हो जाना, या क्षुधा का घट जाना, हृदय का कोई विकार या कष्ट, दांतों का हिलना या स्नायु जाल में कहीं शोथ, मन्द ज्वर, गर्भिणी को वमन या वमनेच्छा वृद्धि त्वचा पर नीले टेढ़े-मेढ़े बेडौल धब्बों का पड़ना, रक्तस्राव का कहीं न कहीं होना, शरीर पर कहीं न कहीं सूजन होना, रेचन या जीर्ण संग्रहणी, मानसिक निर्बलता, हृदयोद्वेग, अरुचि, अनिद्रा, शरीर का भार घटते जाना, नेत्र शोथ, आंखों से ज्यादा मैल निकलना, बलगम आना, दांतों का रंग बदल जाना और बीच से खुरना या खोखले हो जाना, आंख से ज्यादा पानी बहते रहना, गृध्रसी रोग (गृध्रसी स्नायु में चलित पीड़ा), कम दिखाई देना आदि में से अनेक ऐसे लक्षण बताता है. इन लक्षणों को सुनकर चिकित्सक वात, पित्त, कफ के भीतर आने वाले रोगों में से कौन से हो सकते हैं? इसका अन्दाजा लगाता है। जो रोग अनेक हों तो उनके कारण भी अनेक हो सकते हैं। वह सभी कारण तीन दोषों के अन्दर तो समा नहीं सकते। इस समय जो भी निदान का क्षेत्र विस्तृत हुआ है, उसका ज्ञान वैद्यों को होता नहीं, न वह नव विवर्धित ज्ञान को समझने का प्रयत्न करते हैं। तभी वह सही रूप में रोग के कारण को समझ नहीं पाते। हमारे निदान में निर्दिष्ट लक्षणों से संसार की समस्त व्याधियां कभी भी जानी नहीं जा सकतीं। न इनकी संख्या निर्धारित हो सकती है। एक ही मुख में पड़ने वाले छालों के कई कारण हो सकते हैं, एक ही रतौंधा या नेत्र-ज्योति की कमी कई कारणों से हो सकती है। एक ही अजीर्ण, अतिसार, संग्रहणी, क्षुधानाश के कई कारण होते हैं। इसलिये सबों को केवल वात, पित्त, कफ की श्रेणी में ही लाकर उन्हें नहीं समझा जा सकता। उन्हें समझने के लिये ही हमें नव्य ज्ञान-विज्ञान का आश्रय लेना पड़ता है।

इस समय खाद्य-पेय वस्तुओं में ऐसी चीजों की विद्यमानता मालूम की गई है जिनकी कमी से अनेक बीमारियां हो जाती हैं। खाद्य-पेय जितने भी पदार्थ हैं, वह शरीर को केवल पोषण-सामग्री ही नहीं देते, प्रत्युत स्वास्थ्य को स्थिर रखने में भी उनका बहुत बड़ा हाथ है। आजकल स्वास्थ्य संरक्षण की समस्या को समझने के लिये ही भोजन कैसा हो उसमें किन-किन खाद्य-पेय द्रव्यों में विद्यमान स्वास्थ्य रक्षण के लिये किन किन अंशों की आवश्यकता रहती है, वह किन किन द्रव्यों में विद्यमान रहते हैं, इसको समझना ही स्वास्थ्य संरक्षण का सही विधान है। खाद्य द्रव्यों में शरीर की क्षय-पूर्ति के अलावा स्वास्थ्य सरक्षण के लिये जो उसमें विद्यमान उपयोगी अंश होता है, उसे आधुनिक रसायन-शास्त्रियों ने खाद्य द्रव्यों को विश्लेषित कर भिन्न कर लिया हैं। इसी का उन्होंने विटामिन नाम दिया है। हमने इसे खाद्य का ओज या सार भाग होने से उसका खाद्योजांश नाम रखा है। वास्तव में यह खाद्योजांश (विटामिन) की जब किसी व्यक्ति के खाद्य में काफी समय तक क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनी रहती है, तो फिर उसका स्वास्थ्य गिरने लग जाता है और धीरे-धीरे उसके शरीर में भिन्न-भिन्न खाद्योजांशों की कमी के कारण अनेक लक्षणों (चिन्हों) वाला या तो कोई विशेष रोग प्रादुर्भूत होता है जैसे दन्तवेष्ट, प्रशीताद, नीलोदर्द (पेलाग्रा) संग्रहणी आदि या कोई-कोई लक्षण ही परिस्फुट होते है।

अभी थोड़े दिन की बात है दो-चार दिन से मेरे पैर की पिण्डली की माँसपेशी सोते-सोते रात को ऐसे जोर से ऐंठकर दूसरी मांसपेशी पर चढ़ने लगी कि इससे बड़ी तकलीफ होती थी। सोते-सोते एकाएक दर्द के मारे आंख खुल जाती। यह पैर की पिण्डलियों का आक्षेप था। साथ में यह भी त्रुटि कुछ दिन से बढ़ रही थी कि मुंह में छाले पड़ने लगे थे और जब अखबार या पुस्तक पढ़ने के लिये बैठता और लगातार पढ़ता रहता तो थोड़ी देर बाद ही एक टुक निगाह बनाये रखने पर फिर अक्षर धूमिल धूमिल दिखाई देते। जोर लगाकर पढ़ने पर आंख से पानी बहने लग पड़ता। अवस्था ७० की हो जाने से यह नेत्रज्योति के घटने का कारण न था। प्रत्युत इसका कारण खाद्योजांश ए और बी, (B_1) की कुछ कमी थी। क्योंकि इन दोनों को जब पांच-सात दिन लेते हो गये तो तीनों ही कष्ट घटकर जाते रहे। यदि इन खाद्योजांशों की कमी पूर्ति न होती तो यह कष्ट कभी जा नहीं सकते थे। जब विना दवाई खाये ही इन खाद्योजांशों की गोलियां खाते रहने पर ६–७ दिन में ही उक्त कष्ट जाते रहे तो यही निश्चय सही कहां जा सकता है, कि खाद्योजांश न्यूनता के कारण यह रोग प्रादुर्भूत हुये थे। यदि हमें इन नये कारणों का ज्ञान न होता तो हम यही समझते रहते कि मुंह में छाले पित्त विकार से है। नेत्र दृष्टि की कमी भी पित्त के ही कारण से है। आक्षेप वात के कारण है। वात-पित्त दोनों ही कुपित हो रहे हैं, यही बात समझकर हम कोई औषधि ढूंढते। पर यहां तो औषध का कोई काम न था। खाद्योजांश औषध नहीं है। औषध की इस परिभाषा को कि जो चीज रोग को दूर करे सब औषध है, यहां ऐसा नहीं कहना चाहिये। क्योंकि खाद्योजांश तो भोजनीय द्रव्यों में विद्यमान रहने वाला वह अंश है जो उन प्राणियों के स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिये ही वनस्पतियों में स्वतः उत्पन्न होता है। और इनसे रहित किसी खाद्य द्रव्य का जब हम सेवन करने लग जाते हैं तो उनकी हीनता से यह कष्ट अर्थात स्वास्थ्य की स्थिर व्यवस्था जो बनी चली आती है उसमें और शरीर की क्षय-पूर्ति में तथा विपाक विधान के समय रस के सात्म्यीकरण में बाधा आ जाती है। इसी से रसात्मक वस्तुओं से आगे की चलने वाली जीवन रसायन की प्रक्रिया बिगड़ जाती है और सात्म्यीकृत होने वाले द्रव्यों के जो रूप बनने चाहिये वह न बनकर उनसे विषाक्त रासायनिक रचना के पदार्थ बन जाते हैं, जिनका प्रभाव विशेष-विशेष अवयवों अंगों पर बुरा पड़ता है और उन अवयवों अंगों के कार्य-व्यापार में व्याघात खड़ा हो जाता है जो हमें कष्ट के रूप में दिखाई देता है।

रोगों के अनेक कारणों में से खाद्योजांश की कमी भी कारणभूत मालूम की गई है इसीलिये क्षय-पूर्तिजन्य दोषों से जिस तरह दोषज बीमारियों की श्रेणी मालूम हुई है इसी तरह खाद्योजांश न्यूनाधिकता से उत्पन्न रोगों की एक भिन्न श्रेणी निर्धारित हुई है। जिसमें अब तक प्रशीताद, स्कर्वी, नीलोदर्द आदि ९–१० व्याधियां विशेष रूप से हो जाती है। इनका सही ज्ञान वैद्यों को प्राप्त करना ही चाहिये तभी वह चिकित्सा में सफल हो सकते हैं।

[शेष पृष्ठ ७६ का]

द्वारा जन-समाज के लिये इनकी उपयोगिता उसके सामने आ सकती थीं। पर सरकार तो पहिले ही से इसे उपेक्षित किये यह धारणा बनाये बैठी है, कि इनको संरक्षण नही देना है। जिनके चक्कर में हमारी सरकार फंसी हुई है, उनके लिये तो देशी चिकित्सा-पद्धति सौतेली मां दिखाई देती है। उन्हें डर लगा रहता है, कि यदि इसे सरकार ने मान्यता दे दी, तो इस घर में फिर हमारा अकेले का आधिपत्य जाता रहेगा। फिर तो हमारी प्रतिद्वन्दिनी सामने आकर हमारे स्वार्थ में बाधक बन जायगी। इसी-लिए तो वे लोग जो सरकार पर छाये हुए हैं उसको सोचने का भी अवसर नहीं देते। और सरकार अपने पुराने वायदे भूलकर अब हमारी ओर सहानुभूति की एक आंख भी नहीं उठाती। इसीलिये मान्यता का प्रश्न खटाई में पड़ा हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रीठा से उसका सत्व निकालना

जिस वनस्पति के अंश को हम उपयोगी समझते हैं उसको किस तरह अलग किया जाय इसका ज्ञान हम वैद्यों को बिलकुल नहीं है। इस समय के रसायनशास्त्र से हमें इसी बात को जानने की विधि प्राप्त होती है, कि जो गुणदायी अंश किसी वनस्पति में विद्यमान है उसे उस वनस्पति से भिन्न करने के लिए यह शास्त्र सुझाव देता है, कि उस उपयोगी अंश मात्र को ही अपने में घुला लेने वाले कौन से द्रव्य हैं। इन घोलकों में यह शक्ति होती है कि उस विशेष अंश को अपने में मिलाकर उस वनस्पति से निकाल इलहदा कर ले तभी फिर हम उस घोलक में से अन्य उस घोलक को अपने में मिलाने वाली और उसे तहनशीन बनाने वाली वस्तु को भी उस रसायन शास्त्र से ही जानकर हम उसमें मिलाते हैं। परिणाम यह होता है कि जिस घोलक में वनस्पति का प्रभावकारी अंश घुला होता है वह उससे इलहदा होकर या तो पानी में घुला रह जाता है या नीचे बैठ जाता है। फिर उसको धो, छान, निथार विधियों से स्वच्छ कर उसे भिन्न कर लेते हैं। यह विधान बिना आधुनिक रसायनशास्त्र को पढ़े हम नहीं जान सकते। हमारे वनस्पतिशास्त्र और रसशास्त्र अभी तक इस गहराई तक नहीं पहुँच पाये हैं। यदि वैद्यों को ऐसा ऊंचा ज्ञान प्राप्त हो जाय, तो निश्चय ही उन्हें दारिद्रपूर्ण जीवन कभी बिताने का अवसर ही न आवे। हम आपके सामने रीठा में के सत्व निकालने का प्रमाण रखते हैं। आप शायद न जानते हों कि रीठा में जो सत्व भाग होता है, वह वस्त्रों के मैल को ही नहीं काटता प्रत्युत उसमें खूब झाग भी पैदा करता है। इसी गुण के कारण रीठा के सत्व का उपयोग साबुन-निर्माण में होता है। साबुन में जो झाग उठती है, वह रीठा सत्व के कारण ही उठती है। इसीलिये रीठा के सत्व का उपयोग साबुन-उद्योग में खूब होता है। इसके सत्व को निम्न विधि से इलहदा करते हैं।

रीठे के फल का छिलका बारीक चूर्ण करके उसे पानी में डालकर एल्यूमीनियम के बर्तनों में उबालते हैं, वह सत्त पानी में घुलकर आ जाता है। उसे छान लेते हैं, फिर उस पानी में प्वनियावलिकेत (अमोनियम सलफेट) मिला देते हैं। इसके मिलाने पर सत्त इससे मिलकर पानी के नीचे बैठ जाता है। बस, उसे इलहदा कर लेते हैं और सुखाकर रख लेते हैं। यह फिर पानी में घुल जाता है, या न घुलता हो तो थोड़ा सा हलाहल (अलकोहल) मिलाने पर घुल जाता है। इस सत्व की मांग भारत में ही नहीं विदेशों में बहुत है। इसको निकालने के बड़े २ कारखाने विदेशों में स्थापित हैं सम्भव है। यहां भी शायद एक दो हों।

तेलों को बिगड़ने से बचाना

सरसों, तिल, बादाम, गरी आदि के तेल ज्यादा दिन रखे रहें तो वह एक विशेष प्रकार की दुर्गन्ध देने लगते हैं। हमारे औषध निर्मित तेल यथा नारायण तेल, लाक्षादि तेल आदि भी छः महीना बाद गन्ध छोड़कर दुर्गन्ध देने लगते हैं। इसी तरह देखा गया है कि खुशबूदार तेल जो सिर में लगाने के काम में लेते हैं वह भी छः-आठ महीना पड़े रहें तो उनकी खुशबू खराब हो जाती है और उसके स्थान पर बुरी गन्ध आने लगती है। बादाम रोगन ६ महीना पड़ा रहे तो वह फिर खाने के योग्य नहीं रहता। इस तरह प्रत्येक तेल क्यों बिगड़ जाते हैं। इसकी ढूंढ-खोज हुई है। ज्ञात हुआ है कि तेलों में वानस्पतिक विकर (इन्जाइम) होते हैं जिनके कारण तेलों का रासायनिक यौगिक टूटता रहता है और वह विच्छेदित होकर दूसरे रूप में बदलते रहते हैं। इसी से उनमें सड़ाव उत्पन्न हो जाता है। हैदराबाद की सरकारी औद्योगिक अनुसन्धान-शाला इस बात का परीक्षण कर रही है कि तेलों को सुरक्षित रखने वाली कौन सी ऐसी वस्तु हो सकती है। उनकी इस खोज से ज्ञात हुआ है कि यदि कत्था या कत्थे से निकाला हुआ सत (एका केटेशिन) को पीसकर किसी तेल में मिला दिया जाय और तेल को एक बार मथकर या हिलाकर बोतल में बन्द करके रख दिया जाय तो वह तेल एक साल तक पड़ा रहे तब भी उसकी गन्ध, स्वाद सब ठीक बने रहते हैं। खुशबूदार तेलों की गन्ध और नारायण तेल लाक्षादि तेल आदि तेलों के गुण में भी कोई अन्तर नहीं आता है।

जब तेलों में होने वाला परिवर्तन रुक जाता है तो उसका गुण स्थिर रहता है। यह एक बड़े महत्व की खोज है। आशा है वैद्य सरकार की इस खोज से लाभ उठावेंगे। जिनके तेल काफी अर्से तक पड़े रहते हैं उन्हें चाहिये कि उन तेलों में थोड़ा-थोड़ा बढ़िया कत्था पीसकर मिला दें और उसे हिलाकर बोतल बन्द करके रख दिया करें। इनसे उनका तेल सुरक्षित रहेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषम ज्वर (मलेरिया) नियन्त्रण

आज चार वर्ष से देश के उन भागों में, जहां मलेरिया का अधिक प्रकोप होता था, सरकार की ओर से इसके नियन्त्रण का कार्य आरम्भ किया गया था। मलेरिया नियन्त्रण का काम यही था मच्छरों को मारना, उनके अण्डों-बच्चों को मारना। इस काम को करने का सरकार के पास एक अमोघ साधन हाथ आया था, डी० डी० टी० नामक दवा को घरों में, गलियों में, अन्धेरे मकानों में, बाग-बगीचों में छिड़कना। डी० डी० टी० वास्तव में छोटे-छोटे कीट, पतंग, मक्खी, मच्छरों, जूं-चीलड़ों, किलनी कीड़ों, खटमल-पिस्सुओं को मारने में बेनजीर दवा है। जूं- चीलड़, मक्खी, मच्छर, खटमल, पिस्सुओं से बचने के लिये तो मैं भी इनका उपयोग कई वर्षों से कर रहा हूँ। वास्तव में इसके प्रभाव से यह छोटे-छोटे जीव समाप्त हो जाते हैं।

सरकार का आज चार वर्ष से आरम्भ किया अभियान मुझे तो बहुत सफल हुआ दिखाई देता है। यह मलेरिया नियन्त्रण का काम अभी तो बड़े-बड़े शहरों तक ही सीमित था। कुछ शहरों से आसपास के इलाके तक भी मलेरिया नियन्त्रण अभियानी पहुंच जाया करते थे। इन्हीं स्थानों के परिणाम जो मेरी दृष्टि में आ रहे हैं वह बहुत कुछ सफल कहे जा सकते हैं। आज तीन वर्ष से अमृतसर, दिल्ली और बम्बई में जहां मुझे रहने और जाने-आने का अवसर मिलता रहा है इन शहरों में तो शायद ही कोई व्यक्ति इन वर्षों में मलेरिया से पीड़ित हुआ हो। इसे देखकर मैं कह सकता हूँ कि इस काम में सरकार जो व्यय कर रही है वह निरुद्देश्य नहीं, उससे सरकार एक भयंकर सताने वाली बीमारी से जनता को बचाने में सफल हुई है। सरकार को भी अपने इस कार्य में सफलता दिखाई दे रही है। इसीलिये उसने निश्चय किया है कि मलेरिया नियन्त्रण का काम अब सारे देश के कोने-कोने तक फैलाया जाय और गांवों में पहुंचकर मच्छरों के वंश का ही सफाया कर दिया जावे। यदि मच्छर नहीं रहेंगे तो मलेरिया भी नहीं होगा, यह निश्चित बात है। इसीलिये सरकार ने मलेरिया नियन्त्रण के लिये इस वर्ष १६० नये केन्द्र स्थापित करने का निश्चय किया है। इसके साथ सरकार ने इन केन्द्रों में एक-एक डाक्टर ऐसा रखने का निश्चय किया है, जो प्लीहावृद्धि यकृद्दाल्योदर के रोगी के रक्त की परीक्षा करके भी यह देखेंगे कि इस रोगी के रक्त में कहीं विषम ज्वर के जीवाणु तो विद्यमान नहीं हैं। यदि रोगी के रक्त में विषमी जीवाणु विद्यमान हों तो उस रोगी का रक्तपान करने वाला मच्छर उन विषमी जीवाणुओं का फिर वाहक बन जाता है। बीमार रोगी को काटकर यदि वह मच्छर पुनः स्वस्थ मनुष्य को जाकर काटे तो वह विषमी कीटाणु स्वस्थ व्यक्ति के रक्त में पहुँचकर उसे विषम ज्वर से पीड़ित कर सकते हैं। इसलिये तो इन रोगियों की परीक्षा करना और उससे फैलने वाले ज्वर से जन-समाज को बचाना भी मलेरिया नियन्त्रण के अन्तर्गत आता है। इस काम पर अगले आयोजन तक हमारी सरकार ६३ करोड़ २४ लाख रुपया खर्च करने जा रही है, जिसमें से ५२ करोड़ २ लाख रुपया तो केवल नियन्त्रण-कार्य पर ही खर्च किया जायगा। यदि मलेरिया का उन्मूलन होगया तो निश्चय ही ग्रामीण वैद्यों का आधे से अधिक व्यापार समाप्त हो जायगा, यह मानी हुई बात है।

आधुनिक प्रयोग विधियाँ

चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में आज कल बड़ी तेजी से उन्नति हो रही है, अन्वेषण की नई २ विधियां आविष्कृत हो रही हैं और उन की सहायता से ज्ञान में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है।

शरीर में स्थित भिन्न २ अङ्गों का क्या २ व्यापार है इसे जानने समझने के लिये आविष्कृत एक विधि का हम यहां अपने पाठकों को परिचय कराते हैं। इस विषय पर विचार करने वाले वैज्ञानिकों ने सोचा कि यदि किसी अङ्ग के भीतर प्रविष्ट होने वाले और उस अङ्ग से सिरा द्वारा बाहर निकलने वाले रक्त का पृथक २ विश्लेषण किया जाय तो उनके परस्पर अन्तर से इस बात का पता चल सकता है कि रक्त के कौन २ से घटक पर इस अंग के भीतर क्या क्या परिवर्तन हुआ। इसी बात को कार्य रूप में परिणत करने के लिये आज से कई वर्ष पूर्व सोवियत संघ के लेनिन ग्राड नगर में लण्डन नामक एक वैज्ञानिक ने अपने शिष्यों के सहयोग से सर्वप्रथम एक ऐसी शल्य क्रिया का आविष्कार किया जिसे नलिका स्थापन विधि (Angiostomy) का नाम दिया गया।

[शेष पृष्ठ ८१ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्पविष का उपयोग

हमारे देश में बम्बई का हाफकिन इन्स्टीट्यूट बहुत अर्से से सर्पविषों की विषाक्तता का अध्ययन करता चला आ रहा है। वह इस बात की भी शोध कर रहा है कि हमारे देश में अनेक सर्पदंश की औषधियां जो ग्रन्थों में आई हैं वह कहाँ तक उपयोगी है। कई चिकित्सक केवल सर्पदंश की ही चिकित्सा करते हैं। अब तक इस संस्थान ने समस्त शास्त्र वर्णित औषधियों में जो लभ्य है उनपर परीक्षण किये हैं। संस्थान ने कुत्ते पाले हुए हैं जिस औषध के सर्पविष निवारण के गुण को देखना होता है उसका सूचीवेध् रूप तैयार कर लेते हैं। उधर सांप से कुत्ते को कटवाते हैं या जरा सा सर्पविष का प्रथम सूचीवेध दे देते हैं, बाद में उस औषध का सूचीवेध देते हैं और उसका परिणाम देखते हैं। अब तक जो परिणाम देखे गये हैं वह सन्तोषजनक नहीं मिले हैं प्रायः कुत्ते मर जाते हैं।

यह संस्थान कई प्रकार के सांपों का विष निकालकर उसे सुखाकर संचित कर रखता है। कौन-कौन से सर्प के विष में क्या उपयोगी गुण हैं? इस पर यह संस्थान अनुभव लेता तो सर्पबिष के काफी उपयोग का पता चलता। क्योंकि हमारे रसग्रन्थों में सन्निपात ज्वरों में कुछ सूचिकाभरण रस ऐसे आये हैं जिनमें सर्पविष की भावना लिखी है। किन्तु इस युग के वैद्यों में अनुसन्धान की प्रवृत्ति नहीं रही। इसलिये इन सूचिकाभरण रसों का उपयोग भी लुप्त हो गया है। हम इन रसों का उपयोग भूलते जा रहे हैं। किन्तु रूस में इ० एन० पावलोवस्की अकादमी नामक संस्थान में इस ओर काफी निरीक्षण व परीक्षण हो रहे हैं। इस संस्थान के विद्यार्थी मध्य-एशिया के जंगलों में ट्रांशकाकेशिया की मरुभूमि में जाकर वहाँ के बड़े-बड़े जहरीले सांप पकड़कर चमड़े के थैलों में बन्द करके ले आते है। इनका फिर वे विष निकालकर उसे सुखाकर सुरक्षित रखते है और उन विषों का प्रयोग करके उनके गुण-धर्म को जानने का प्रयत्न करते हैं। वह बहुत छोटी मात्रा के सूचीवेध बनाकर घोड़ों को सुचीवेध देते हैं। उन घोड़ों के रक्त में प्रतिविष तैयार होने देते हैं। जब घोड़ा काफी विष की मात्रा सेवन कर निर्विष हो जाता है उसके रक्त को निकालकर उससे रक्त वारि (सीरम) भिन्न कर इम्पूलस में बन्द कर सारे देश के हस्पतालों में भेज देते हैं। पशुओं या मनुष्यों को जब सर्प डस लेता हैं वह उस रक्तवारिका फौरन सूचीवेध देते हैं, इससे उस दंशित प्राणी का जीवन बच जाता है। इससे भिन्न उक्त संस्थान ने सर्पविष को औषध रूप में प्रयोग कर मालूम किया है: कि सर्प विष में एक यह बड़ा भारी गुण है कि रक्तस्रावी प्रवृत्ति के जितने भी रोग हैं यथा रक्त पित्त नकसीर, रक्तार्श, या शरीर में कहीं चोट लगने पर जिन लोगों का रक्तस्राव बन्द नहीं होता या ऐसे रक्तस्रावी व्यक्तियों का शल्य-कर्म करना हो तो उन पर नश्तर लगाते ही रक्त बन्द होना कठिन होता है। ऐसे व्यक्तियों को सर्प विष का जब सूचीवेध देते हैं तो रक्तस्रावी प्रवृत्ति बन्द हो जाती है। यही नहीं, यह भी देखा गया है, कि अपस्मार (मृगी) रोगी का सर्पविष उत्तम औषध है। कुछ प्रकार के कर्कटव्रणों (केन्सरों) में भी यह अच्छा लाभ दिखाता है। यही नहीं गृध्रसी (स्याटिका) और वातरक्त (गाउट) की तो यह अमोघ औषध जानी गई है। एक विशेष प्रकार के सर्प—वाइपेरा लेव्रेतीना—का विष गृध्रसी, वातरक्त के रोगी को अत्यल्प मात्रा में सूचीवेध देने पर दर्द बिल्कुल जाता रहता है। इस तरह सर्प-विष का काफी उपयोग मालूम हो गया है।

[शेष पृष्ठ ८० का]

वृक्क, यकृत, क्लोम आदि जिस अंग के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करनी हो उस अंग में प्रविष्ट होने वाली रक्त धमनी में शल्य कर्म द्वारा एक ऐसी नलिका स्थापित कर दी जाती है जिस का नीचे का सिरा धमनी के रक्त के अन्दर रहे और ऊपर का सिरा त्वचा से बाहर निकला हो। ऐसी ही एक नलिका उस अंग से बाहर रक्त ले जाने वाली शिरा में भी लगा दी जाती है। अब इन नलिकाओं के मार्ग से पिचकारी द्वारा रक्त निकाल कर उसके परीक्षण से उपरोक्तपरिणाम पर पहुंचा जाता है।

इस विधि के प्रयोग से भोजन के पदार्थ रस रूप हो कर रक्त द्वारा भिन्न २ अंगों में पहुंचते हैं तो प्रत्येक अंग का भोजन के भिन्न २ घटकों पर क्या प्रभाव होता है इस का सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त करने में बड़ी सहायता मिली है।

यद्यपि यह शल्य कर्म कठिन है तथापि प्रायोगिक पशु इस शल्य कर्म के बाद भी वर्षों तक सामान्यावस्था में जीवित रहते हैं ऐसा देखा गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

卐 अलोपैथी से आयुर्वेद को दूर रखा जाय 卐

केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद् की वार्षिक बैठक ६ जनवरी को बेंगलौर में हुई। उसमें इस बात पर विचार हुआ कि आयुर्वेद को आधुनिक प्रणाली में मिला देना उचित होगा? सामुदायिक विकास मन्त्री एस. के. डे ने कहा वर्तमान हालतों में आधुनिक चिकित्सा प्रणाली से हमारी स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएं हल होती दिखाई नहीं देती। हम यह अनुभव करते हैं कि इस सम्बन्ध में आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली महत्वपूर्ण सहायता देगी। किन्तु जब तक आयुर्वेद प्रणाली का स्तर ऊंचा नहीं हो जाता तब तक इसे आधुनिक चिकित्सा प्रणाली से मिलाना उचित न होगा। इस तरह से वक्ताओं ने आयुर्वेदिक और अलोपैथी चिकित्सा पद्धति के एकीकरण का प्रबल विरोध किया। कोई भी इस बात के पक्ष में नहीं था कि विकासशील अलोपैथी के साथ अविकसित, अवरुद्ध आयुर्वेदिक प्रणाली को इसके पास तक लाया जाय। हाँ इस प्रणाली में कोई उपयोगी औषधियां हो तो उन्हें अवश्य अपनी चिकित्सा प्रणाली में स्थान देना हितकर होगा।

हमारा वैद्य समाज तो स्वयम् अलोपैथी के पास फटकना नहीं चाहता, किन्तु वह भी चोरी चोरी से औषधियों का व्यवहार करना उचित समतझता है। जब हम स्वयम् उससे १२ कोस दूर रहना चाहते हैं तो मिलने मिलाने का प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु वैद्य समाज और अलोपैथी वाले जो मिलने का विरोध करते हैं क्या दोनों का दृष्टिकोण एक है? नहीं। इस विषय में दोनों का दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न है। वैद्य तो इस डर के मारे आधुनिक चिकित्सा पद्धति के पास फटकना नहीं चाहते कि कहीं विद्यमान प्रयोग जन्य सिद्धान्तों को हमने समझ लिया तो हमारा विश्वास पूर्वाचार्यों के उन सिद्धान्तों से उठ जायगा फिर हम न घर के रहेंगे न घाट के। आयुर्वेद के सिद्धान्त न रहे तो इस तरह आयुर्वेद आयुर्वेद नहीं रहता। यह तो अपने प्राचीन सांस्कृतिक सिद्धान्तों के विनष्ट होने के डर से इससे दूर रहना चाहते हैं, उधर अलोपैथी वाले इस दृष्टि से इसे अपने पास फटकने नहीं देना चाहते कि इसके सिद्धान्त आज से दो सहस्र वर्ष पुराने घिसे फिसे हैं जिनको वह आज से कई शताब्दी पूर्व छोड़ चुके हैं। उनका कहना है कि आयुर्वेद को मिलाने से वह पुराने सिद्धांत फिर सामने आवेंगे और उन्हें फिर हमने हटाना है, क्योंकि उनकी उपयोगिता जाती रही है, इसलिये ऐसी पद्धति को जब तक वह स्वयम् विद्यमान स्थिति तक न ले आवें अलोपैथी के साथ मिलाना ठीक न होगा। क्या हमारा वैद्य समाज अपनी निर्बलता और कमियों को देखने समझने में समर्थ है?

श्री पं० उपेन्द्रनाथ दास जी विद्यापीठाध्यक्ष निर्वाचित

आयुर्वेद विज्ञान के गतांक में पाठक पढ़ चुके हैं कि महासम्मेलन के अधिकारियों ने अपनी गद्दी खिसकती देख किस प्रकार से स्थायी समिति का अधिवेशन बम्बई में बुलाने का षड्यन्त्र रचा परन्तु वैद्य समाज को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि परिणाम फिर वही रहा जिस का अधिकारियों को भय था।

विद्यापीठाध्यक्ष के दुबारा मतदान में श्री पं० उपेन्द्र नाथ दास जी पर्याप्त बहुमत से सफल हुये हैं। मत गणना २३ अप्रैल की शाम को महासम्मेलन कार्यालय में हुई। परिणाम इस प्रकार रहा——

श्री पं० उपेन्द्रनाथ दास	५७३ मत
श्री प्रभाकर चैटर्जी	४२३ मत

३२ वोट अवैध माने गये और १४१ वोट इसलिये गणना में सम्मिलित नहीं किये गये क्योंकि उनके साथ हस्ताक्षरित प्रतिज्ञा पत्र नहीं थे।

पं० उपेन्द्रनाथ दास जी का नाम सम्मेलन सदस्यों तथा वैद्यसमाज में चिरकाल से सुविदित हैं। दूसरी ओर श्री प्रभाकर चैटर्जी का नाम शायद इस चुनाव के अवसर पर विद्यापीठ के क्षेत्र में पहली बार सुना गया पर दल गत कूट नीति के कारण उनके पक्ष में सत्यासत्य सभी प्रकार का धुआंधार प्रचार किया गया। परिणाम से प्रकट होता है कि अधिकांश वैद्य समाज इस निम्न स्तर के प्रचार से प्रभावित नहीं हुआ और उन्होंने स्वतन्त्रता एवं विवेकपूर्वक अपने मत का प्रयोग किया, यह सन्तोष की बात है।

हम पं० उपेन्द्रनाथ दास जी का उन की सफलता पर अभिनन्दन करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महासम्मेलन और विद्यापीठ भंवर में

अपने देश की महान राष्ट्रीय संस्थाओं में अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन तथा उसी की एक प्रधान शाखा अखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ है। हमारा हिन्दी साहित्य सम्मेलन सन् १९१० के अक्टूबर में स्थापित हुआ, जिसने हिन्दी को इस देश की अधिकतर राजभाषा का पद दिलाया। इस हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना के साथ ही अ० भा० आयुर्वेद सम्मेलन की स्थापना हुई। आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति के रूप में पुनरुजीवित करने के उद्देश्य से इन दोनों ही सम्मेलनों के प्रथम अध्यक्ष हुए महर्षि मदनमोहन मालवीय और दोनों ही प्रायः एक जैसी रूप रेखा तथा कार्यक्रम पर विकसित हुए। दोनों के ही परीक्षा विभागों ने काम किया और दाम भी लिये। जिससे आकर्षित होकर बाद में धूर्त स्वार्थी लोग इनमें आ घुसे। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पक्ष में यह बात अच्छी रही कि धूर्त लोग जब तक उसे दबोचने का प्रयास कर ही रहे थे कि हिन्दी संविधान में स्वीकृत हो गई। इसके बाद कुचक्र वेग से चला और राजर्षि टंडन को भी लोगों ने नाचीज बना देने की चेष्टा कर सम्मेलन की दुर्गति कर दी। परन्तु आयुर्वेद महासम्मेलन अभी सफलता से बहुत दूर था कि एक बहुत बड़े महत्वाकांक्षी ने आयुर्वेद के ऋषि श्री यादव जी त्रिविक्रम जैसे महासम्मेलन के संस्थापक की अवज्ञा करके इस संस्था पर अधिकार ज़मा लिया। महासम्मेलन भंवर में पड़ गया। एक व्यक्ति के इशारे पर सब कुछ होने लगा। इस व्यक्ति के आंतक से कोई मुंह न खोल सकता था। परन्तु एक समृद्ध वैद्य पं० रामनारायण ने अपने सचित्र आयुर्वेद में आयुर्वेद विज्ञान के लेख प्रकाशित करने का साहस प्रकट किया और उस डिक्टेटर के कोप भाजन बने। बम्बई में मुकदमा चला, जिससे सब कुछ स्पष्ट हो गया। इस मुकदमे में बहुत सी चीजें स्पष्ट हुई, जिनसे हमें कुछ मतलब नहीं परन्तु अब—

चुनाव चर्चा

चल रही है। मैं वैद्य नहीं पर इस संस्था से तथा आयुर्वेद से प्रेम है। मैं नहीं चाहता कि सम्मेलन की ही तरह महासम्मेलन और इसकी विद्यापीठ की भी दुर्दशा हो। राष्ट्र की एक आंख (सम्मेलन) को दुष्टों ने विकृत कर दिया है। दूसरी आंख महासम्मेलन पर इनकी आंख लगी है, इसे भी फोड़ना चाहते हैं।

मैं चुनाव में न किसी का समर्थक हूं न विरोधी। परन्तु हरिद्वार, कनखल के अपने वैद्य मित्रों के पास मैंने चुनाव आन्दोलन के पत्रक आदि देखे हैं। बड़ी ही छीछालेदर है। अमुक वैद्य अमुक ऋषि का वंशज है, इसलिये अपना मत उसे दो और वह इतनी भाषायें जानता है, इसलिये उसे अपना मत दो। क्या वैद्य जन यह सब नहीं जानते? तब वह विद्वान कैसा? वह किसी का भी प्रपौत्र हो, इससे क्या मतलब योग्यता चाहिये जो छिपी नहीं रहती।

किसी योग्य वैद्य का समर्थन कोई सम्मतिशाली वैद्य करता है तो यह क्या अयोग्यता की बात है? किसी व्यक्ति के मित्र यदि राजा महाराजा या पूंजीपति हैं, तो क्या यह अयोग्यता है? क्या भिखारियों के द्वारा समर्पित सम्मानित वैद्य ही विद्यापीठ का अध्यक्ष ठीक रहेगा। अजीब बात है।

कहते हैं कि उसके पुत्र को उन्होंने नौकरी दे दी है, इसलिये विद्यापीठ के अध्यक्ष होने योग्य नहीं। हमें नहीं पता कि किसके पुत्र को किसने नौकरी दी है या नहीं दी है। परन्तु यदि किसी योग्य वैद्य के पुत्र को कहीं कोई सेवा पद दिया जाता है तो क्या उसका पिता अयोग्य हो जाता है। क्या किसी योग्य पिता की योग्य सन्तति को भी कहीं नौकरी न मिले। क्या नेहरू जी को पूंजीपतियों से पोषित कहकर उन्हें ही पता बतादें कि उन्होंने अपनी एक बहिन पूंजीपति को व्याह दी है और इसलिये हम उन्हें पूंजीपतियों से पोषित कहकर तिरस्कृत करदें? बिरला जैसे पूंजीपति नेहरू जी का समर्थन करते हैं तो नेहरू जी क्या अयोग्य हो गये?

अजीब समय है। भगवान हमारे देश बन्धुओं को सुबुद्धि दे, जिससे कि राष्ट्र की एक प्रमुख संस्था भंवर में न पड़े। अभी हमें बहुत काम करना है।

किशोरीदास वाजपेयी
कनखल (उ० प्र०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेद स्नातकोत्तर शिक्षाकेन्द्र जामनगर में नव्य प्रवेश

जामनगर के आयुर्वेदिक स्नातकोत्तर शिक्षाकेन्द्र में जून १९५८ में २५ नये छात्रों को प्रविष्ट किया जायेगा।

प्रवेश योग्यता निम्न होंगी :—

१. आयुर्वेदाचार्य अथवा ऐसे व्यक्ति जो मान्य आयुर्वेद विद्यालय व कालेज में कम से कम ५ वर्ष से अध्यापन कार्य कर रहे हों।

२. आयुर्वेद के ग्रेजुएट जिन्होंने किसी आधुनिक आयुर्वेदिक कालेज से आयुर्वेदिक तथा आधुनिक विषय सहित परीक्षा उत्तीर्ण की हो।

३. नव्य चिकित्सा विज्ञान के स्नातक अर्थात एम बी० बी० एस०

निम्न प्रकार के प्राथियों को प्राथमिकता दी जायगी।

(क) जो मान्य आयुर्वेदिक मेडीकल कालेज में अध्यापन कर रहे हों।

(ख) प्रदेशों के प्रतिनिधि जिनमें समुचित प्रवेश योग्यता हो।

४. प्रत्येक प्रकार के प्रवेशार्थियों को प्रवेशार्थ संस्कृत की परीक्षा (टैस्ट) देनी होगी।

५. आयुर्वेदिक प्रवेशार्थियों को संस्कृत के अतिरिक्त आयुर्वेदिक विषयों की एक मौखिक परीक्षा भी देनी होगी जिसकी योग्यता (under graduate standard) स्नातक परीक्षा से कम होगी।

६. प्राथियों को अंगरेजी, हिन्दी और संस्कृत का काम चलाऊ ज्ञान होना चाहिये।

शिक्षा काल—दो वर्ष

फीस—फीस कोई नहीं ली जावेगी।

निवास—छात्रों से किराया लेकर उन्हें निवास स्थान दिया जावेगा। भोजन का प्रबन्ध उन्हें स्वयं करना होगा।

छात्रवृत्ति—प्रत्येक छात्र को १००) मासिक छात्र वृत्ति दी जायेगी।

पाठ्य विषय

१. आयुर्वेद के मौलिक सिद्धान्त

२. आयुर्वेद के प्राचीन मान्यशास्त्र

३. आयुर्वेद का इतिहास ४. शरीर विज्ञान

५. कायचिकित्सा (निदान सहित)

६. द्रव्यगुण विज्ञान ७. रसशास्त्र और भैषज्य कल्पना। प्रार्थना पत्र केन्द्र कार्यालय से प्राप्त होने वाले निश्चित फार्म में २० मई, १९५८ तक लिये जावेंगे। परीक्षार्थियों को प्रवेश परीक्षा के लिये जून मास में निश्चित दिनों में बुलाया जावेगा तब उन्हें अपने खर्च पर जामनगर आकर ठहरना होगा।

प्रिंसिपल
आयुर्वेद स्नातकोत्तर शिक्षा केन्द्र
पोस्टबक्स नं० १११, जामनगर

पिलानी में आयुर्वेद शिक्षण की मनोवैज्ञानिक व्यवस्था

पिलानी में राजस्थान सरकार के पाठ्यक्रम और नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षण की व्यवस्था मनोवैज्ञानिक ढंग से की गई है। इस प्रणाली में छात्र को रटने की आवश्यकता नहीं रहती। हज़ारों चार्ट, मोडलस, यन्त्र, शस्त्र आदि के द्वारा नवीन विषयों की जानकारी भी आसानी से हो जाती है। यही कारण है कि पिछले वर्षों में अनेक बार हमारे यहां का परीक्षाफल शतिप्रतिशत रहा है। फिर भी कोई परीक्षार्थी तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण नहीं हुआ है। आयुर्वेदीय छात्रों को वनौषधि परिचय अनिवार्य है। इस वर्ष लोहागर, हरद्वार, ऋषिकेश और दहरादून की वनस्पति यात्राएं छात्रों ने कीं। अगले वर्ष रांची (बिहार) आदि में वनौषधि परिचय की व्यवस्था की गई है। औषधि निर्माणशास्त्र में कूपीपक्व रसायनों तक को सिखाने की व्यवस्था है। छात्र जो औषधियां बनाते हैं, उनका दैनिक विवरण रखना आवश्यक है। औषधियों का वितरण एवं मात्रा आदि का ज्ञान भी कराया जाता है। इसके साथ ही आयुर्वेदीय अनुसन्धान का कार्य भी चालू है। वैदिक कालीन आयुर्वेद पर जो विचार यहां किया गया है, उसका अखिल भारतीय महत्व है।

नव्य विज्ञान की प्रारम्भिक शिक्षा के साथ ही मल, मूत्र, रक्त आदि की नवीन प्रणाली से परीक्षा भी सिखाई जाती है। आयुर्वेद साहित्य समिति और उसकी पत्रिका के द्वारा छात्रों में लेखनकला को प्रोत्साहन दिया जाता है। आयुर्वेद सम्भाषा परिषद् छात्रों में वक्तृतत्व कला का विकास करती है।

यहां सुयोग्य छात्रों को भोजन आदि का पूरा खर्चा और कुछ को छात्रवृत्ति दी जाती है। इस वर्ष कई नई छात्रवृत्तियां भी दी जा रही हैं। शेष के लिए नल, बिजली तेल, निवास और अध्ययनव्यवस्था निःशुल्क है। प्रवेशार्थियों को मन्त्री, बिरला संस्कृत आयुर्वेद कालेज पिलानी (राजस्थान) से पत्रव्यवहार करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्युत् की भट्ठियां और औषध निर्माण की मशीनें !!

हम अभी तक धातु भस्में उपलों की अग्नि में तय्यार करते हैं। उपलों की आंच देने में यह त्रुटि सदा रहती रही है कभी आंच कम कभी अधिक लग जाती है, इसके नियन्त्रण के जो भौतिक साधन बताये हैं उन्हें अपनाने पर भी यह त्रुटि दूर नहीं होती, इसीलिये अन्य साधन ढूंढने पड़े। उनमें से विद्युत् की भट्ठियां सर्वोत्तम सिद्ध हुईं। विद्युत्भट्ठी में ताप नियन्त्रण की पूर्ण व्यवस्था होती है, जितनी भी मात्रा में आंच देना चाहें आप प्रसन्नता से दे सकते हैं। प्रत्येक धातु भस्में बनाने पर देखा गया है कि उन्हें एक जैसी आंच नहीं चाहिये। किस धातु भस्म को कितनी आंच देना है? इसका सही-सही ज्ञान आप हमारे लिखे भस्म विज्ञान नामक ग्रन्थ में प्राप्त कर सकते हैं।

और वह भस्में विद्युत् भट्ठी पर ही एक मात्रा में आंच देकर बन सकती है इसका अनुभव लिया जा रहा है और उस पर एक भिन्न ग्रन्थ तैयार हो रहा है। हमने ऐसी विद्युत् भट्ठियां निर्माण की हैं जिन पर धातु भस्म और कूपी-पक्व रस दोनों ही बन सकते हैं। छोटे बड़े कई आकार की भट्ठियां तय्यार करके उन पर अनुभव ले रहे हैं जो वैद्य इन भट्ठियों का उपयोग करेंगे वह निश्चिन्त बैठे हुए भस्में व कूपी-पक्व रस निर्माण कर सकते हैं। जिन्हें भट्ठी लगाने की इच्छा हो वह पत्र-व्यवहार करें।

और आज-कल औषधियों की मांग इतनी बढ़ गई है कि हाथ से औषधियां कूट, पीस कर उतनी जल्दी रस, वटी तय्यार नहीं होतीं जितनी मशीनों से होती हैं। हाथ तो लगातार घंटा, आधा घंटा काम कर सकते हैं फिर थक जाते हैं पर मशीन तो लगातार ८-९ घंटा या जितनी देर चाहें उन्हें चलावें क्या वह थकने वाली हैं? फिर खूबी सबसे बड़ी हमारी मशीन में यह है कि जिस तरह आयुर्वेद के ग्रन्थों में औषधियों की कुटाई, पिसाई और घोटाई (भावना) का जो विधान दिया है जिससे औषधियों का सार भाग गरम न हो कर वह नष्ट नहीं होते, बिल्कुल उसी विधि के अनुसार हमारी मशीनों से कुटाई, पिसाई घुटाई होती है और औषधियां घुट कर इतने सूक्ष्म अणु-अंशों में आ जाती हैं कि जिनका प्रभाव शीघ्र होता है। प्रत्येक मशीन बिजली की शक्ति से चलने वाली है। मशीनें निम्न हैं :--

चट्टू मशीन, ढोल मशीन, खरल मशीन, गोली मशीन, टिकिया मशीन, पालिश मशीन, आसव छानने की मशीन फिल्टर आदि। अधिक मात्रा में औषध निर्माण-कर्ता यह मशीनें हमारे कारखाने में आकर देखें और सारी व्यवस्था समझ कर अपने यहां यह मशीनें लगाएं।

निवेदक--मैनेजर पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी,

६०-६१ अकाली मार्केट, अमृतसर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवा गुटिका

(दिव्य रसायन)

वैद्यों ने चक्रदत्त या योगरत्नाकर का रसायनाधिकार पढ़ा होगा या भारत भैषज्य रत्नाकर पढ़ा होगा इन ग्रन्थों में शिवा गुटिका एक शिलाजीत सूर्य तापी का योग आया है जिसे कुछ वनस्पतियों, जीवनीय गणों की ओषधियों द्वारा ग्रीष्म काल के आतप में भावना देकर उसकी मलाई उतारने का विधान है फिर उसमें कुछ और ओषधियां डाल कर गुटी बनाई जाती है। वहां लिखा है इसे एक वर्ष तक सेवन करना चाहिये उसके निम्न लाभ लिखे हैं :—

दारुण आमवात, आढ्यवात, यक्ष्मा, पांडु, संग्रहणी, गुल्म, कुष्ठ, जड़ता, शून्यता, नपुन्सकता, उन्माद, मृगी, कृशता, भगन्दर, नेत्ररोग, शिरोरोग, उदर रोग, कर्णरोग, कंठरोग, फुफुसरोग, हृदयरोग आदि विविध रोगों में लाभ करती है।

एक हमारे मित्र जिन्हें कर्णनाद और सिर में चक्कर आते थे, सिर हल्का उड़ता सा, मन अस्थिर रहता था बीमारी किसीकी समझमें नहीं आ रही थी एक वयोवृद्ध वैद्य के बताने पर उन्हों ने उक्त योग की औषध लेकर विधि पूर्वक बनाया और उन्हों ने चार महीना सेवन किया ६० वर्ष की अवस्था में वे बिल्कुल ठीक हो गये। उन्होंने मुझे भी खाने का आग्रह किया, क्योंकि आज तीन वर्ष हुए मैं एक अंगरेजी दवाई (हार्मोन्स) की बनी दो गोलियाँ खा बैठा, उनका मेरे मस्तिष्क पर इतना बुरा प्रभाव पड़ा कि पढ़ने में मेरा दिमाग चट थक जाता। मैं १०-१० घंटे लगातार पढ़ने लिखने का काम करने वाला आदमी था, बड़ी परेशानी में पड़ा बड़े इलाज किये, पर कोई लाभ नहीं हो रहा था कई किताबें लिखते लिखते अधूरी रही हुई थीं, कैसे पूरी हो ? बड़ी चिन्ता थी। मैंने उनके कहने पर ३ महीना लगातार उक्त गुटिका खाई धीरे धीरे मेरी हालत ठीक होते होते बिल्कुल ठीक हो गई।

एक कनफटा योगी मेरे पास आया, उसे ५ वर्ष से मूत्र कृच्छ था उसने किसी साधु से ४ खुराक संखिया भस्म की खा ली थीं, बस तब से उसका मूत्र कम हो गया था और भूख बन्द हो गई थी बड़े इलाज किये थे पर लाभ नहीं हो रहा था, मैंने उस से कहा तुम भी दो चार महीना शिवा गुटिका खा लो. शायद इससे तुम्हें लाभ हो उसने चार महीने खाई और बिल्कुल ठीक हो गया।

ग्रन्थकारों ने इसे रसायन लिखा है, किसी रोग से, किसी विष प्रभाव से, जरावस्था से किसी भी तरह शरीर की जब कार्य व्यवस्था बिगड़ जाय, शरीर की कोषाएं निर्बल विकृत हो जायं तो ऐसी दशा में रसायन ओषधियां उस के स्वास्थ्य को बिल्कुल ठीक कर देती हैं, रसायन इसी का अर्थ है। यह हमने अपने पर प्रयोग कर प्रत्यक्ष देखा और अपने मित्र पर देखा। रसायन औषध दो चार दिन खाने वाली नहीं होतीं। इन्हें तो दो चार महीने ही खाना चाहिये। शास्त्र में इसकी मात्रा बहेड़े के दाने के बराबर लिखी है, मगर हमने ४ रत्ती की गोलियां बनाई थीं और दो दो गोलियां दोनों समय खाते थे। ५ तोला गुटिका एक मास के लिये होती है। हमने विक्रयार्थ इसके ५ तोला के पैकट बनाये हैं जिसका मूल्य ५ रु० रखा है आशा है जीर्ण वृद्ध रोगी इसका उपयोग कर फलाफल से सूचना देंगे।

पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी
अकाली मार्केट, अमृतसर
ब्रांच—खारी बावली, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ५ आषाढ़ सम्वत २०१५ संख्या ७

जुलाई १९५८

आयुर्वेद-विज्ञान

चिकित्सा संसार में क्रान्ति लाने वाला मुख्य वैज्ञानिक पत्र

AYURVED-VIJNAN

The Leading Hindi Journal Explaining The Ayurvedic System on Scientific Lines

सम्पादक
स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

विषय-सूची

१. भारत सरकार का स्वास्थ्य मन्त्रालय और आयुर्वेद ... १०१
२. दोष साम्यसिद्धान्त और क्षय-पूर्ति सिद्धान्त १०५
३. दूसरा पक्ष (ले० श्री शुकदेव शर्मा, प्रिंसिपल गवर्नमेंट आ० कालेज, रायपुर) १११
४. आयुर्वेद और विज्ञान की शिक्षा ११४
५. शुद्ध आयुर्वेद पाठ्यक्रम बम्बई राज्य का परीक्षा परिणाम ... ११६

प्रकाशक—
स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य, आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय, २२ फैज़ बाज़ार, देहली।

मुद्रक—बदलिया प्रिंटिंग प्रेस, दाईवाड़ा नई सड़क, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम

१—आयुर्वेद-विज्ञान प्रत्येक अंग्रेजी मास की १ तारीख को प्रकाशित होता रहेगा।

२—डाक-व्यय सहित इसका मूल्य ३) वार्षिक, एक प्रति का मूल्य ३० नये पैसे होगा।

३—पत्र मंगाने वालों को अपना पता साफ २ अक्षरों में लिखना चाहिये।

४—जिन व्यक्तियों के पास उस मास की ५ ता० तक पत्र न पहुंचे उन्हें इसकी सूचना देनी चाहिये।

५—यदि एक-दो मास के लिये पता बदलवाना हो तो उसका प्रबन्ध स्वयम् डाकखाने से कर लेना चाहिये। अधिक समय के लिये पता बदलवाना हो तो फिर हमें सूचित करना चाहिये।

६—पत्र व्यवहार करते समय ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये। अन्यथा उत्तर नहीं दिया जावेगा।

७—पत्र व मूल्य सम्बन्धी पत्र-व्यवहार मैनेजर आयुर्वेद विज्ञान के नाम से और लेख, समालोचनादि व पुस्तकादि सम्पादक के नाम से भेजना चाहिये।

८—कोई भी पत्र, पुस्तक समालोचना के लिये भेजी जाय उनकी दो प्रति भेजनी चाहिये।

९—आयुर्वेद विषयक वैज्ञानिक गवेषणापूर्ण लेखों को पत्र में सर्व-प्रथम स्थान दिया जायेगा और श्रेष्ठ सचित्र लेखकों को पुरस्कृत भी किया जायगा।

१०—वृथा के आडम्बर पूर्ण पृष्ठ-पोषक लेखों के लिये इसमें स्थान नहीं मिलेगा। किसी भी लेख को घटाने, बढ़ाने व प्रकाशित करने, न करने का सम्पादक को पूर्ण अधिकार होगा।

११—जो लेख भेजे जायें, कागज पर एक तरफ हाशिया छोड़ कर लिखे होने चाहिये।

१२—उत्तम २ अलभ्य आयुर्वेद साहित्य सम्बन्धी चित्र लेख व वनस्पतियों आदि को जो सुरक्षित भेजेंगे उनको सपारिश्रमिक मार्ग व्यय आदि सब आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय से दिया जायेगा।

१३—आयुर्वेद शास्त्र सम्बन्धी प्रश्नों को छोड़ कर किसी परामर्श सम्बन्धी या किसी रोगी के लिये रोग-सम्बन्धी प्रश्नों पर प्रति प्रश्न के लिये आयुर्वेद-विज्ञान के ग्राहक आठ आना, जो ग्राहक नहीं वह प्रति प्रश्न एक रुपये का टिकट प्रश्न के साथ भेजेंगे तभी उनके प्रश्न और उत्तर छापे जायेंगे।

विज्ञापन छापने के नियम

१—किसी भी विज्ञापन छापने वाले या बन्द करने वाले को पत्र प्रकाशन से १५ दिन पूर्व सूचना देनी चाहिये।

२—अश्लील सभ्यता के विरुद्ध विज्ञापन नहीं लिये जायेंगे।

३—कोई भी विज्ञापन जनता को धोखा देने वाला सिद्ध होने पर उसका प्रकाशन बन्द कर दिया जायगा और जब तक वह सन्तोषप्रद प्रमाण न देगा जो मूल्य आ चुका है वापस नहीं दिया जायगा।

४—विज्ञापन का मूल्य सर्वथा प्रथम लिया जायगा।

५—आधे कालम से कम विज्ञापन दाताओं को आयुर्वेद विज्ञान विना मूल्य नहीं दिया जायगा।

६—एक वर्ष के लिये विज्ञापन देने वाले को ≈) रुपया कमीशन काट दिया जायगा।

विज्ञापन के दर

७—१ पृष्ठ यानी २ कालम		की प्रतिबार	की छपाई	४०)
आधा पृष्ठ " १	"	"	"	२४)
चौथाई ,, १|२	"	"	"	१६)
टाईटल के पीछे के पृष्ठ की			"	" ५०)
" तीसरे "	की		"	" ४५)
" चौथे "	की		"	" ६०)

८—ट्रेड डायरैक्टरी में विषय वार विज्ञापन प्रति ३) रु० के हिसाब से लिया जावेगा।

मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेद-विज्ञान

आयुर्विदेव वितते किल शास्त्र जाते पुम्भिः प्रयत्नपरकैर्भवतीह लभ्यम् ।
शक्तिं शिवं च जनता यदि कांक्षतीयम् विज्ञानमेव भजतां सततं विशेषम् ।।

वर्ष ५ | आषाढ़ २०१५ वि०, जुलाई १६५८ ई० | अंक ७

भारत सरकार का स्वास्थ्य मन्त्रालय और आयुर्वेद

वैद्यों को इस बात का पता नहीं कि भारत सरकार ने स्वास्थ्य-मन्त्रालय के सुपुर्द कौन कौन से काम किये हैं। इसकी यदि उन्हें जानकारी हो तो वह स्वास्थ्य-मन्त्रालय को कभी उपालम्भ न दें। क्योंकि हर एक मन्त्रालय के सुपुर्द एक निश्चित काम होते हैं वह उन्हीं कामों पर ही विचार कर सकता है और उसमें सुधार के तथा उन्नति के काम कर सकता है उससे बाहर जा नहीं सकता। भारत सरकार ने स्वास्थ्य-मन्त्रालय के सुपुर्द ७ काम किये हैं वह निम्न हैं।

१—अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य संस्थाओं से सम्पर्क बनाये रखना, और पत्तनों (बन्दरगाहों) के निरोधालयों (क्वारन्टीनों) का प्रशासन करना।

२—इससमय देश में १७ के लगभग ऐसी संस्थायें हैं जिनका स्वास्थ्य-विज्ञान से और जन-स्वास्थ्य संस्थाओं से सम्बन्ध है यथा—(१) भारतीय विषम ज्वर संस्था दिल्ली (२) केन्द्रीय अनुसन्धान संस्था कसौली (३) केन्द्रीय औषध प्रयोगशाला कलकत्ता, (४) बी० सी० जी रक्त रस प्रयोग शाला गिण्डी, (५) स्वास्थ्य परिचारिका कालेज, नई दिल्ली, (६) विलिंगटन अस्पताल व उपचर्या गृह नई दिल्ली, (७) सफदरजंग शिशु पक्षाघात अस्पताल नई दिल्ली, (८) यौनरोग प्रशिक्षण केन्द्र सफदर जंग अस्पताल नई दिल्ली (९) अंशदायी स्वास्थ्य सेवा योजना औषधालय नई दिल्ली, (१०) भारतीय कर्कटव्रण अनुसन्धान केन्द्र बम्बई, (११) केन्द्रीय स्वदेशी चिकित्सा-पद्धति अनुसन्धान संस्था जामनगर, (१२) लेडी रीडिंग स्वास्थ्य स्कूल व रामचन्द्र लोहिया कल्याण-केन्द्र दिल्ली, (१३) मानसिक रोग अस्पताल रांची, (१४) अखिल भारतीय मानसिक रोग संस्था बंगलोर, (१५) चिकित्सा भण्डार डिपो नई दिल्ली, (१६) केन्द्रीय कुष्ठ संस्था नई दिल्ली, (१७) केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला नई दिल्ली। इन सबों पर स्वास्थ्य मन्त्रालय का प्रशासन है।

३—इसे अलोपैथी चिकित्सा अनुसन्धान में परिवर्धन करने का अधिकार है।

४—राज्य सरकारों और परिनियत परिषदों के परामर्श से नियमों में परिवर्धन करना और अलोपैथी चिकित्सा, औषध, दन्त-स्वास्थ्य, उपचारिका इन व्यवसायों का विकास करना और इन व्यवसायों की शिक्षा के लिये यथेष्ट स्तरों का निर्धारण करना, उन्हें लागू करना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५—राज्य सरकारों के परामर्श से औषध-द्रव्यों का मान निर्धारण करना और उसका पालन कराना, तथा खाद्य पेय द्रव्यों में मिलावट पर प्रतिबन्ध लगाना।

६—विशेष विशेष स्वास्थ्य समस्याओं की जांच में परिवर्धन करना और इस दिशा में की गई चेष्टाओं, प्रयत्नों का परस्पर समन्वय करना और चिकित्सा विज्ञान व स्वास्थ्य प्रशासन के विकास सम्बन्धी मामलों की जानकारी प्राप्त करना और उसका आदान प्रदान बनाये रखना।

७—स्थानिक स्वायत्त शासन विषयों पर व व्यवसायिक बातों पर साधारण लोगों में उत्साह उत्पन्न करना, उन्हें इस विषय की शिक्षा देना, इसी उद्देश्य पूर्ति के अर्थ स्थानिक निकायों में इन समस्याओं पर चर्चा और जानकारी आदान प्रदान करना, उसे बढ़ावा देना, अनुसन्धान के लिये प्रोत्साहन करना तथा स्वायत्त शासन के विकास की रूप रेखा निर्धारित करना। उक्त ७ मुख्य मुख्य मुद्दों में जो कार्य-विधि के उद्देश्य से रखे गये हैं इनमें से सबसे मुख्य प्रश्न इस समय स्वास्थ्य मन्त्रालय के सामने यह है कि स्वास्थ्य सेवाओं के लिये देश को जितने डाक्टरों की आवश्यकता है उसकी पूर्ति किस तरह हो यह मुख्य उद्देश्य है। इस सम्बन्ध में स्वास्थ्य मन्त्रालय द्वारा १९५७-५८ में जो कुछ प्रयत्न किया गया है उसका विवरण निम्न है।

१९५७-५८ में सात नये कालेज खोले गये

भारत सरकार ने दूसरी आयोजना में, १९५७-५८ के अन्त तक सात नये डाक्टरी कालेज खोलना स्वीकार किया और उनके लिये अनुदान दिया। वे नये कालेज इन स्थानों में खोले गये, कानपुर, रांची, जामनगर, भोपाल, जबलपुर, हुबली, और कुर्नूल।

इसके अलावा १३ डाक्टरी कालेजों को बढ़ाना स्वीकार किया गया, जिसमें से १० को अनुदान दिया जा चुका है। वे १३ कालेज इन स्थानों में हैं। मदुराई, दरभंगा, मैसूर, कटक, आगरा, गुन्तूर, डिब्रूगढ़, ग्वालियर, इन्दौर, जयपुर, तिरु अनन्त पुरम, अमृतसर, और बड़ोदा।

१९५७-५८ में १३ डाक्टरी कालेजों को बढ़ान और सात नये डाक्टरी कालेज खोलने के लिये ८४, ६४, १७७ रु० दिया गया। दूसरी आयोजवा में इस काम के लिये ६ करोड़ ५० लाख रुपया रखा गया है।

भारत सरकार को डाक्टरी शिक्षा सम्बन्धी सलाह देने के लिये एक समिति नियुक्त की गई थी, उसकी सिफारिशों पर उक्त नये कालेज खोले गये।

दूसरी आयोजना में, कालेजों पर होने वाले अनावर्त्तक खर्चा का ७५ प्रतिशत और आवर्त्तक खर्च का ५० प्रतिशत केन्द्रीय सरकार देगी। बाकी खर्च राज्य सरकार उठायेंगी। कालेजों से सम्बद्ध हस्पतालों का खर्च भी राज्य सरकार ही देगी।

इस समय देश में ४१ डाक्टरी कालेज है।

पूरे समय के शिक्षक

डाक्टरी कालेजों में पूरे समय के शिक्षक नियुक्त करने में जो अतिरिक्त खर्च होगा, उसके लिए सहायता देने के प्रश्न पर अभी अन्तिम निर्णय नहीं किया गया। अभी खर्च का हिसाब लगाया जा रहा है।

विभागों की उन्नति

१९५७-५८ में विशाखापत्तनम के डाक्टरी कालेज के एक विभाग की उन्नति स्वीकार की गयी। लखनऊ के दो विभागों को उन्नत करने पर भी विचार किया जा रहा है। डाक्टरी कालेजों के विभागों की उन्नति के बारे में राय देने के लिए एक समिति नियुक्त करने का विचार है।

विभागों की उन्नति के लिए १९५७-५८ में ६ लाख रु० रखा गया है। इसमें से ४,०५,४३६ रु० राज्य सरकारों को दिया जा चुका है।

१९५६-५७ और १९५७-५८ में भारत सरकार ने ६ डाक्टरी कालेजों में एक-एक नया विभाग खोलना स्वीकार किया। १९५७-५८ में इस काम के लिए ७ लाख रुपया रखा गया, जिसमें से १,५३,४३८ रु० राज्य सरकारों को दे दिया गया है। पंजाब और बम्बई की सरकारों ने भी अपने राज्य के कालेजों में नये विभाग खोलने के लिए प्रस्ताव भेजे। उन पर विचार किया जा रहा है।

(भारत सरकार के सूचना पत्र से)

बीकानेर में नया मैडिकल कालेज खुलेगा

राजस्थान सरकार ने बीकानेर में एक नया मैडिकल कालेज खोलने का निश्चय किया है। यह भी तय किया गया है कि जयपुर के मौजूदा मैडिकल कालेज का विस्तार किया जाए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिल्ली की पुरानी जेल में नया मैडिकल कालेज

दिल्ली जेल के भीतर एकबार लगभग डेढ़ हजार कैदियों की सभा में प्रवचन करते हुए राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कहा था इसे आप लोग जेल खाना न समझें। यह आपका अस्पताल है और जो अमलदार यहां काम करते हैं वे आप लोगों के चिकित्सक हैं। जन्म से कोई व्यक्ति जरायमपेशा नहीं होता। यह भी एक तरह का मर्ज होता है जो बाज लोगों को लग जाता है और जेलखाने में इस मर्ज का इलाज होना चाहिए।"

कौन जानता था कि गाँधीजी की यह भविष्यवाणी दिल्ली जेल की इस वीभत्स इमारत के बारे में सच निकलेगी। अब यह इमारत कैदियों को रखने की जगह नहीं रही। यहाँ के कैदी दिल्ली शहर से लगभग १० मील दूर तिहाड़ के निकट एक करोड़ रुपए की लागत से बनाई गई एक विशाल और शानदार इमारत में चले गए हैं जहां उनके लिए वे सब सुख-सुविधाएं उपलब्ध हैं जो पुरानी दिल्ली के मकानों में निवास करने वाली तीन-चौथाई जनता को भी प्राप्त नहीं हैं। मगर जेल की यह पुरानी इमारत कोई खाली यादगार नहीं रहेगी। दो-तीन महीने बाद ही यहाँ एक मेडिकल कालेज खुल रहा है जो दिल्ली की बहुत दिनों से चली आ रही मांग की पूर्ति करेगा।

कालेज में, जो दिल्ली प्रशासन के आधीन रहेगा, लगभग ८५ प्रतिशत दाखला दिल्ली के लड़को के लिए रखा गया है। लड़कियों के लिए तो यहां पहले से ही एक मेडिकल कालेज है जो लेडी हार्डिंग अस्पताल के साथ सम्बन्धित है। चूंकि लड़कों के लिए यहां डाक्टरी की पढ़ाई का कोई प्रबन्ध नहीं था और दूसरे राज्यों के मेडिकल कालेजों में यहां के लड़कों को दाखले की सुविधाएं नहीं मिलती थीं, इसलिए यह मांग काफी अर्से से चली आ रही थी। (दैनिक हिन्दुस्तान से)

सरकारी आयुर्वेदिक कालेज क्यों नहीं

वैद्य कहेंगे कि भारत सरकार का स्वास्थ्य मन्त्रालय इस तरह जो धड़ाधड़ अलोपैथी के कालेज खोलता जा रहा है उस पर करोड़ों रुपया पानी की तरह बहा रहा है आयुर्वेद की शिक्षा के लिए वह कोई कालेज क्यों नहीं खोलता ?

इस प्रश्न का उत्तर उन वैद्यों को भारत सरकार द्वारा दिये स्वास्थ्य मन्त्रालय के कामों में ढूंढना चाहिये। दूसरे यह भी उन्हें देखना और समझना चाहिये कि भारत सरकार ने आयुर्वेद-चिकित्सा-पद्धति को राज्य मान्यता भी दी है, या नहीं ? जिस पद्धति को राज्य मान्यता प्राप्त न हो उसको स्वास्थ्य मन्त्रालय किस आधार पर सहायता दे सकता है कैसे दे सकता है ? जो कार्य उसकी व्यवस्था में निहित नहीं उसे स्वास्थ्य मन्त्रालय कभी कर नहीं सकता।

स्वास्थ्य मन्त्रालय की ओर से प्रकाशित १९५७-५८ का संक्षिप्त विवरण जो हमारे सामने है उसके पृष्ठ १४ पर स्वदेशी औषध पद्धतियों का विकास शीर्षक के नीचे "एक करोड़ रुपये की व्यवस्था दर्शायी गई है। वहां बताया गया है।

द्वितीय पंच वर्षीय योजना के अन्तर्गत स्वदेशी औषध पद्धतियों (आयुर्वेद, यूनानी, होम्यो और प्राकृत) के विकासार्थ जो एक करोड़ रुपये की व्यवस्था है, उससे वर्तमान कालेजों की प्रगति और स्वदेशी औषध पद्धतियों के नये कालेजों की स्थापना के लिये २२१.४९ लाख रुपये की पूंजी सहित राज्य सरकारों की योजनाओं में ५२१.८३ लाख रुपये की व्यवस्था की गई है। केन्द्रीय सहायता का रूप निर्णीत हो चुका है और केन्द्रीय सहायता की स्वीकृति पर विचारार्थ राज्य सरकारों को भारत सरकार के पास प्रस्ताव भेजने के लिये कह दिया गया है।

८ मार्च १९५७ के एक परिपत्र के उत्तर में अनेक संस्थाओं से उनसे सम्बन्धित राज्य सरकारों के द्वारा प्रस्ताव प्राप्त किये जा रहे हैं और चालू माली वर्ष के दौरान उन योजनाओं के कार्यान्वित करने के लिये अबतक ८, २३, ५०० रुपये की रकम मन्जूर की जा चुकी है। उक्त विवरण से यह पता नहीं लगता १ करोड़ रु० की व्यवस्था से क्या कुछ बनेगा। केवल कागजी घोड़े मालूम देते हैं। स्वदेशी औषध पद्धति के विकास के बारे में भारत सरकार को मन्त्रणा देने के लिये इस मन्त्रालय में एक सलाहकार भी नियुक्त किया गया है।

वैद्यों से छिपा नहीं, स्वदेशी औषध पद्धति विकास के लिये भारत सरकार ने स्वास्थ्य मन्त्रालय को सलाह देने के लिये जिस योग्य विद्वान् वैद्य को नियुक्त किया है वह हैं श्रीयुत कविराज प्रतापसिंह जी वैद्यरत्न ! आज डेढ़ वर्ष से ऊपर हो गया आप इस पद पर नियुक्त हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस समय तक आपने स्वदेशी औषध पद्धति विकास के सम्बन्ध में स्वास्थ्य मन्त्रालय को क्या परामर्श दिया वैद्य समाज को इसकी कोई जानकारी नहीं।

स्वदेशी औषध पद्धति विकास का क्या अर्थ

१९५७-५८ के स्वास्थ्य मन्त्रालय द्वारा प्रकाशित संक्षिप्त विवरण में इस बात पर कोई प्रकाश नहीं डाला गया कि आज डेढ़ वर्ष से श्री कविराज जी की जो नियुक्ति इस पद पर हुई उन्होंने स्वदेशी औषध पद्धति विकास के लिये स्वास्थ्य मन्त्रालय को क्या परामर्श दिया और उसने अब तक क्या कुछ विकास की रूप रेखा बनाई उससे कितने स्वदेशी औषध पद्धति के चिकित्सकों को क्या लाभ हुआ। उक्त विवरण से कुछ पता नहीं लगता। इससे कोई भी वैद्य यह बात जानने में समर्थ नहीं हो सका कि उक्त विकास का अर्थ कहीं देशी औषध पद्धति की संमाप्ति तो नहीं।

क्या देशी औषध पद्धति को मिटाने की कोई योजना है ?

जो व्यक्ति आयुर्वेद औषध पद्धति से परिचित हैं वह अच्छी तरह जानते हैं कि आयुर्वेद पद्धति से बनने वाले जितने आसवारिष्ट व रस हैं इनमें से आसवों में स्वत: अलकोहल उठता है रसों में पारा या सिंगरफ पड़ता है। कोई रस बिना पारा गन्धक या सिंगरफ के मेल के नहीं बनता अभी अभी सरकार ने मद्य निषेध की आड़ में मेडिसनल ऐण्ड टायलट प्रेपेरेशन एक्ट लागू करके वैद्यों के आसवारिष्ट बनाने में बाधा खड़ी करदी है। अब दूसरी बाधा रसों के निर्माण में आयात नीति के द्वारा डाली गई है। यह छिपी बात नहीं कि पारा, गन्धक हमारे देश की उपज नहीं, जब से रस चिकित्सा का आरम्भ हुआ तब से ही यह विदेशों से आयात किया जाता है—और इसके योग से बनने वाली औषध में यह विशेषता होती है कि यह बीसों वर्ष तक पड़े रहें तो इन औषधियों के गुण कम नहीं होते। प्रत्युत

पुराणास्यु गुणैर्युक्ताः आसवाधातवौ रसाः

जितनी पारद गन्धक मेल की दवाइयां बनती हैं सब पुरानी होकर उनका गुण प्रभाव और अधिक बढ़ जाता है। आयुर्वेद पद्धति में रस ही ऐसी औषधियां हैं जिनके बल पर आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति का जीवन मरण है।

सरकार ने अपनी विदेशी मुद्रा साख को दृढ़ बनाये रखने के निमित्त आयात नीति इतनी कठोर कर दी है कि विदेश से पारा सिंगरफ का आना बिल्कुल बन्द हो गया है। जिसका परिणाम यह हो रहा है कि इस समय पारा सिंगरफ ९० रु० सेर हो गया है। फिर भी बाजार में वैद्यों को प्राप्त नहीं हो रहा। इस समय सारा वैद्य समाज पारा सिंगरफ के अभाव में रस बनाने में असमर्थ हो रहा है। जो पारा सिंगरफ ५-६ रु० सेर मिला करता था आज वह १०० रु० सेर वैद्यों को कठिनाई से प्राप्त हो रहा है। भारत सरकार का स्वास्थ्य मन्त्रालय और उसके सलाहकार श्री कवि० प्रतापसिंह जी की नियुक्ति किस उद्देश्य से हुई थी ? यही स्वदेशी औषध पद्धति का विकास स्वास्थ्य मन्त्रालय कर रहा है ? उसके प्रकाशित विवरण से क्या समझा जाय ? हम तो यह जानते हैं कि देसी औषध पद्धति विकास एक दिखावा मात्र है और उसके सलाहकार को भी शायद यह पता न हो कि उसकी नियुक्ति किस उद्देश्य पूर्ति के लिये की गई है ?

जब तक स्वास्थ्य मन्त्रालय की ओर से हमारे सामने इसका कोई विवरण नहीं आता हम इसे एक दिखावे मात्र से अधिक कोई महत्व नहीं दे सकते।

क्योंकि स्वदेशी औषध पद्धति विकास का कोई अर्थ नहीं

स्वास्थ्य मन्त्रालय ने आज ८ वर्ष में इस पद्धति के विकासार्थ क्या कुछ किया, सलाहकार ने इस पर स्वास्थ्य मन्त्रालय को इस सम्बन्ध में क्या सुझाया ? और उसके लिये स्वास्थ्य मन्त्रालय ने क्या कुछ बनाया। जब तक यह सारी बातें वैद्य समाज के सामने न आवें हम क्या जानें कि स्वास्थ्य मन्त्रालय स्वदेशी औषध पद्धति के लिये कुछ कर रही है। यदि वह कुछ भी स्वदेशी औषध पद्धति के लिये करता होता तो पारा, सिंगरफ जैसी नगण्य वस्तुओं के आयात पर प्रतिबन्ध को रोकता क्योंकि यह चीजें तो न किसी बड़े व्यवसायिक महत्व की हैं न इनके आयात से सरकारी विदेशी मुद्रा कोष पर कोई प्रभाव ही पड़ सकता था।

यदि भारत सरकार स्वदेशी औषध पद्धति का वास्तव में विकास करना चाहती है तो उसे स्वदेसी औषध निर्माण में प्रयुक्त होने वाले आसवारिष्टों को मैडीसनल एण्ड टायलेट प्रेपेरेशन ऐक्ट के शिकंजे से मुक्त कर देना चाहिये क्योंकि आसवारिष्टों में से कोई भी आसव मद्यवत् पेय नहीं है, बल्कि उनका उपयोग जहां होता है औषध के रूप में होता है यदि आसवारिष्टों का निर्माण बन्द हो गया तो इससे आयुर्वेद औषध पद्धति पर भयंकर आघात होगा। इसी तरह यदि सरकार ने पारा, सिंगरफ को आयात प्रतिबन्ध से मुक्त न किया और स्वास्थ्य मन्त्रालय के स्वदेशी औषध पद्धति विकास के सलाहकार कविराज प्रतापसिंह जी ने इस सम्बन्ध में स्वास्थ्य मन्त्रालय पर दबाव डालकर इन्हें प्रतिबन्ध से मुक्त न कराया तो वैद्य समाज यही समझेगा कि यह सलाहकार सरकार ने दिखावे मात्र के लिये रखे हैं। इनके परामर्श का वह कोई मूल्य नहीं समझती और स्वदेशी औषध पद्धति के विकास का यह आयोजन नहीं प्रत्युत उसे समाप्त करने का आयोजन बनाया है यह मार्ग उस समाप्ति का पथ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोष साम्य सिद्धान्त और क्षय पूर्ति सिद्धान्त

आयुर्वेदीय ग्रन्थों में दोषों की तीन दशायें बतलाई हैं।

क्षय स्थानं च वृद्धिश्च दोषाणां त्रिविधा गतिः। च। सू. १७, २।

दोषों की शरीर में तीन गतियां होती हैं। क्षय होना, साम्य रूप में रहना, और बढ़ना। यह दोष किन कारणों को पाकर घटते बढ़ते हैं? इस पर चरकजी ने सूत्र स्थाव २८-३-३३ पर कहा है कि शक्ति से अधिक श्रम करने से, शरीर के बाहर और भीतर की गर्मी के बढ़ने से। अहित आहार विहार का सेवन और वायु की चंचलता से दोष धातुओं में फैल कर रोगों को उत्पन्न करते हैं।

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिताः मलाः।

दोषों का कुपित होना ही समस्त रोगों का कारण है। अर्थात दोषों की ही क्षय वृद्धि से रोग होते हैं और "दोषसाम्यमरोग्यता" और दोष समावस्था में बने रहें तो आरोग्यता बनी रहती है। यहां पर दोषों का अर्थ शास्त्रकार वात, पित्त, कफ लगाते हैं, इसकी संगति शरीर धर्म विज्ञान से नहीं बैठती। जब शास्त्रकार मिथ्या आहार विहार से, शरीर की उष्णता से कोष्ठाग्नि का सम्बन्ध दोषों से मानता है तो हमें सबसे पूर्व आहार सम्बन्धी व उत्ताप सम्बन्धी उन कारणों को समझना चाहिये जिससे शरीर में दोषों की क्षय वृद्धि होती है। हमें जब तक आहार और उसकी पचन व्यवस्था का सही ज्ञान नहीं था और विपाक के पश्चात रस के सात्म्यीकरण विधि को सही रूप में नहीं जान पाये थे तब तक दोषों की क्षय, वृद्धि का सही ज्ञान नहीं हो सकता था।

हमारे शरीर के भीतर चलने वाली आहार व्यवस्था कैसी है? पूर्व-काल में इसका हमें सही ज्ञान नहीं था। हम जो कुछ खाते पीते हैं उसका पचन कैसे होता है? जैसा हम मानते हैं वैसी पचन विधि शरीर के भीतर नहीं चलती न ग्रहणी में कोई तिल प्रमाण अग्नि रहती है जो भुक्त द्रव्य को पचाती हो। प्रत्युत हमारे शरीर के भीतर बहुत सी रसःस्रावी ग्रन्थियां हैं उन में से कुछ ग्रन्थियों के रस उदर दरी में गिरा करते हैं, वह रस जब भुक्त द्रव्यों में मिलता है, तभी भुक्त द्रव्यों के कण गल कर रस रूप को प्राप्त होते हैं, इस बात को हम आज तक नहीं जान पाये थे। और जब तक भुक्त द्रव्य गलकर रस रूप को प्राप्त नहीं होते, शरीर के भीतर उनका प्रवेश नहीं हो सकता। हमारे शास्त्रों का परिपाक सिद्धान्त इसी ओर संकेत करता है। भुक्त द्रव्यों के कणों का घुलना और उसका कांदव बनना आयुर्वेदीय विपाक है। रस धातु उसी घुले हुये अंश को कहते हैं जिसका शोषण अन्न प्रणाली से होता है। इसी रस से अन्य समस्त धातुओं का परिपोषण होता है, जिसे शास्त्रकार सात्म्यरूप होना मानते हैं। भुक्त द्रव्यों के ग्रहण किये जाने के बाद उसका पचन, विपाक रस का धातुओं में प्रवेश और उसका सात्म्यीकरण व्यापार एक ऐसी क्रमबद्ध प्रक्रिया है जिसके पूर्वापर सम्बन्ध को पूर्व-काल में नहीं जाना जा सका था। इसका ठीक ठीक ज्ञान तो इसी उन्नीसवीं शताब्दी में आकर हुआ।

हम इस बात को सही रूप में नहीं जान पाये थे कि खाद्य द्रव्य कितने भेदों के हैं। हम इन्हें षड् रस रूप में जो विभक्त करते थे यह विभाजन वास्तविक नहीं था, क्योंकि उस पूर्वकाल में खाद्य द्रव्यों को विश्लेषित करके देखने का कोई साधन ज्ञात नहीं था। हमारे पास तो उस समय कुछ भौतिक साधन (ज्ञानेन्द्रियां) ही थे। रस का ज्ञान जिह्वा द्वारा करके ही हमने खाद्य पेय द्रव्यों को षड रसों में बांटा था। वास्तव में खाद्य पेय द्रव्यों के रूप रस-मय नहीं थे प्रत्युत त्रिपोष्य रूप थे। जिनसे शरीरावयवों को पोषण व शक्ति मिलती थी। जिससे शरीर का पोषण हो उसे ही पोषक द्रव्य कहा जा सकता है।

आयुर्वेदज्ञ इस बात को मानते हैं कि परिपाक रस से रक्त और मांस बनता है। जिस रस में विद्यमान द्रव्य से रक्त और मांस बनता हो हम उस परिपाक रसमें से उसे इलहदा करके नहीं जान पाये थे। परिपाक रस का तो समस्त भाग रक्त और मांस के रूप में सात्म्यीकृत नहीं होता। उसमें भी तो सार, असार रूप द्रव्य मिश्रित होते हैं। सार द्रव्य से आगे मेद, मज्जा आदि अन्य धातुओं का बनना शास्त्रकार बतलाता है। जिस सार रूप द्रव्य से मेद, मज्जा आदि धातुएं बना करती हैं उसे अब भिन्न करके निकाल लिया गया है। यह द्रव्य रक्त और मांस को बनाने वाला है इसीलिये इसका नाम अस्रजन रखा गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे ग्रंथकार यह भी मानते हैं, भुक्त द्रव्य से ही शरीर में उष्मा उत्पन्न होती है और यह उष्मा स्थिर बनी रहे तो शरीर के कार्यव्यापार ठीक रूप से चलते रहते हैं। यह उष्मा भोजनीय द्रव्यों के किन अंशों के सेवन से शरीर को प्राप्त होती है। इसका भी हमें कोई प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं हुआ था। हम जो यह माने बैंठे थे कि वायु की प्रेरणा से शरीर में गतियां होती हैं, वायु की प्रेरणा से शरीर सम्बन्धी अनेक क्रियाएं सम्पादित होती हैं, यह बात सही नहीं थी। इस समय हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि लकड़ी, कोयला आदि को जलाने से या तेल, पेट्रोल आदि को जलाने से शक्ति और ताप की उत्पत्ति होती है, इन्हीं की शक्ति से निर्जीव जगत् की बड़ी बड़ी मशीनें चलती देखते हैं। तेल से मोटरकारें, हवाई जहाज़ आदि सब इसी की शक्ति से गतिशील देखे जाते हैं। हमारे शरीर के भीतर भी निरन्तर कोयला या कज्जल जला करता है और उसका धुआं प्रश्वास से सदा निकलता रहता है, इस प्रत्यक्ष होने वाली क्रिया को देखते हुए भी हम इसके वास्तविक रहस्य को नहीं जान पाये थे। न हम इस बात को ही जान सके थे कि हमारे शरीरावयवों में सदा ही कोयला जला करता है उससे ही शरीर को उष्मा प्राप्त होती रहती है और उसी से ही शरीर को गतियां मिलती हैं।

इस समय के अनुसन्धाव कर्त्ताओं ने प्रत्यक्ष साधवों से सिद्ध किया है कि जीवित प्राणियों में जो उष्मा स्थिर रूप में बनी रहती है इसका कारण शरीरावयवों में कज्जल का जलना है। यदि शरीर के कण कण में कज्जल न जले तो शरीर में ताप उत्पन्न नहीं हो सकता। गतियाँ वायु के कारण नहीं हैं प्रत्युत इस तापोत्पादन के कारण हैं। इस कज्जल के जलने से ही सदा शरीर को जीवन सम्पादन की शक्ति प्राप्त होती रहती है। शरीर में वायु जैसी कोई वस्तु नहीं होती जो क्रिया के लिये जीवात्मा को प्रेरित करती हो। यह तो एक कल्पना उस समय सामने इसलिये आई थी कि शरीर में क्रियाएं कैसे होती हैं ? इसके रहस्य कोउस समय जान नहीं पाये थे, इसीलिये बाहर अन्तरिक्ष में इस वायु के चलते हुए कार्य व्यापार को देखकर शरीर में भी इसी की प्रेरणा से यह जीवन के व्यापार चलते होंगे ऐसा मान लिया गया था। वास्तव में यह ठीक नहीं था। किन्तु उस समय इस सिद्धान्त से काम चल गया था, पर वह सच्चाई से बहुत दूर था।

प्राचीन काल की उक्त कल्पना को यदि हम निम्न रूप में बदल दें तो वायु की उपस्थिति की संगति का कुछ अर्थ निकल सकता है। गति शक्ति और तापोत्पादन के समय कज्जल ऊष्मजन से मिलकर ही जलता है और वह कज्जल जब ऊष्मजन से मिलकर जलता है तो वह ठोस रूप से वायु रूप में परिणत हो जाता है। कज्जल को जलाने के लिये भी प्राणवायु (ऊष्मजन) को ही प्राणि मात्र श्वास से ग्रहण करता रहता है। और यही कोयला जल कर जब धुआं के रूप में परिणत होता है वही प्रश्वास द्वारा हमारे भीतर से निकला करता है। इसकी असलियत को हम आयुर्वेदज्ञ नहीं जान पाये थे। न हम इस बात को ही जान सके थे कि हमारे शरीरावयवों में सदा ही अन्तर दहन की प्रक्रिया चलती रहती है. और उससे ऊष्मा उत्पन्न होती रहती है। इसी की शक्ति से हमारे शरीर के क्रिया व्यापार भी चला करते हैं।

इस समय के अनुसन्धान कर्ताओं ने प्रत्यक्ष साधनों से सिद्ध किया है कि जीवित प्राणियों के शरीर में जो ऊष्णता स्थिर रूप में बनी रहती है इसका कारण शरीरावयवों में कज्जल का निरन्तर जलना है। उसी से उष्मा उत्पन्न होती है और उसी के दहन से शरीर को कार्य करने की शक्ति मिलती है। यहां कोई वायु जैसी वस्तु शरीर में गति के लिये शक्ति प्रदान करने वाली प्रक्रिया नहीं चलती। यह तो एक कल्पना मात्र की चीज थी और उस समय इसलिये सामने आई थी क्योंकि किसी तरह से इसका समाधान कारक उत्तर नहीं मिल रहा था। यदि इस कल्पना को निम्न रूप में बदल दिया जाय तो हमारे वायु रूप के सिद्धान्त की कुछ संगति बैंठ सकती है। गति शक्ति और ताप उत्पादन के समय कज्जल ऊष्मजन से मिलकर जलता है और वह कज्जल ऊष्मजन से मिलते ही वायु रूप को प्राप्त हो जाता है इसी वायु की उत्पत्ति के समय उष्णता उत्पन्न होती है और उसी उष्णता से शरीर के अवयवों को गति मिलती है यही वायु शरीर के एक एक अवयवों में निरन्तर उत्पन्न होता रहता है और ऊष्मजन वायु इस दहन प्रक्रिया में मुख्य कारण है। ऊष्मजन यदि एक क्षण शरीर की कोषाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक न पहुँचे तो वह उसी क्षण क्रिया रहित होकर मर जाते हैं इसीलिये यह वायु शरीर को शक्ति और गति प्रदान करने में कारण है। इस तरह से इस शास्त्रीय सिद्धान्त की संगति बैठ जाती है। इस वायु के आदान प्रदान के लिये ही प्राणियों में फुफ्फुस की व्यवस्था प्रकृति में हुई है। फुफ्फुस ही इन दोनों वायुओं के आदान प्रदान के निमित्त हैं, जिसके कार्य व्यापार को हम आयुर्वेदज्ञ पूरी तरह से समझ नहीं सके थे आयुर्वेदीय वायु यदि इन दोनों वायुओं के समन्वय बन जाय तो सारा प्रसंग विज्ञान सम्मत बन सकता है और क्रिया शक्ति की व्याख्या भी समीचीन बन जाती है।

क्या षड्रस सिद्धान्त भी त्याज्य है? विद्यमान प्रयोग पद्धति से स्पष्ट है कि परिपाक रस में तीन ही श्रेणी के मुख्य द्रव्य विद्यमान होते हैं (१) अस्रजनीय (२) शार्करी (३) स्नेही। षड् रस रूप तो कोई द्रव्य होते ही नहीं। वह तो स्वाद होता है, प्रकार नहीं। भेद व प्रकार वह चीज है जिससे उनके रूप का भेद जाना जाता है। अस्रजनीय श्रेणी के वह विपाकीय द्रव्य होते हैं जिनसे रक्त और माँसावयवों की क्षय-पूर्ति होती है। अर्थात् इसी श्रेणी के द्रव्य ही शरीर के अवयवों में सात्म्य रूप को प्राप्त होते हैं। शार्करी और स्नेही द्रव्य इससे बिलकुल ही भिन्न होते हैं। यह सीधे ही शरीरावयवों की क्षय पूर्ति में काम नहीं आते। इन दोनों का मुख्य काम तो जल कर शरीर को उष्मा और शक्ति प्रदान करना है। हां! कभी अस्रजनीय पदार्थ की शरीर के भीतर कमी पड़ जाय तो उस दशा में यह दोनों फिर कोषाओं की क्रिया के द्वारा अस्रजनीय श्रेणी के द्रव्यों में बदले जाते हैं तब वे क्षय पूर्ति में काम आ सकते हैं।

क्षय पूर्ति का अर्थ क्या? हमारे शरीर के भीतर जो ऐच्छिक अनैच्छिक क्रिया व्यापार चला करते हैं इन्हीं व्यापार क्रिया में शरीरावयवों का कुछ न कुछ भाग क्षीण हुआ करता है। शरीर के क्रिया व्यापार के समय अवयवों का घिसना, टूटना, मृत होना शरीर का क्षय कहलाता है इसी क्षय की पूर्ति के निमित्त हम खाद्य द्रव्य ग्रहण करते हैं और उस खाद्य द्रव्य में से अस्रजनीय अंश को ग्रहण करके उन क्षीण अवयवों के भाग की पूर्ति करते हैं, विपाक रस द्वारा जिसे हम रक्त, मांस के रूप में युक्त रस का सात्म्यी करण मानते हैं यही वास्तव में क्षय पूर्ति कहलाता है।

यह बताने की जरूरत नहीं कि जब हम किसी रोग के कारण वा अन्य किसी कारण से क्षीण हो जाते हैं उस स्थिति में हम अपनी निर्बलता को दूर करने के लिये ही अच्छे से अच्छे पौष्टिक भोजन लेते हैं और हम देखते हैं कि उस पौष्टिक अंश के लेने से हमारी निर्बलता जाती रहती है, शरीर हृष्ट-पुष्ट हो जाता है। इससे सिद्ध है कि उस भोजन में ऐसा अस्रजनीय अंश विद्यमान होता है जो उसकी पूर्ति कर देता है।

हम इस झमेले में क्यों पड़ें कि प्रत्येक द्रव्य उदरदरी में जाकर षड्रस रूप में पहिले बदलते हैं, तत्पश्चात् वह सात्म्य भाव को प्राप्त होते हैं। सीधे ही क्यों न मान लें कि प्रत्येक द्रव्य में क्षयपूर्ति कारी पदार्थ विद्यमान होते हैं वह पाचक रसों के प्रभाव से ऐसे रूप में आ जाते हैं जो अन्त्र के आचूषकों द्वारा चूसे जा सकते हैं, वह द्रव्य जब रक्त में मिल जाते हैं तो रक्त परिभ्रमण के साथ शरीर की एक-एक कोषाओं तक पहुँच जाते हैं। कोषाएं स्वतः सजीव समर्थ शील शरीर का अंश होती हैं वह अपने आप ही उस आगत द्रव्य में से क्षय पूर्ति के उपयुक्त अंश को ग्रहण कर लेती हैं। यह बहुत सरल सीधी प्रयोग प्राप्त व्याख्या है जिसमें किसी कल्पना के घोड़े दौड़ाने की आवश्यकता नहीं रहती। इस तरह आयुर्वेदीय सात्म्यीकरण सिद्धान्त विद्यमान क्षय-पूर्ति सिद्धान्त की ही परोक्ष व्याख्या है, किन्तु हम इस परोक्ष व्याख्या से वस्तु स्थिति को सही रूप में नहीं देख पाते और आगे चल कर वह व्याख्या ऐसी दिशा की ओर घूम जाती है जो केवल कल्पना क्षेत्र का विषय बन कर रह जाती है इसीलिये उसे ग्राह्य नहीं समझा जाना चाहिये।

प्रयोग विज्ञान के आधार पर तो उसे उसी रूप में मानना चाहिये जिस रूप में वह वस्तु हो, तभी हम सचाई को पा सकते हैं।

कोष सिद्धान्त और सात्म्यी करण सिद्धान्त—आयुर्वेद विद्वान् इस बात से अनभिज्ञ हैं कि शरीरावयव भी स्वतन्त्र रूप से सजीव सत्तामय सर्वशक्ति सम्पन्न अवयव हैं। इसी तरह रक्तावयव भी व्यष्टिरूप से सजीव सत्तामय हैं और वह भी शरीर के भीतर रह कर अपना जीवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यापार चलाते हैं और शरीर को भी समष्टि रूप से जीवन व्यापार में सहयोग देते हैं। यदि हम इस बात को सही रूप में जान लेते तो "रसाद्रक्तं ततोमांसम्" की व्याख्या कभी न करते। इस बात को प्रत्यक्ष रूप में न जान सकने के कारण ही हमने अनुमान से इतना जाना था कि रस से रक्त और रक्त से मांस बनता है। वास्तव में न तो रस से रक्त के कण बनते है, न रक्त कणों से मांसावयव बनते हैं। विपाक रस तो उस अहर्निश भ्रमण शील रक्त के मध्य आकर मिल जाता है और रक्त परिभ्रमण के साथ सारे अवयवों तक पहुँचता रहता है, उस रस में से शरीर के प्रत्येक अवयव अपने-अपने उपयोग की वस्तुओं को ग्रहण कर लेते हैं उससे वे अपने कार्य व्यापार में जो भाग क्षय हुआ होता है उसकी पूर्ति करते हैं। इस तरह रस के सार भाग से लोहित कणों का बनना प्रयोग सिद्ध बात नहीं है। इसीलिए आयुर्वेदीय व्याख्या सत्य से बहुत दूर रहती है। दूसरे इस समय के शरीर रचना विज्ञान से इस बात को अच्छी तरह समझा जा चुका है कि लोहितकण विपाक रस के सार से नहीं बनते प्रत्युत लोहित कणों की उत्पत्ति अस्थि मज्जा के भीतर होती है, लोहित कणों के उद्भावक मज्जा कोषाएं हैं। मज्जा के गर्भ में ही लोहित की कणिकाएं प्रादुर्भूत होती हैं, वहीं वह शिशुकाल व्यतीत करके जब पूर्ण वयस्क हो जाती हैं तब वहां से वह मुक्त की जाती हैं, फिर वह रस के प्रवाह में आकर परिभ्रमण पथ पर आकर सारे शरीर का चक्कर काटने लगती हैं। रक्त परिभ्रमण काल में वह जिस रस में निमज्जित रहती हैं उससे अपने क्रिया शील जीवन में जो कुछ क्षय होता है उसकी पूर्ति वह जरूर करती हैं किन्तु इस क्षय पूर्ति काल में यहां नई लोहित कणिकाओं का जन्म नहीं होता! न यहां उनकी वृद्धि होती है। ऐसी दशा में रस से रक्त का और रक्त से मांस के बनने का सिद्धान्त सही नहीं उतरता। इसीलिए यह ग्राह्य नहीं हो सकता। तब क्या हमें अपने सात्म्यीकरण सिद्धान्त को छोड़ देना चाहिये? हम तो कहते हैं कि जो बात प्रयाग की कसोटी पर खरी न उतरे उसे उसी समय छोड़ देना चाहिए। हमारे पूर्व पुरुष यदि आज इस युग में होते तो वह अपने बनाये हुए सिद्धान्त को प्रयोग की कसौटी पर जब खरा उतरता न देखते तो हमें बिश्वास है कि वे फौरन ही इसे त्याग देते। हमें अब अपने सात्म्यीकरण सिद्धान्त और त्रिदोष-वाद को इसलिए त्याग देना चाहिये क्योंकि यह प्रयोग की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। और न अब हमें यह बात कहनी चाहिए कि शरीर में गति का कारण कोई बात नामक दोष है। कुछ हमारे मनचले मित्रों ने वात का सम्बन्ध मस्तिष्क और उसके नाड़ी मंडल से मिलाने का प्रयत्न किया हैं, उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि शास्त्रीय वात नामक दोष शरीर का कोई अंग नहीं है, न शास्त्रकार इसे शरीर का कोई अंग भाग मानता है, जो शरीर का अंग भाग न हो वह कल्पना से बनाया नहीं बन सकता। इसे तो हमें प्रयोगों से सिद्ध करना चाहिए।

शरीर में क्षय-पूर्ति की आवश्यकता क्यों? हम चलते, फिरते, घूमते काम करते रहते हैं और उदर पूर्ति के निमित्त श्रम भी करते हैं इससे भिन्न अनेक कामों में अपनी मनःशक्ति का उपयोग भी करते हैं, इन सारे शारीरिक मानसिक व्यापार में शक्ति का जो व्यय होता है उसी की पूर्ति के लिए खाना खाते हैं। खाने पीने की वस्तुओं में शक्त्योत्पादक कज्जलीय द्रव्य उसमें विद्यमान होते हैं जैसे मांड, निशास्ता, शक्कर, घी, तेल आदि। यह सब ही कज्जल के यौगिक होते हैं, तभी यह शरीर के एक एक अवयवों में पहुंच कर जलते हैं, उससे क्षय हुई शक्ति की पूर्ति होती रहती है। शक्ति की क्षीण वही द्रव्य कर सकते हैं जिनमें कज्जल विद्यमान हो, जैसे शक्कर, घी, तेल आदि।

हम जो श्वास लेते हैं हवा में विद्यमान उस श्वास के साथ हमारे फुप्फुसों में ऊष्मजन पहुंचता रहता है। फुप्फुस कोष्ठों में यह शक्ति होती है कि हवा में विद्यमान ऊष्मजन को भिन्न करके उसे ग्रहण कर लेता है और अन्य हवा के अवयवों को त्याग देता है। वहां से आगे फिर लोहित कणिकाएं उस ऊष्मजन को ग्रहण करके शरीर के भीतर ले जाती हैं और प्रत्येक अवयवों तक पहुंचाकर उनके भीतर उसे त्याग देती हैं और वहां जो दहन प्रक्रिया से कज्जल द्विऊष्मिद बनता है उसे ग्रहण कर फुप्फुस तक पहुंचा देती हैं। फुप्फुसों द्वारा प्राणवायु के ग्रहण का पता हमारे आयुर्वेदज्ञों को नहीं था, हां, शार्ङ्गधर ने इस ओर कुछ संकेत अवश्य किया था। यथा—

कण्ठाद्बहिर्विनिर्याति पातुं विष्णु पदामृतम्।
पीत्वा चाम्बरं पीयूषं पुनरायाति वेगतः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु किस प्रयोजन से यह प्राण वायु अंदर पहुंचाया जाता है इसका सही ज्ञान उनको भी नहीं हुआ था।

कज्जल का दहन हम प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में देखते हैं, अग्नि में घी, तेल डालें तो ऊष्मजन के सम्पर्क से वह भक से जल उठता है किन्तु इसके विरुद्ध मोटर कार, हवाई जहाज के इंजन में भी जो पेट्रोल ऊष्मजन के सम्पर्क से जलता है उसे हम प्रत्यक्ष नहीं देख सकते। क्योंकि इनमें कज्जल का सम्पर्क ऊष्मजन से एक बन्द नली में कराया जाता है, इसीलिये इसको अन्तर दहन कहते हैं। हमारे शरीर के भीतर भी यह कज्जल इसी तरह अन्तर दहन विधि से जलता है। जिसको १८ वीं शताब्दी के अन्त में सबसे पूर्व लवेशियर नामक विद्वान ने मालूम किया था। लवेशियर और लाप्लेस ने सुवर को १० घंटे ऐसे कमरे में बन्द किया था जिसमें कहीं से बाहर की हवा प्रवेश नहीं कर सकती थी, उसमें बन्द करके जांचा था कि उस कोठरी की हवा में विद्यमान ऊष्मजन से कितना ऊष्मजन वह ग्रहण करके उसे कज्जल द्विऊष्मिद में परिणत करता है। उन्होंने हिसाब लगा कर मालूम किया था कि एक प्राणी १० घंटे में ३३ माशे के लगभग कज्जल के जलने से जितना कज्जल द्विऊष्मिद बनता है इतना १० घंटे में एक प्राणी अपने शरीर के भीतर कज्जल दहन करके कज्जल द्विऊष्मिद उत्पन्न करता है और बरफ को गलाने के लिये ३.३ माशे कज्जल को जलाने से जितनी बरफ पिघलती है उतना ही ताप उस प्राणि के शरीर से १० घंटे की अवधि में या उस कज्जल के जलने से उत्पन्न होता है। उक्त प्रयोगों से यह बात स्पष्ट हो गई कि हमारे खाद्य, पेय द्रव्यों में कज्जल के यौगिक होते हैं, वही ऊष्मजन से मिल कर जलते रहते हैं उसी से शरीर में गर्मी उत्पन्न होती रहती है। शरीर का विस्तार ५ फुट की लम्बाई और ३ फुट व्यास में है, इतने विस्तार वाले शरीर में सूक्ष्म कोषाओं की संख्या कितनी होगी कोई गिन नहीं सकता। वह सब ही प्रति क्षण अपने अपने भीतर कज्जल से ऊष्मजन का सम्पर्क कराकर उष्मा का उत्पादन करती रहती है,वह उष्मा सारे शरीर में फैलती रहती है। किसी एक स्थान पर गर्मी एकत्र न होने के कारण उसकी उष्मा सारे शरीर में एक सी बनी रहती है। क्योंकि शरीर का प्रत्येक अंग ऊष्मा का अच्छा वाहक होता है इस गर्मी की मात्रा समस्त जीव जन्तुओं में भिन्न भिन्न होती है, जिसको नापने की विधि भी इसी युग में आकर मालूम हुई। ताप मापक से मनुष्य में यह उष्मा ९८ फारन हीट के आस पास सदा पाई जाती है।

हम उष्मा का स्थान उदर दरी में मानते थे, किन्तु न तो ग्रहणी में तिल प्रमाण अग्नि रहती है, न शरीर के किसी अन्य स्थान पर। शरीर में गर्मी की उत्पत्ति का स्थान तो शरीर की प्रत्येक कोषाएं हैं। कोषाओं के भीतर ही अन्तर दहन से सदा गर्मी उत्पन्न होती रहती है। कई वैद्य कहेंगे कि जब सारे शरीर में एक साथ गर्मी उत्पन्न होती रहती है तो उसे बढ़ना चाहिए, वह बढ़ती क्यों नहीं? गर्मी को भी स्थिर रूप में बनाये रखने का शरीर के भीतर बड़ा अच्छा प्रबन्ध है, इसे भी पूर्व काल में नहीं जाना जा सका था। क्योंकि उस समय तक मस्तिष्क के कार्य व्यापार का कोई ज्ञान नहीं हुआ था, यह तो इसी पिछली शती में ही आकर मस्तिष्क के कार्य व्यापार को अच्छी तरह से देखा समझा जा सका है, तभी पता चला कि शरीर में ज्ञान और क्रिया का सम्पादन इस मस्तिष्क से होता है। यही एक उष्णता का नियन्त्रण केन्द्र है जिसका सम्बन्ध क्रिया वाही केन्द्र से रहता है, यदि शरीर में गर्मी बढ़ रही हो तो उसी समय ताप नियन्त्रक केन्द्र द्वारा त्वचा को उत्तेजना देने की प्रेरणा होती है इसी से त्वचा के मसाम खुल जाते हैं और प्रस्वेद के साथ गर्मी शरीर के बाहर निकल जाती है। इसी तरह फुफ्फुसों को उत्तेजना मिलती है, उनकी भी गति बढ़ जाती है और उसके द्वारा वाष्प के रूप में बहुत सी गर्मी खारिज हो जाती है। ताप नियन्त्रक केन्द्र द्वारा सदा इस बात का ध्यान रखा जाता है कि शरीर की गर्मी न तो मात्रा से अधिक बढ़ने पावे न घटने पावे। यदि गर्मी घट रही हो तो शरीर को उसे रोकने के लिए प्रेरणा दी जाती है इसी से त्वचा के रन्ध्र बन्द हो जाते हैं। फुफ्फुस की गति घट जाती है। यह बात तो अब बताने की जरूरत नहीं रही कि थर्मामीटर शरीर का ताप १०५ डिग्री बतावे तो उस समय उस मनुष्य के होश हवास ठीक नहीं रहते, वह बकने झकने लगता है और मृत्यु के समीप दिखाई देता है और कहीं ९५ वें फारन हीट हो जाय तब भी इस घटे ताप से शरीर के क्रिया व्यापार रुक जाते हैं। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्यक्ष यान्त्रिक साधन के सामने किसी प्रमाण की अपेक्षा नहीं रहती। तमाम अनुमानित सिद्धान्तों को छोड़कर यह मानना व्यवहारिक है कि शरीर में उष्मा का उत्पादन कोषाओं के अन्तः स्थल का भाग है। वहीं से सदा गर्मी प्रादुर्भूत होकर सारे शरीर में फैलती रहती है। प्रत्येक कोषा ही उष्मा का उत्पादक अंग है, वही भोजनीय द्रव्यों के साथ मिले कज्जल के यौगिक से कज्जल को पृथक् करके उसका ऊष्मजन से सम्पर्क कराता है उसी से उष्मा का संजनन होता रहता है।

वह कोषाएं क्षय-पूर्ति भी करती हैं:—परिपाक रस में कज्जल श्रेणी के पदार्थों से भिन्न उसमें अस्रजन श्रेणी के भी अनेक द्रव्य रहते हैं उन्हीं अस्रजनीय द्रव्यों से वह कोषाएं जब अपने कार्य व्यापार के समय आंगिक क्षीणता आती है तब अपनी क्षय-पूर्ति कर लेती हैं। इसी क्षय-पूर्ति को हम रसात्मक द्रव्यों का सात्म्यीकरण मानते हैं। किन्तु वस्तुस्थिति का इससे अच्छी तरह स्पष्टीकरण नहीं होता, जितना कि क्षय-पूर्ति शब्द से होता है।

शरीर की क्षय-पूर्ति किन द्रव्यों से होती है:—इसको इस समय भिन्न करके देख व समझ लिया गया है, इसी ज्ञान का यह परिणाम है कि इस समय जिन चीजों को हम रद्दी समझ कर फेंक देते थे या मनुष्य के खाने योग्य नहीं समझते थे आज उन्हीं चीजों से वह पोषक तत्व निकाल कर मनुष्यों के लाभार्थ उनका उपयोग हो रहा है, यथाः—

हम सरसों, तिल के बीजों से तेल निकाल लेने के बाद उस पिण्याक (खली) को मनुष्यों के खाने के योग्य नहीं समझते थे, हम उसे पशुओं को खिला देते थे। बीजों में केवल तेल ही नहीं होता, प्रत्युत उनमें सितसार और अस्रजनीय श्रेणी के काफी द्रव्य विद्यमान होते हैं। आधुनिक प्रयोग विधियों से उस खली के मध्य रहे अवशिष्ट तेल को भी बेंजीन व पेट्रोल में घोल कर उसका स्नेह भिन्न कर लेते हैं, तत्पश्चात उसको पानी में घोलकर उसमें सन्धान-कारी ऐसे द्रव्य मिलाते हैं जिनके योग से केवल अस्रजनीय अंश में ही सन्धान उठकर अस्रजन के अणु उद् विश्लेषित हो जाते हैं इस विधि से अस्रजनीय श्रेणी के द्रव्य कण रूप में आ जाते हैं उन्हें निकाल कर साफ कर लेते हैं और फिर उसे निर्वात भट्टियों में रखकर सुखा लेते हैं या उसकी फिर चाशनी बना लेते हैं। उस खली में यह अस्रजनीय अंश लगभग ४०-५० प्रतिशत तक प्राप्त होता है। यह अस्रजनीय श्रेणी के द्रव्य कई पवनाम्लों, पोष्या-यिदों के रूप में विद्यमान होते हैं, जिन्हें मनुष्यों को देकर देखा गया है कि इसके सेवन से दुर्बल व्यक्तियों के शरीर की क्षय-पूर्ति खूब होती है और वे थोड़े ही दिनों में मोटे ताजे हो जाते हैं। इसकी परीक्षा आजकल लखनऊ की केन्द्रीय औषधअनुसन्धान शाला ले रही है। इस तरह से जो बातें प्रयोग की कसौटी पर खरी उतरती दिखाई दें हमें उन बातों को बिना ननु नच के स्वीकार कर लेना चाहिये। जो सिद्धान्त कल को अपूर्ण अधूरे सिद्ध होने हों उनको आज ही यदि समझ कर त्याग दें तो कितनी अच्छी बात होगी।

हमारा षड् रस सिद्धान्त और रस सात्म्यीकरण सिद्धान्त उस समय के लिये चाहे उपयोगी रहे हों जब तक प्रत्यक्ष प्रायोगिक ज्ञान से हमारे सामने विषय का स्पष्टीकरण नहीं हो सका था। अब जब कि शरीर की सूक्ष्म रचना के आधार पर शरीर के भीतर चलने वाले क्षय-पूर्ति के व्यापार को प्रत्यक्ष देख व समझ सकते हैं ऐसी दशा में फिर हमें अनुमान जन्य सिद्धान्तों से नहीं चिपके रहना चाहिये। यदि हमने उन्नति करना है और अपने शास्त्र को विज्ञान सम्मत बनाना है तो ऐसी दशा में हमें वही बातें माननी चाहिये जो प्रयोग की कसौटी पर खरी उतर रही हों, तभी आयुर्वेद की रक्षा हो सकती है और यह वैज्ञानिक बन सकता है अन्यथा नहीं।

वैद्य श्री रामगोपाल शास्त्री

उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत

सूचना मिली है कि उत्तर प्रदेश सरकार की आयुर्वेदिक एवं यूनानी तिब्बी अकादमी लखनऊ ने वैद्य राम गोपाल शास्त्री, दिल्ली को उनके आयुर्वेदिक ग्रन्थ 'वेदों में आयुर्वेद' पर ३५०) रुपये का पुरस्कार दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा पक्ष

(ले०—श्री शुकदेव शर्मा प्रिंसिपल गवर्नमेंट आयुर्वेदिक कालेज, रायपुर)

१२ जनवरी १९५८ के हिन्दुस्तान टाइम्स के साप्ताहिक संस्करण में श्री शिवशर्मा ने 'आयुर्वेद क्या दे और ले सकता है?' इस शीर्षक से एक लेख लिखा है और यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में आयुर्वेद के लिये ग्रहण करने योग्य कुछ नहीं जब कि आयुर्वेद में ऐसा बहुत कुछ है जिसे ग्रहण करके आधुनिक वादी लाभ उठा सकते हैं।

किसी भी आयुर्वेदज्ञ को उनसे मतभेद न होना चाहिये क्योंकि इससे उनके स्वाभिमान का सम्बन्ध है और यही कारण है कि जब वह (शिवशर्मा) आयुर्वेदिक ग्रन्थों के अंग्रेजी में अशुद्ध अनुवाद भी सामने रखता है तो वैद्य यह समझकर चुप रहते हैं कि अशुद्ध अनुवादों द्वारा भी आयुर्वेद की प्रतिष्ठा को बढ़ाते रहना अच्छा ही है।

परन्तु यह तो किसी भी विज्ञान और शास्त्र की वास्तविक सचाई होती हैं जो अन्ततः उसके गौरव को स्थिर रख सकती है न कि अशुद्ध व्याख्यायें। इसलिये यह अभीष्ट नहीं कि आयुर्वेदज्ञ आयुर्वेद सम्बन्धी अशुद्ध धारणाएं फैलाने में अप्रकट सहयोग दें।

दो सम्प्रदाय

श्री शिवशर्मा के उक्त लेख में जिन दो सम्प्रदायों का उल्लेख है दुर्भाग्यवश वह इसी प्रकार के विचारों वाले वैद्यों की ही पैदावार है और वही इस बात को फैलाने के उत्तरदायी हैं कि आयुर्वेद सर्व सम्पूर्णता प्राप्त कर चुका है और वही दिन रात दूसरी विचार धारा के समर्थकों का उपहास करते रहते हैं और श्री शिवशर्मा के अपने शब्दों में आधुनिक आयुर्वेदिक कालजों के स्नातकों को 'भ्रान्त और अर्धपक्व' लोगों का नाम देते हैं।

अब यह जानना निःसन्देह रोचक होगा कि आयुर्वेदिक ग्रन्थ उपरोक्त दो सम्प्रदायों में से किस का समर्थन करते हैं। इससे भी अधिक रोचक यह जानना होगा कि श्री शिवशर्मा जैसे आयुर्वेद के विद्वान भी जिसे 'लेने और देने के परस्पर विरोधी सिद्धान्त' कहते हैं उसके सम्बन्ध में शास्त्र का मत क्या है।

उन्होंने यह सिद्ध करने के लिये यह उदाहरण दिया है कि महान् लेखक चरक जहाँ कहीं से ज्ञान मिल सके उसके लेने का विरोधी नहीं था। चरक के इन शब्दों का उन्होंने अर्धपक्व अंग्रेजी में अनुवाद किया है। मैं नीचे मूल पाठ देता हूँ और आयुर्वेद के विद्वान स्वयं देख लें कि इस पाठ का शुद्ध अर्थ क्या हैं।

न चैव ह्यस्ति सुतरामायुर्वेदस्य पारम्। तस्माद् प्रयत्नतश्श्वद्भिः योगमस्मिन् गच्छेत। एतच्च कार्यं। कृतस्नो हिलोको बुद्धिमतामाचार्यः शत्रुश्चा बुद्धिमताम्। अतश्चाभिसमीक्ष्य बुद्धिमता अमियस्यापि धन्य यशस्यं मायुष्यं पौष्टिकं लोकमम्प्रपदिशतो वचः श्रोतव्य मनुविधातव्यञ्च। च. वि. ८—१२।

परन्तु श्री शिवशर्मा का यह उद्धरण

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्निहास्ति न तत् क्वचित्

देकर लोगों को यह विश्वास कराना चाहते हैं कि चरक यह दावा करता है कि आयुर्वेद सम्पूर्णता पर पहुंच चुका है तो वास्तव में आश्चर्य होता है। मेरा विचार है कि स्वर्ग में बैठे महर्षि चरक स्वयं भी इस अनुवाद एवं ऐसे शब्द उनके मुंह में डालने पर जो कदापि उनका अभिप्राय नहीं था। कम्पायमान हो उठे होंगे।

चिकित्सितं वन्हिवेश स्वस्थातुर हितं प्रति।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्निहास्ति न तत् क्वचित्॥

उपरोक्त श्लोक का अर्थ है कि गुरु आत्रेय ने अग्निवेश को कहा (अग्निवेश चरक सहिता से पूर्व विद्यमान अग्निवेश संहिता का रचयिता था) कि जो कुछ यहां कहा गया है वही अन्यत्र (अर्थात् उस समय विद्यमान अन्य पुस्तकों) में मिलेगा और जो कुछ यहां नहीं कहा गया वह अन्यत्र कहीं भी (अर्थात किसी भी तत्कालीन पुस्तक में) नहीं मिलेगा। इसका यह अर्थ तो कभी भी नहीं हो सकता कि आयुर्वेद को कोई भी दूसरा व्यक्ति सुधार नहीं सकता विशेषतः जब कि चरक ने यह कहा है—

न हि विस्तरस्य प्रमाण मस्ति न चाप्यति संक्षेपोऽल्प बुद्धिनाम सामर्थ्यायोपकल्पते......एतावंतो ह्यल्प बुद्धिनां व्यवहाराय बुद्धिमतां च स्वालक्षण्यानुमान युक्ति कुशलानाम नुक्तार्थ ज्ञानाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब पाठकों को यह स्पष्ट हो गया होगा कि इस मत को यदि ठीक प्रसंग में देखा जाय तो इस मत का समाधान करने की आवश्यकता नहीं।

जैसा कि श्री शिवशर्मा ने जोर दिया है परवर्ती दावा आयुर्वेद के मौलिक सिद्धान्तों की ओर संकेत नहीं करता किन्तु यह तत्कालीन पुस्तकों में उल्लिखित विषयों की ओर संकेत करता है।

उपशय चिकित्सा

अब हम उपशय चिकित्सा की आयुर्वेदिक परिभाषा की श्री शिवशर्मा द्वारा की गई अंग्रेजी व्याख्या के विषय पर आते हैं। कोई भी आयुर्वेदज्ञ उस पैरे के उन अर्थों के साथ सहमत नहीं हो सकता जो कि अंग्रेजी अनुवाद के रूप में उन्होंने संसार के सामने रखे हैं।

उपशयः पुनः हेतु व्याधि विपरीतानां विपरीतार्थ कारिणां चौषधाहारविहारणा मुपयोगः सुखानुबन्धः । च. वि. १-८

इस उदाहरण में रोग के कारण के समान, रोग के समान अथवा दोनों के समान यह अर्थ नितांत भ्रांति पूर्ण है। इसका होम्योपैथिक सिद्धांतो से कभी मेल नहीं बैठता। यह तो इस बात को दृढ़ करता है कि विपरीतार्थकारी औषध, अन्न, विहार (विपरीर्थकारी का अर्थ 'समान' नहीं अपितु यह है कि जो विपरीत पदार्थों के समान व्यवहार करता है) भी अन्ततः विपरीत पदार्थों के समान प्रभाव करता है।

चरक ने आगे औषधियों के विषय में एक साधारण सा कथन किया है।

नानौषधि भूतं किंचदिह द्रव्य मुपलभ्यते।

अर्थात् इस संसार में ऐसा कोई पदार्थ नहीं जिसका औषध रूप में कोई महत्व न हो। मैं नहीं समझता कि यहां विचार और अनुभव यह शब्द अंग्रेजी अनुवाद में कैसे आ गये।

मौलिक रूप से अशुद्ध

चरक के अनुसार जो कुछ चरक ने कहा है उस पर और आगे अन्वेषण हो सकता है और पूर्व कथनानुसार निश्चित रूप से उस का सुधार हो सकता है। उन्होंने यह कभी दावा नहीं किया कि कोई भी चिकित्सक वर्ग उनके द्वारा बताये चिकित्सा के सिद्धांतों से कभी बाहर नहीं जा सकेगा।

निःसन्देह आयुर्वेद में जीवाणुवाद की विद्यमानता सम्बन्धी हमारे पास पर्याप्त प्रमाण हैं और आयुर्वेद में इस विषय पर कई श्लोक है। परन्तु इनका विस्तृत ज्ञान हमें आधुनिक चिकित्सा से लेना आवश्यक है, जिसमें जीवाणुओं की विद्यमानता को पहचानने के लिये अणुवीक्षण यन्त्र का प्रयोग भी सम्मिलित हैं क्योंकि जीवाणुओं की सूक्ष्मता के सम्बन्ध में ऋषियों ने ऐसा कहा है—

सूक्ष्मत्वाच्चैके भवन्त्यदृश्याः च. वि. ७

दुर्भाग्य से हममें हमारे ऋषियों की सी दिव्य दृष्टि विद्यमान नहीं और इसलिए हम नंगी आंख से अदृश्य एवं अणुवीक्षण यन्त्र से देखने योग्य पदार्थों को देख नहीं सकते। डाक्टर राजेन्द्र प्रशाद, श्री राजा गोपाल आचार्य और इनके समान अन्य बड़े-बड़े नेता भी आयुर्वेद के इसी पक्ष पर जोर देते हैं और यदि हम शिवशर्मा के शुद्ध आयुर्वेद अर्थात् पार्थक्यावाद से चिपटे रहें तो यह हमारे लिये भयावह होगा।

यही बात स्वेद के सम्बन्ध में भी हैं। आधुनिकों के पास पराकासनी और Infra Red. किरणें हैं और स्वेदन कर्म के लिये और भी साधन हैं परन्तु क्योंकि यह सब भी स्वेदन ही है इसलिए कोई कारण नहीं कि हम इन्हें न सीखें विशेष रूप से इस अवस्था में जब कि हम अपने राष्ट्रीय नेताओं पर जोर दे रहे हैं कि राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति के रूप में आयुर्वेद की मान्यता पर विचार करें!

यह बात और भी अधिक व्यंग पूर्ण हो जाती है जब श्री शिवशर्मा यह स्वीकार करते हुए लिखते हैं कि जहां तक अतिरिक्त ज्ञान और विधियों का सम्बन्ध है उन्हें ग्रहण करने और आत्मसात करने में आयुर्वेद की स्थिति आदर्श रूप है और उसी समय उन्होंने बम्बई सरकार को शुद्ध आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम प्रारम्भ करने के लिये राजी किया है जब कि ऐसे शुद्ध आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम में उन लोगों के लिये इस प्रकार का सभी ज्ञान आत्मसात करने के लिये सभी दरवाजे सावधानी से बन्द कर दिये गये हैं जो कि वहां चिकित्सा विज्ञान अथवा जीवन विज्ञान के अध्ययन के लिये प्रविष्ट होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्लोरोफार्म और शल्य शास्त्र

शल्य के क्षेत्र में आयुर्वेद का अतीत गौरवपूर्ण था और इस बात का श्रेय श्री शिवशर्मा को ही है कि जब वह लाहौर में रहते थे तो उन्होंने कुछ आधुनिकों की सहायता से ऐसे यन्त्र बनवाए थे जैसे सुश्रुत और वाग्भट में उल्लिखित हैं, परन्तु क्लोरोफार्म का प्रयाग, जिसने शल्य कर्म की कला में क्रांति लादी है—आयुर्वेदिक शल्य में सम्मिलित किया जाना चाहिये। इस के बिना सुश्रुत के कथनानुसार शल्य कर्म के समय रोगी के हाथ पांव बांधने और उसे मद्य पिलाने की विधि का अनुसरण करना क्रूरता होगी।

प्रतिबन्धक औषधियाँ

आयुर्वेद ने सदा चिकित्सा के रोग निवारक पक्ष पर ही बल दिया है चरक का यह कथन उचित ही है कि—

तस्यानुपालनं स्वस्थस्य स्वस्थ वृत्ति रातुरस्य विकार प्रशमनेऽप्रमाद: । च. सू. ११-५

पुनश्च इहीवनायुर्वेदस्य प्रयोजनं स्वस्थस्य स्वास्थ्यर क्षणं आतुरस्य विकार प्रशमणंच ।

और जहां तक व्यक्ति गत स्वास्थ्य रक्षा का सम्बन्ध है आयुर्वेद इसकी देख भाल आधुनिक पद्धति की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह कर सकता है क्योंकि आधुनिक पद्धति का दृष्टिकोण व्यक्तिगत आवश्यकताओं की अपेक्षा सार्वजनिक स्तर पर इस समस्या को सुलझाने की ओर अधिक है। परन्तु आयुर्वेद की कमी है कि सार्वजनिक स्वास्थ्य की समस्या, जो कि इस युग में वृहदाकार में उत्पन्न हो गयी है, उसके सुलझाने के उपयुक्त उपाय उसमें नहीं है। उदाहरण के लिये जल और वायुशुद्धि के लिये सुश्रुत ने जो विधियां लिखी हैं उनका प्रयोग हम नगर निगमों और औद्योगिक केन्द्रों के लिये नहीं कर सकते और एतदर्थ हमें आधुनिक विधियों का आश्रय लेना पड़ता है।

आयुर्वेद प्रगतिहीन नहीं

आयुर्वेद कभी भी प्रगति हीन नहीं रहा और चरक सुश्रुत तथा वाग्भट ने द्रव्य गुण शास्त्र में अपनी २ भिन्न विधियों का अनुसरण किया है और आयुर्वेद संसार श्री शिवशर्मा जैसे विद्वानों का बड़ा कृतज्ञ होगा यदि वह ऐसे आयुर्वेदज्ञों के लिये एक विभेदक रेखा बता दें जो आधुनिक विज्ञान के समृद्ध सोपान से अपनी चिकित्सा सम्बन्धी ज्ञान पिपासा बुझाकर उसे विकसित करना चाहते हैं।

त्रुटियों का निवारण

प्राचीन समय में आयुर्वेद का जो कुछ भी गौरव रहा हो और आज उसमें जो कुछ भी त्रुटियां हों परन्तु आयुर्वेद अपने खोये हुए गौरव को वर्तमान आयुर्वेदिक कालेजों की दोष पूर्ण शिक्षा और अपर्याप्त अभ्यास की भर्त्सना मात्र से उसे पुन: प्राप्त नहीं कर सकता, और न ही हम वर्तमान समय के कठोर सत्यों और वास्तविकताओं के प्रति अपने नेत्र बन्द करके आगे बढ़ सकते हैं। हमें समय को पहचानना चाहिये और ज्ञान को समझना आत्मसात करना और सीखना चाहिये। हमें उस चिकित्सा विधि को सर्व साधारण को बताना चाहिये जिसके द्वारा कीटाणविक हृदयान्तर कला शोथ के एक रोचक रोगी को आयुर्वेदिक चिकित्सा से ठीक किया गया जब कि आधुनिक चिकित्सा उस पर असफल हो चुकी थी। स्वास्थ्य लाभ सम्बन्धी सामान्यताओं का उल्लेख करने से कुछ लाभ नहीं और न ही किसी वैज्ञानिक पर इस का प्रभाव पड़ सकता है जब तक कि परिणामों और अंकों से ऐसे कथन की पुष्टि न की जाए।

ऐलोपैथिक आयुर्वेद से क्या ग्रहण करे? यह उन लोगों का दृष्टिकोण है जो ऐलोपैथी चिकित्सा करते हैं पर जहां तक वैद्यों का सम्बन्ध है उन्हें तो चिन्ता है अपने प्राचीन आयुर्वेद की सुरक्षा की और इस बात की कि आज के परमाणु युग में वह अन्य चिकित्सा व्यवसायियों से किसी प्रकार पीछे न रहें।

शोक समाचार

हम बड़े शोक से यह सूचना देते हैं कि स्वर्गीय श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य की धर्म पत्नी अर्थात् श्री रुद्रदत्त यादव जी आचार्य बम्बई निवासी की पूज्य माता जी का ति० ४. ६. ५८ बुधवार को रात के पौने बारह बजे देहावसान हो गया। परम पिता परमात्मा दिवंगत आत्मा को शान्ति एवं सद्गति प्रदान करें, यही प्रार्थना है।

इस अवसर पर आयुर्वेद विज्ञान की ओर से हम श्री रुद्रदत्त यादव जी आचार्य के प्रति हार्दिक सहानुभूति एवं संवेदना प्रकट करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेद और विज्ञान की शिक्षा

इस समय भारत में जितने भी आयुर्वेद शिक्षा के स्कूल या कालिज हैं उन सबों में जो कोर्स की पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं उनमें से कुछ तो प्राचीन संहिताओं के अंश संकलित होते हैं और कुछ,नव्य चिकित्सा-पद्धति के आधार पर संकलित ग्रन्थ हैं। जो ग्रन्थ नव्य चिकित्सा पद्धति के आधार पर लिखे गये हैं, उनका विषय प्रत्यक्ष ज्ञान मूलक होता है जो संहिता ग्रन्थों के अंश होते हैं, उनका अधिक अंश कल्पना क्षेत्र का विषय होता है। इसलिये नव्य चिकित्सा पद्धति के आधार पर लिखे ग्रन्थों के सिद्धान्तों से हमारे संहिता ग्रन्थों के सिद्धान्तों का कोई मेल नहीं बैठता।

आयुर्वेद वास्तव में प्रत्यक्ष ज्ञान मूलक विषय है। शरीर में कोई अंग है तो वह कहां पर है? उसकी बनावट कैसी है? उसके कार्य व्यापार क्या क्या हैं? उसका शरीर के अन्य भागों से कितना निकट या दूर का सम्बन्ध है? उस अंग में कौन कौन से परिवर्तन किन कारणों से होते हैं? किसी व्याधि का उस अंग पर क्या प्रभाव होता है। यह समस्त बातें किसी रोगी को देखने से पूर्व चिकित्सक को यदि मालूम हों तो वह रोग निदान ठीक-ठीक कर लेता है। यदि उक्त बातें केवल अनुमान के आधार पर बने सिद्धान्त से कोई जानना चाहे तो अनुमान कभी ठीक हो सकता है कभी गलत भी।

आयुर्वेद के सिद्धान्त सही हैं या गलत इसको तो वही व्यक्ति ठीक-ठीक बता सकता है, जो प्रत्येक विषय का प्रत्यक्षीकरण कर चुका हो। यह तो हमें मानना ही पड़ेगा कि पूर्व काल में प्रत्यक्षीकरण के साधन कितने न्यून थे जिनके अभाव में हमने जो कल्पना खड़ी की थी वह सर्वथा सत्य पर आधारित नहीं थीं। अब प्रश्न यह उठता है जो सिद्धान्त प्रत्यक्ष मूलक नहीं न वह सत्य पर आधारित थे क्या उन्हें ही बनाये रखना चाहिये? और आयुर्वेद की शिक्षा उसी आधार पर चलानी चाहिये, क्या यह आयुर्वेद के हित में होगा? इस विषय पर उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री तथा स्वास्थ्य मन्त्री जी ने अभी कुछ दिन हुए निम्न वाक्य कहे थे।

श्री सम्पूर्णानन्द जी ने कहा था—मेरी राय में आयुर्वेदिक कालेजों के शिक्षा क्रम में नव्य चिकित्सा की कोई चीज़ रखना भारी भूल है।" स्वास्थ्य मन्त्री ठाकुर हुकमसिंह जी कहते हैं "मैं इस निश्चय पर पहुँचा हूं कि आयुर्वेद-अलोपैथी या यूनानी अलोपैथी का मिला-जुला पाठ्यक्रम बहुत ही अनुचित है। इससे आयुर्वेद व यूनानी के स्नातक ऊंचे दर्जे के वैद्य या हकीम नहीं बनते।

इसका यह अर्थ है कि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने जो उन्नति की है जो कुछ प्रत्यक्ष मूलक ज्ञान उसने बढ़ाया है वैद्यों को उससे वंचित रखा जाय। साथ ही श्री सम्पूर्णानन्द जी यह भी कहते हैं छात्रों को आधुनिक शरीर रचना व शरीर धर्म-शास्त्र जरूर पढ़ना चाहिये। आधुनिक मनोविज्ञान की भी शिक्षा देनी चाहिए। पर अलोपैथी पढ़ाना सर्वथा गलत है।" आप फर्माते हैं शल्य चिकित्सा का अलोपैथी से कोई सम्बन्ध नहीं है, वह आयुर्वेद का अंग है, उसकी शिक्षा देनी ही चाहिये। मालूम नहीं प्रधान मन्त्री जी किस आधार पर कह रहे हैं कि आधुनिक शरीर रचना व शरीर-क्रिया-विज्ञान पढ़ाना चाहिये। यही तो प्रत्यक्ष मूलक ऐसा शास्त्र है जिसे अलोपैथी ने सर्वांश में अपना लिया और वह उसका अंग बन चुका है।

शरीर-रचना व शरीर-धर्म सम्बन्धी इस समय तक जो अनुसन्धान हो रहे हैं वह ज्यादातर अलोपैथ डाक्टरों शल्य चिकित्सकों द्वारा हो रहे हैं। हम आधुनिक शल्य विज्ञान को अलोपैथी से भिन्न नहीं कर सकते। उसके चीर फाड़ के तरीके और चीर फाड़ करने से पूर्व क्षत को विषाक्त होने से बचाने के तरीके सब ही अलोपैथी दवाइयों से ओतप्रोत हैं। यदि एक वैद्य शल्य विषयक ज्ञान प्राप्त करता है तो उसे सबसे पूर्व यह जानना और समझना आवश्यक होता है कि क्षत या व्रण किन कारणों से विषाक्त होता है? वे कारण जब कीटाणु जाने गये हैं तो उनमें से विषाक्त बनाने वाले कीटाणु कौन से हैं? अविषाक्त कीटाणु कौन से हैं? इसको समझने के लिये जैव-सिद्धान्त (जर्म्स थ्यूरी) के ग्रंथ पढ़ने आवश्यक हो जाते हैं। आयुर्वेद में जैव सिद्धान्त नाम की कोई चीज है ही नहीं। न किसी क्षत, व्रण या रोग में जैव भी कारण होते हैं? इसको माना ही नहीं गया है। ऐसी दशा में जिस वैद्य ने शल्य चिकित्सा सीखनी होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे जैव सिद्धान्त का सारा विषय पढ़ना होगा। इससे भिन्न जैवोद्भवी उन अलोपैथी औषधियों का ज्ञान भी प्राप्त करना होगा जो विषाक्तता के निवारण में उपयोजित होती हैं। यह दवाइयां अलोपैथी की दवाइयां है जब तक अलोपैथिक औषध गुण-धर्म विज्ञान के ग्रन्थ न पढ़े हमें इन औषधियों के गुण, धर्म और उपयोग की कोई जानकारी नहीं हो सकती।

डा० सम्पूर्णानन्द जी कहते हैं—अलोपैथी पढ़ाना सर्वथा गलत है। आधुनिक किसी भी विज्ञान को लेते हैं तो हमें ऐसा एक भी विज्ञान का विषय नहीं मिलता जिसका अलोपैथी चिकित्सा से सम्बन्ध न हो। अलोपैथी वालों ने जब आधुनिक भौतिक, रसायन की प्रयोग विधियों से लेकर समस्त चिकित्सा क्षेत्र में काम आने वाले प्रत्येक विज्ञान को अपना लिया है और वह अलोपैथी का अंग बन गया है। उनमें से जिस विषय को भी लेते हैं उसके साथ अलोपैथी का मिश्रण जरूर पाते हैं तो इसका स्पष्ट अर्थ यही है कि वैद्य इसमें से किसी भी नव्य विज्ञान को पढ़ नहीं सकता। और वह पढ़ता है तो उसके सिद्धान्त आयुर्वेद सिद्धान्तों के विरुद्ध पड़ते हैं। यदि हम इन नव्य विषयों को नहीं पढ़ाते तो हमारा आयुर्वेद शरीर-रचना और निदान से समय की आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती। जब वैद्यों को मस्तिष्क, फुफ्फुस, वृक्क, अन्तःस्रावी, बहिःस्रावी ग्रन्थियों का कोई ज्ञान नहीं होगा, रक्त क्या है उसका स्वरूप कैसा है?जब इन बातों का उसे ज्ञान न होगा। इनअंगों के कार्य व्यापारों को वह नहीं जानेगा,तब इन अंगों में हुए रोगों की चिकित्सा कैसे वह कर सकता है। आधुनिक शरीर रचना और शरीर क्रिया विज्ञान का इतना निकट का सम्बन्ध है जिन्हें पढ़ने पर कोई भी वैद्य आयुर्वेद पर आस्था नहीं रख सकता। डा० सम्पूर्णानन्द जी कहते हैं वैद्यों को आधुनिक मनोविज्ञान पढ़ाना चाहिए। आधुनिक मनोविज्ञान को पढ़ने वाला छात्र सबसे पूर्व मस्तिष्क की रचना और उसके धर्म को जब पढ़ेगा और आयुर्वेद ग्रंथों में मस्तिष्क जैसे अंगों के वर्णन को ढूंढेगा, जब वहां उसे मस्तिष्क सम्बन्धी ज्ञान शून्य की स्थिति में दिखाई देगा तो उसकी आयुर्वेद पर क्या आस्था रह जायगी? क्या वह उसे अपूर्ण नहीं समझेगा? इस समय प्रत्यक्ष मूलक किसी भी विज्ञान विषय की शिक्षा को ले लें और आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों से उसका ताल मेल बैठाने का प्रयत्न करें तो कभी बैठा नहीं सकते। क्योंकि अनुमान अनुमान ही होता है, प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष ही। अनुमान सर्वथा सत्य हो ऐसा देखा नहीं जाता और प्रत्यक्ष में असत्य का अंश बहुत कम होता है।

जब हम प्रत्यक्ष मूलक ज्ञान की शिक्षा देंगे तो आयुर्वेद सिद्धान्तों से उसका समन्वय होना कठिन होगा। प्रत्यक्ष के सामने अनुमान या आप्त वाक्य पर वही विद्यार्थी आस्था रखेगा जो महामूर्ख होगा। इसलिए कोई कहे कि वैद्य बनने के लिए उसे आयुर्वेद से दूसरे कोई ग्रन्थ न पढ़ाए जायें तो इसका मतलब यह होगा कि विद्यमान समय में जो चिकित्सा शास्त्र विषयक उन्नति हुई है उसे उसके ज्ञान से कोरा रखा जाय। वह आज से दो सहस्र वर्ष पूर्व जो चिकित्सा विषयक ज्ञान था, उसे रट कर जब निकलेगा और जब रोगी की नाड़ी पकड़कर प्राचीन रोगों को अब देखने की कोशिश करेगा उसे वे एक भी दिखाई नहीं देंगे, तो विद्यमान रोगों को कैसे समझेगा। विद्यमान रोग कारणों के सामने जब उसके पढ़े-समझे कारणों से यदि वह रोगी का संतोष न कर सका और रोगी उसके हाथ से खिसकते रहें तो वह भूखा मर सकता है। इस समय वैद्य समाज की क्या दशा है? क्या वह भूखे मरने से कुछ कम है? जिन वैद्यों ने नव्य ज्ञान विज्ञान की कुछ शिक्षा पाई है और जिन्होंने अपने चिकित्सा व्यवसाय की स्थिति को समय के अनुकूल बना लिया है, वह तो अच्छी तरह उदरपूर्ति कर लेते हैं। उनकी अपेक्षा प्राचीन शिक्षा के शिक्षित वैद्य बुरी अवस्था के दिन काटते दिखाई देते हैं। यदि आयुर्वेद विद्यार्थियों को प्रत्यक्ष मूलक ज्ञान की शिक्षा न दी जाय तो इसका अर्थ होगा आयुर्वेद को समाप्त करना। जिस विद्या से मनुष्य को रोटी भी न प्राप्त हो उसे कौन पढ़ेगा और उसके प्रति छात्रों की श्रद्धा कैसे बढ़ सकती है। जब उसे पढ़कर वे उदरपूर्ति भी न कर सकें।

सस्ते डाक्टर बनने की प्रवृत्ति तो आयुर्वेद छात्रों में इसलिये बढ़ रही है क्योंकि डाक्टर नाम से रोटी मिलने की आशा होती है। आज अनेक वैद्य अपने को डाक्टर लिखकर जब नाम के प्रताप से रोटी कमाने में समर्थ देखे जाते हैं तो बिना ऊंची शिक्षा के यदि उन्हें डाक्टर कहवाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को सुविधा मिल जाय तो जनता उसकी योग्यता को क्या इतने ध्यान से देखती है ? जितना कि साइन बोर्ड पर लिखे डाक्टर नाम को। डाक्टरी का खिताब तो रोटी के लिये चाहते हैं, न कि योग्यता के लिये।

यदि आयुर्वेदिक कालेजों से विद्यमान प्रत्यक्ष मूलक ज्ञान को निकाल कर शुद्ध आयुर्वेद के ग्रन्थ ही कोर्स में रहने दिये गये तो इसका अर्थ होगा आयुर्वेद का उत्तर प्रदेश से बोरिया बिस्तरा बांधना।

वैद्य समाज की योग्यता—हम आधुनिक प्रत्यक्षमूलक ज्ञान को लेना नहीं चाहते। दूसरी ओर अपने प्राचीन सिद्धान्तों पर पुनः आत्म निरीक्षण भी करना नहीं चाहते। न उसके खरे खोटे होने के देखने का हमारे पास कोई साधन है। हम में अब इतनी भी योग्यता नहीं कि किसी नए ग्रन्थ का प्रणयन कर आयुर्वेद के अपूर्ण अंश की पूर्ति भी कर सकें। आज ४०-५० वर्षों से जो आयुर्वेद के कालिज खुले हैं एक भी कालेज आज तक ऐसी कोर्स की पुस्तक नहीं रख सका जिसके पढ़ने पर आयुर्वेद के अपूर्ण अंश की पूर्ति होती हो। वैद्यों में एक भी विद्वान् वैद्य ऐसा नहीं दिखाई देता जिसने आयुर्वेद शिक्षा पर कोई ग्रंथ लिखकर किसी एक अंश की भी पूर्ति की हो। आयुर्वेद को जब हम आगे बढ़ा नहीं सकते उसे विकसित करने का मार्ग हमें सूझता नहीं, जिसको पोषण सामग्री न मिले, वह कितने दिन जीवित रह सकता है ? इसे जीवन देना है तो उसका एक ही सर्वोत्तम मार्ग है कि जितना प्रत्यक्ष मूलक ज्ञान विज्ञान है उसे आयुर्वेदीय रूप में ढालकर आयुर्वेद का अंग बना लें। उसके विरुद्ध जो भी हमारे सिद्धान्त पड़ते हैं वह कितने ही पुराने आर्षवाक्य हों, उन्हें त्याग दें। जब तक हम आयुर्वेद को इस रूप में नहीं लाते कि जो भी प्रत्यक्ष मूलक ज्ञान सामने आये उसे खपाने की सामर्थ्य होती जाय जैसे इस समय अलोपैथी में हम देखते हैं, तभी आयुर्वेद विकसित होकर जीवित रह सकता है।

इस समय अलोपैथी के प्रत्येक अंग कैसे विकसित हो रहे हैं ? कोई भी आविष्कार जो उनकी चिकित्सा में सहायता पहुँचाता हो उसे वह उसी समय अपने में मिला कर अलोपैथी का अंग बना लेते हैं और कोर्स ग्रन्थ में उसका समावेश कर उसको ऐसा रूप दे देते हैं मानो वह किसी अलोपैथ का ही आविष्कार हो। इसी से तो अलोपैथी बड़ी तीव्रता से आगे बढ़ती जा रही है।

कोई जमाना था कीटाणु नाशक रूप में आयडोफार्म का उपयोग अनिवार्य रूप से होता था किन्तु जब उन्हें पता लगा कि यह कीटाणु द्वारा उत्पन्न विषाक्तता को दूर करने में समर्थ नहीं उन्होंने उसे त्याग दिया। आज आयडोफार्म का कोई नाम नहीं जानता। ऐसी ही प्रवृत्ति जब तक आयुर्वेदज्ञों में नहीं आती और नव्य ज्ञान विज्ञान को पूर्णतया अपना नहीं लेते आयुर्वेद की उन्नति सम्भव नहीं।

शुद्ध आयुर्वेद पाठ्यक्रम समिति बम्बई राज्य द्वारा अप्रैल १९५८ में आयोजित परीक्षाओं का परिणाम

प्रथम आयुर्वेद प्रवीण (D. S. A. C.) परीक्षा

इस परीक्षा में कुल ६८ छात्र बैठे जिन में से पास होने वाले ३३ छात्रों के रोलनम्बर निम्नलिखित है।

३, ४, ६, ८, ९, १०, ११, १२, १६, १७, २१, २३, २५, २७, २८, ३०, ३१, ३२, ३४, ३६, ४१, ४३, ४४, ४८, ४९, ५०, ५३, ५८, ६३, ६५, ६६, ६८, ६९।

अन्तिम आयुर्वेद प्रवीण (D. S. A. C.) परीक्षा

इस में कुल ३५ छात्र बैठे जिन में से १९ पास हुये, उनके रोलनम्बर निम्न हैं।

१, २, ३, ५, ६, ७, ८, ९, १०, १४, १५, १६, १७, १९, २२, २३, २४, २६, ३४।

एन० एच० जोशी
मन्त्री
शुद्ध आयुर्वेद पाठ्यक्रम
समिति, बम्बई राज्य

६ जून, १९५८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्युत् की भट्ठियां और औषध निर्माण की मशीनें !!

हम अभी तक धातु भस्में उपलों की अग्नि में तय्यार करते हैं। उपलों की आंच देने में यह त्रुटि सदा रहती रही है कभी आंच कम कभी अधिक लग जाती है, इसके नियन्त्रण के जो भौतिक साधन बताये हैं उन्हें अपनाने पर भी यह त्रुटि दूर नहीं होती, इसीलिये अन्य साधन ढूंढने पड़े। उनमें से विद्युत् की भट्ठियां सर्वोत्तम सिद्ध हुई। विद्युत्भट्ठी में ताप नियन्त्रण की पूर्ण व्यवस्था होती है, जितनी भी मात्रा में आंच देना चाहें आप प्रसन्नता से दे सकते हैं। प्रत्येक धातु भस्में बनाने पर देखा गया है कि उन्हें एक जैसी आंच नहीं चाहिये। किस धातु भस्म को कितनी आंच देना है? इसका सही-सही ज्ञान आप हमारे लिखे भस्म विज्ञान नामक ग्रन्थ में प्राप्त कर सकते हैं।

और वह भस्में विद्युत् भट्ठी पर ही एक मात्रा में आंच देकर बन सकती है इसका अनुभव लिया जा रहा है और उस पर एक भिन्न ग्रन्थ तैयार हो रहा है। हमने ऐसी विद्युत् भट्ठियां निर्माण की हैं जिन पर धातु भस्म और कूपी-पक्व रस दोनों ही बन सकते हैं। छोटे बड़े कई आकार की भट्ठियां तय्यार करके उन पर अनुभव ले रहे हैं जो वैद्य इन भट्ठियों का उपयोग करेंगे वह निश्चिन्त बैठे हुए भस्में व कूपी-पक्व रस निर्माण कर सकते हैं। जिन्हें भट्ठी लगाने की इच्छा हो वह पत्र-व्यवहार करें।

और आज-कल औषधियों की मांग इतनी बढ़ गई है कि हाथ से औषधियां कूट, पीस कर उतनी जल्दी रस, वटी तय्यार नहीं होतीं जितनी मशीनों से होती हैं। हाथ तो लगातार घंटा, आधा घंटा काम कर सकते हैं फिर थक जाते हैं पर मशीन तो लगातार ८-९ घंटा या जितनी देर चाहें उन्हें चलावें क्या वह थकने वाली हैं? फिर खूबी सबसे बड़ी हमारी मशीनों में यह है कि जिस तरह आयुर्वेद के ग्रन्थों में औषधियों की कुटाई, पिसाई और घोटाई (भावना) का जो विधान दिया है जिससे औषधियों का सार भाग गरम न हो कर वह नष्ट नहीं होते, बिल्कुल उसी विधि के अनुसार हमारी मशीनों से कुटाई, पिसाई घुटाई होती है और औषधियां घुट कर इतने सूक्ष्म अणु-अंशों में आ जाती हैं कि जिनका प्रभाव शीघ्र होता है। प्रत्येक मशीन बिजली की शक्ति से चलने वाली है। मशीनें निम्न हैं :--

चट्टू मशीन, ढोल मशीन, खरल मशीन, गोली मशीन, टिकिया मशीन, पालिश मशीन, आसव छानने की मशीन फिल्टर आदि। अधिक मात्रा में औषध निर्माण-कर्ता यह मशीनें हमारे कारखाने में आकर देखें और सारी व्यवस्था समझ कर अपने यहां यह मशीनें लगाएं।

निवेदक---मैनेजर पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी,
६०--६१ अकाली मार्केट, अमृतसर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं० डी-७२०

शिवा गुटिका

(दिव्य रसायन)

वैद्यों ने चक्रदत्त या योगरत्नाकर का रसायनाधिकार पढ़ा होगा या भारत भैषज्य रत्नाकर पढ़ा होगा इन ग्रन्थों में शिवा गुटिका एक शिलाजीत सूर्य तापी का योग आया है जिसे कुछ वनस्पतियों, जीवनीय गणों की औषधियों द्वारा ग्रीष्म काल के आतप में भावना देकर उसकी मलाई उतारने का विधान है फिर उसमें कुछ और औषधियां डाल कर गुटी बनाई जाती है। वहां लिखा है इसे एक वर्ष तक सेवन करना चाहिये उसके निम्न लाभ लिखे हैं :—

दारुण आमवात, आढ्यवात, यक्ष्मा, पांडु, संग्रहणी, गुल्म, कुष्ठ, जड़ता, शून्यता, नपुन्सकता, उन्माद, मृगी, कृशता, भगन्दर, नेत्ररोग, शिरोरोग, उदर रोग, कर्णरोग, कंठरोग, फुफुसरोग, हृदयरोग आदि विविध रोगों में लाभ करती है।

एक हमारे मित्र जिन्हें कर्णनाद और सिर में चक्कर आते थे, सिर हल्का उड़ता सा, मन अस्थिर रहता था बीमारी किसीकी समझमें नहीं आ रही थी एक वयोवृद्ध वैद्य के बताने पर उन्हों ने उक्त योग की औषध लेकर विधि पूर्वक बनाया और उन्हों ने चार महीना सेवन किया ६० वर्ष की अवस्था में वे बिल्कुल ठीक हो गये। उन्होंने मुझे भी खाने का आग्रह किया, क्योंकि आज तीन वर्ष हुए मैं एक अंगरेजी दवाई (हार्मोन्स) की बनी दो गोलियाँ खा बैठा, उनका मेरे मस्तिष्क पर इतना बुरा प्रभाव पड़ा कि पढ़ने में मेरा दिमाग चट थक जाता। मैं १०-१० घंटे लगातार पढ़ने लिखने का काम करने वाला आदमी था, बड़ी परेशानी में पड़ा बड़े इलाज किये, पर कोई लाभ नहीं हो रहा था कई कितावें लिखते लिखते अधूरी रही हुई थीं, कैसे पूरी हों ? बड़ी चिन्ता थी। मैंने उनके कहने पर ३ महीना लगातार उक्त गुटिका खाई धीरे धीरे मेरी हालत ठीक होते होते बिल्कुल ठीक हो गई।

एक कनफटा योगी मेरे पास आया, उसे ५ वर्ष से मूत्र कृच्छ, था उसने किसी साधु से ४ खुराक संखिया भस्म की खा ली थीं, बस तब से उसका मूत्र कम हो गया था और भूख बन्द हो गई थी बड़े इलाज किये थे पर लाभ नहीं हो रहा था, मैंने उस से कहा तुम भी दो चार महीना शिवा गुटिका खा लो, शायद इससे तुम्हें लाभ हो उसने चार महीने खाई और बिल्कुल ठीक हो गया।

ग्रन्थकारों ने इसे रसायन लिखा है, किसी रोग से, किसी विष प्रभाव से, जरावस्था से किसी भी तरह शरीर की जब कार्य व्यवस्था बिगड़ जाय, शरीर की कोषाएं निर्बल विकृत हो जायं तो ऐसी दशा में रसायन औषधियां उस के स्वास्थ्य को बिल्कुल ठीक कर देती हैं, रसायन इसी का अर्थ है। यह हमने अपने पर प्रयोग कर प्रत्यक्ष देखा और अपने मित्र पर देखा। रसायन औषध दो चार दिन खाने वाली नहीं होतीं। इन्हें तो दो चार महीने ही खाना चाहिये। शास्त्र में इसकी मात्रा बहेड़े के दाने के बराबर लिखी है, मगर हमने ४ रत्ती की गोलियां बनाई थीं और दो दो गोलियां दोनों समय खाते थे। ५ तोला गुटिका एक मास के लिये होती है। हमने विक्रयार्थ इसके ५ तोला के पैकट बनाये हैं जिसका मूल्य ५ रु० रखा है आशा है जीर्ण वृद्ध रोगी इसका उपयोग कर फलाफल से सूचना देंगे।

पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी
अकाली मार्केट, अमृतसर
ब्रांच—खारी बावली, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ५ भाद्रपद सम्वत २०१५ संख्या ६

सितम्बर १९५८

आयुर्वेद-विज्ञान

चिकित्सा संसार में क्रान्ति लाने वाला मुख्य वैज्ञानिक पत्र

AYURVED-VIJNAN

The Leading Hindi Journal Explaining The Ayurvedic System on Scientific Lines

सम्पादक

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

विषय-सूची

१. क्या आयुर्वेदज्ञों को नव्य ज्ञान की आवश्यकता नहीं ? १३३
२. मस्तुलुंग की करामात १३६
३. अजीर्ण ज्वर या भुक्त-विष ज्वर क्या है ? १४३
४. वैज्ञानिक जगत् उन्नति की ओर १४६

प्रकाशक—

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य, आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय, २२ फैज़ बाज़ार, देहली।

मुद्रक—बदलिया प्रिंटिंग प्रेस, दाईवाड़ा नई सड़क, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम

१—आयुर्वेद-विज्ञान प्रत्येक अंग्रेजी मास की १ तारीख को प्रकाशित होता रहेगा।

२—डाक-व्यय सहित इसका मूल्य ३) वार्षिक, एक प्रति का मूल्य ३० नये पैसे होगा।

३—पत्र मंगाने वालों को अपना पता साफ २ अक्षरों में लिखना चाहिये।

४—जिन व्यक्तियों के पास उस मास की ५ ता० तक पत्र न पहुंचे उन्हें इसकी सूचना देनी चाहिये।

५—यदि एक-दो मास के लिये पता बदलवाना हो तो उसका प्रबन्ध स्वयम् डाकखाने से कर लेना चाहिये। अधिक समय के लिये पता बदलवाना हो तो फिर हमें सूचित करना चाहिये।

६—पत्र व्यवहार करते समय ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये। अन्यथा उत्तर नहीं दिया जावेगा।

७—पत्र व मूल्य सम्बन्धी पत्र-व्यवहार मैनेजर आयुर्वेद विज्ञान के नाम से और लेख, समालोचनादि व पुस्तकादि सम्पादक के नाम से भेजना चाहिये।

८—कोई भी पत्र, पुस्तक समालोचना के लिये भेजी जाय उनकी दो प्रति भेजनी चाहिये।

९—आयुर्वेद विषयक वैज्ञानिक गवेषणापूर्ण लेखों को पत्र में सर्व-प्रथम स्थान दिया जायेगा और श्रेष्ठ सचित्र लेखकों को पुरस्कृत भी किया जायगा।

१०—वृथा के आडम्बर पूर्ण पृष्ठ-पोषक लेखों के लिये इसमें स्थान नहीं मिलेगा। किसी भी लेख को घटाने, बढ़ाने व प्रकाशित करने, न करने का सम्पादक को पूर्ण अधिकार होगा।

११—जो लेख भेजे जायें, कागज पर एक तरफ हाशिया छोड़ कर लिखे होने चाहिये।

१२—उत्तम २ अलभ्य आयुर्वेद साहित्य सम्बन्धी चित्र लेख व वनस्पतियों आदि को जो सुरक्षित भेजेंगे उनको सपारिश्रमिक मार्ग व्यय आदि सब आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय से दिया जायेगा।

१३—आयुर्वेद शास्त्र सम्बन्धी प्रश्नों को छोड़ कर किसी परामर्श सम्बन्धी या किसी रोगी के लिये रोग-सम्बन्धी प्रश्नों पर प्रति प्रश्न के लिये आयुर्वेद-विज्ञान के ग्राहक आठ आना, जो ग्राहक नहीं वह प्रति प्रश्न एक रुपये का टिकट प्रश्न के साथ भेजेंगे तभी उनके प्रश्न और उत्तर छापे जायेंगे।

विज्ञापन छापने के नियम

१—किसी भी विज्ञापन छापने वाले या बन्द करने वाले को पत्र प्रकाशन से १५ दिन पूर्व सूचना देनी चाहिये।

२—अश्लील सभ्यता के विरुद्ध विज्ञापन नहीं लिये जायेंगे।

३—कोई भी विज्ञापन जनता को धोखा देने वाला सिद्ध होने पर उसका प्रकाशन बन्द कर दिया जायगा और जब तक वह सन्तोषप्रद प्रमाण न देगा जो मूल्य आ चुका है वापस नहीं दिया जायगा।

४—विज्ञापन का मूल्य सर्वथा प्रथम लिया जायगा।

५—आधे कालम से कम विज्ञापन दाताओं को आयुर्वेद विज्ञान बिना मूल्य नहीं दिया जायगा।

६—एक वर्ष के लिये विज्ञापन देने वाले को =) रुपया कमीशन काट दिया जायगा।

विज्ञापन के दर

७—१ पृष्ठ यानी २ कालम की प्रतिबार की छपाई ४०)
आधा पृष्ठ " १ " " " २५)
चौथाई " १।२ " " " १६)
टाईटल के पीछे के पृष्ठ की " " ५०)
" तीसरे " की " " ४५)
" चौथे " की " " ६०)

८—ट्रेड डायरैक्टरी में विषय वार विज्ञापन प्रति १) ६० के हिसाब से लिया जावेगा।

मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेद-विज्ञान

आयुर्विदेव वितते किल शास्त्र जाते पुम्भिः प्रयत्नपरकैर्भवतीह लभ्यम् ।
शक्तिं शिवं च जनता यदि कांक्षतीयम् विज्ञानमेव भजतां सततं विशेषम् ॥

वर्ष ५ | भाद्रपद २०१५ वि०, सितम्बर १९५८ ई० | अंक ९

क्या आयुर्वेदज्ञों को नव्य ज्ञान की आवश्यकता नहीं ?

कुछ पुराण पंथियों द्वारा यह प्रयत्न हो रहा है कि उत्तर प्रदेश के आयुर्वेदिक कालेजों में जो मिश्रित शिक्षा-प्रणाली चल रही है वह बन्द कर दी जाय और विद्यार्थियों को केवल शुद्ध आयुर्वेद ग्रन्थों के आधार पर आयुर्वेद पढ़ाया जाय और उन परीक्षोत्तीर्ण छात्रों के अधिकार उतने ही माने जांय जितने एक अलौपैथ डाक्टर को हैं। इस मांग के लिए उन्होंने कौन सा आधार बनाया है, इसका पता नहीं चलता। यदि यह कहा जाय कि आयुर्वेद अलोपैथी से एक भिन्न पद्धति है और इस देश की यह प्राचीन पद्धति है, इसका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है, यह अपने ज्ञान-विज्ञान में पूर्ण है, चिकित्सा-क्षेत्र में इसके साफल्य प्रयोग इस बात की साक्षी हैं कि इसे किसी से कुछ सीखना नहीं है। इसलिये इसकी शिक्षा, इसके अधिकार अन्य पद्धति के तुल्य मान्य होने चाहियें। इस कथन में कहां तक औचित्य है यह विचारणीय चीज है।

आयुर्वेद को हम आठ अंगों से युक्त को ही पूर्ण मानते हैं—शल्य, शालाक्य आदि समस्त अंगों से जब तक इसे पूर्ण न किया जाय, उसके वे ज्ञाता वैद्य न हों तो उन्हें किस आधार पर पूर्ण आयुर्वेदज्ञ माना जाय ? यह प्रश्न सामने आता है। आज कितने वैद्य आठ अंगों के ज्ञाता हैं ? और उनका शल्य, शालाक्य सम्बन्धी ज्ञान दूसरी चिकित्सा पद्धतियों की तुलना में कितना है ? इसे कभी किसी ने देखने का प्रयत्न किया है ? इसे जाने दीजिये, शरीर और निदान भाग पर ही दृष्टि डालिये कि इस विषय में ही विद्यमान ज्ञान की तुलना में आयुर्वेदज्ञ कितने हैं ? इस पर जरा विचारियेगा।

यहां हम शरीर ज्ञान सम्बन्धी बड़ी ही स्थूल चीज रक्त को ही लेते हैं। रक्त के जो लक्षण शास्त्रकार ने दिये हैं यह शरीर में स्वतन्त्र सत्तात्मक कोई वस्तु है या परतन्त्र ? इसके सम्बन्ध में कोई विवेचन नहीं मिलता। इतना ही कहा है "तत्र रसगतो धातु" वह रस के अन्तर्गत रहने वाला धातु है अर्थात् "रसाद्रक्तं" रस से बनने वाला धातु है। क्या यह ठीक है ? आयुर्वेद शरीर-रचना और अलोपैथ शरीर-रचना दो चीजें भिन्न नहीं हो सकतीं। शरीर के जो अंग, उपांग और अवयव हैं वह तो प्रकृति प्रदत्त हैं, वही रहेंगे। आयुर्वेद वालों का रक्त कोई और चीज न होगी, न अलोपैथी वालों का कोई और चीज। यह तो जैसा है वैसा ही रहेगा, इसमें कोई अन्तर हो नहीं सकता। न रक्त सम्बन्धी ज्ञान का अन्तर हो सकता है। रक्त सम्बन्धी ज्ञान हमारा सही है या अलौपैथ वालों का ? यह तुलनात्मक अध्ययन की चीज है। जब अपने रक्त सम्बन्धी ज्ञान से विद्यमान अलोपैथी के रक्त सम्बन्धी ज्ञान की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलना करते हैं तो हमारा रक्त सम्बन्धी ज्ञान प्रारम्भिक ज्ञान से अधिक सिद्ध नहीं होता। सुश्रुत जैसे आद्याचार्य रक्त को समस्त शरीर में भ्रमणशील न मानकर रस को मानते हैं। "अहरहर्गच्छतीत्योरसः" रस ही दिन-रात शरीर में दौरा करता है। शास्त्रकार रस का वर्ण लाल नहीं मानता। रक्त को वीरवहूटी के रंग का गुंजा (रत्ती) सा मानता है। यदि रस शरीर में भ्रमणशील रहने वाली चीज होती तो लड़ाइयों में जो अस्त्रों की मार से घाव हो जाते थे उसमें से रस निकलना चाहिये था। और समर में रक्त की नहीं, रस की नदियां बहनी चाहिये थीं। पर कोई भी ग्रन्थकार समरभूमि रस से प्लावित न लिख कर रक्त प्लावित ही लिखता चला आया है। कोई भी व्यक्ति किसी के शरीर का कोई भाग काटने पर उसमें से रस बहता नहीं दिखता, प्रत्युत रक्त को ही सब देखते हैं। इतनी मोटी रक्त की स्थिति को देखकर भी हमारे आचार्यों ने रक्त को परिभ्रमण शील न मान कर रस को किस आधार पर माना? इसकी प्रामाणिकता का कोई पता नहीं चलता।

शरीर में रसवाही जो स्रोत हैं जिन्हें लसिका वाहनियां कहते हैं। उन लसिका वाहनियों से कभी किसी ने रस बहते नहीं देखा, फिर किस आधार पर यह माना गया कि रस शरीर में घूमता है। विपाकित रस जो लसिकावाहनियों के मार्ग से कहीं जाता है वह रक्त द्रव में जाकर मिल जाता है, जो रक्त संज्ञक होता है। ऐसी दशा में रस की स्वतन्त्र सत्ता रहती ही नहीं। रक्त तो अपनी वर्ण विशेषता के कारण रक्त है। किन्तु इसे "मधुर मीषल्लवणं स्निग्धमसंहतं" जो कहा है क्या रक्त का स्वाद मीठा, कुछ नमकीन, चिकना, द्रव है? रक्त स्वतः द्रव रूप पदार्थ तो है नहीं, वह तो कणिका रूप है। केन्द्र प्रसारी यन्त्र द्वारा जब रक्त को छाना जाता है तो रक्त-रस भिन्न हो जाता है और रक्त कण भिन्न। रक्त-कण ठोस पदार्थ हैं, न कि द्रव। उन रक्त-कणों को धोने के बाद न उनमें मधुरता का, न लवण का स्वाद आता है। न वह चिकना ही होता है, न यह द्रव रूप में रहने वाला है। यह सारे गुण, धर्म जो रक्त में आरोपित किये गये थे एक भी सिद्ध नहीं होते। ऐसी दशा में हमारा यह शरीर सम्बन्धी ज्ञान किस अर्थ का? न तो इसकी सच्चाई प्रयोगों से पाई जाती है, न व्यवहार में किसी सच्चाई का प्रमाण मिलता है। जिस आयुर्वेद के आधार पर हम रक्त की स्थिति को ही नहीं जान सकते तो ऐसे आयुर्वेद शरीर के पढ़ाने से क्या लाभ?

यदि हम रक्त सम्बन्धी बढ़े हुए ज्ञान को न लें तो अनेक बीमारियां जो रक्त सम्बन्धी होती हैं उनका निदान हम कैसे कर सकते हैं। हमारे यहां तो रक्त कणों, सितकणों तक के अस्तित्व को नहीं जानते, किन्तु इनका अस्तित्व प्रत्यक्ष में पाया जाता है। जब हम रक्त के बूंद को परीक्षा पटिका पर फैला कर सूक्ष्म दर्शक से कर लेते हैं तो उसमें कई प्रकार के रक्त, सितकणों की आकृति स्पष्ट दिखाई देती है। जब रक्त को छानते हैं तो रस, रक्त-कण दोनों भिन्न-भिन्न मिलते हैं, तो क्या इन दो प्रमाणों को देखकर रक्त-कणों के अस्तित्व को न माना जाय? ऐसा तो वही व्यक्ति कहेगा जो विचारशील नहीं। विचारशील तो प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानेगा।

रक्त में चार प्रकार के कण पाये जाते हैं, एक लाल बाकी सित। सितकणों की स्थिति का शरीर के स्वास्थ्य से कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है वैद्य-समाज इसे नहीं जानता। इस विषय का ज्ञान हमें रंचक मात्र भी नहीं है। इसका हम कुछ विवेचन दे रहे हैं ताकि पाठक पढ़ कर समझें कि आयुर्वेद के अष्टांगों में से कितने अंगपूर्ण हैं।

सिताणु वृद्धि से व्याधियों का सम्बन्ध—

रक्त में सिताणु कहां से आते हैं? शरीर विज्ञानियों ने ढूंढकर दिखाया है कि इनकी उत्पत्ति के तीन स्थल हैं—(१) अस्थिमज्जान्तःस्थल (२) प्लीह जालान्तस्तरीय कोषाएं और (३) लसिका ग्रन्थियां। अस्थि की मज्जा में रक्त और सित दोनों ही प्रकार के कण उत्पन्न होते हैं। जो मज्जा में सितकण उत्पन्न होते हैं उन्हें मज्जाणु कहते हैं। इनमें दो विशेषताएं होती हैं–(१) एक तो इनके भीतर जो मींगी दिखाई देती है वह टूटी-फूटी सी कई टुकड़ों में बंटी होती है। इसलिए इन्हें बहुमींगी वाले सिताणु कहते हैं। (२) इनके जीवन-रस में अत्यन्त सूक्ष्म कणिकाएं भी फैली हुई देखी जाती हैं। यही दो इनमें विशेषताएं हैं जिनसे इनको पहचानने में आसानी होती है।

प्लीहसिताणु—प्लीहा में विशेष कोषाओं का निर्मित एक जाल सा फैला होता है जिसे जालान्तस्तरीय कोषाएं कहते हैं। यह कोषाएं बड़े महत्व की हैं। इन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोषाओं के कई कामों में से एक काम यह भी है कि वह सितारगुओं को सदा जन्म देती ही रहती हैं। इसके सितारगु मज्जाणुओं से आकार में बड़े होते हैं और इनके अन्दर एक ही मींगी होती है। इनका जीवन-रस अधिक फीका होता है। इसी से मज्जिकाणुओं से इन्हें आसानी से पहचान लेते हैं।

लसिक सितारगु—कक्षा, वक्षरण, उदरकला आदि स्थानों में काफी लसिका ग्रन्थियां होती हैं इन ग्रन्थियों में भी सितारगु बनते हैं और वह लसिका के साथ बह कर रक्त में पहुँचा करते हैं। इन लसिक सितारगुओं के भीतर जीवन-रस बहुत थोड़े प्रसार में होता है, मींगी से ही सारा स्थान घिरा होता है। वह मींगी गोलाकार या कुछ लम्बाई लिये एक ओर लोबिये के दाने में जैसी गहराई होती है ऐसी गहराई एक ओर होती है। इसकी मींगी का रंग गहरा नीला होता है।

श्वेताणु वृद्धि दोष

स्वाभाविकतया रक्त में इन श्वेताणुओं की संख्या एक घन सहस्रांश लम्बन में ७५०० तक होती है वहां रक्ताणुओं की संख्या पचास लाख पाई जाती है। किन्तु जब इनकी संख्या किसी कारण से अधिक बढ़ जाय और अधिक समय तक बनी रहे तो इसको वृद्धि दोष कहते हैं। यद्यपि भोजन करने के पश्चात तीन-चार घन्टे के भीतर श्वेताणुओं की वृद्धि १२ हजार तक प्रतिदिन हो जाया करती है, तथापि यह स्थिर नहीं रहती। भोजन पच जाने पर उक्त संख्या में कमी आ जाती है, इसलिये इसको वृद्धि दोष नहीं कह सकते। श्वेताणु वृद्धि कई औषधियों के सेवन से भी हो जाती है जैसे—अधिक क्षारीय पदार्थ सेवन से, या धातु लवणों के सेवन से और इससे भिन्न प्रायः शल्य क्रिया के पश्चात भी ऐसा ही होता है। परंतु गर्भकाल और बाल्यकाल में वह स्वाभाविक ही अधिक संख्या में हुआ करते हैं। उक्त कारणों से भिन्न जब इनकी वृद्धि पाई जाय तो विश्वास किया जाता है कि किसी न किसी प्रकार के जैव शरीर में अवश्य विद्यमान हैं। इसीलिये श्वेताणु वृद्धि का व्याधि विज्ञान में विशेष महत्व आंका जाता है।

उदाहरण के लिये परिविस्तृत कला प्रदाह को ही लीजिये—इस व्याधि के होने पर कभी उदर में जल और कभी पूय संचित हो जाता है। इस व्याधि को हम प्रायः जलोदरान्तर्गत ही मानते हैं। यदि परिविस्तृत कला प्रदाह के पश्चात् उसमें जल, पूय संचित होने लग रही हो उस अवस्था में रक्त में विद्यमान श्वेताणुओं की संख्या का पता लगावें तो उनकी संख्या बहुत अधिक बढ़ी हुई मिलेगी। यहां तक कि प्रति वर्ग इंच में ३० हजार तक इनकी संख्या मिलती है। इससे निश्चित किया जाता है कि इस उदर विकार में पूय या पानी का संचय हो गया है। इसी प्रकार यकृत विकार, प्लीहा विकार में भी जब सितारगुओं की संख्या अत्यधिक पाई जाय तो यकृत व्रण, प्लीहा व्रण होने तथा उसमें पूय पड़ने का विश्वास किया जाता है। इसी प्रकार पुच्छान्त्र प्रदाह में भी जब अधिक शोथ होकर वह बढ़ता है तब भी श्वेताणुओं की अधिक वृद्धि देखी जाती है। यह श्वेताणु वृद्धि दोष दो रूप में देखा जाता है। एक वह जिसमें तीनों प्रकार के श्वेताणुओं की वृद्धि होती है, इसको साधारण वृद्धि कहते हैं। दूसरी प्रकार की वृद्धि वह होती है जिसमें केवल एक ही प्रकार के श्वेताणु बढ़ते हैं जैसे—माल्टा फीवर, जर्मनी का खसरा, विषम ज्वर, कर्ण मूल ग्रन्थि शोथ, निःश्रान्त की क्षय, कुष्ठ, दुर्गन्धी ज्वर इत्यादि में जबकि इनमें किसी और रोग कारक जैवों का मिश्रण न हो। साधारण श्वेताणु वृद्धि तो प्रायः प्रत्येक व्याधि के साथ अवश्य ही देखी जाती है और इस वृद्धि का वेग रोगाणु बल पर निर्भर रहता है। जिस रोग में अधिक वेग से रोगाणुओं की संख्या शरीर में बढ़ेगी उतनी ही अधिक वृद्धि श्वेताणुओं की देखी जाती है। जैसे रक्त न्यूनता, क्लोम विकार, यकृत व्रण इत्यादि में। अतः यह रोगाणुओं की स्थिति पर निर्भर है। किन्तु कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि कई प्रबल व्याधिकारक रोगाणुओं के बढ़ने पर भी श्वेताणुओं की वृद्धि बहुत ही न्यून देखी जाती है और कभी-कभी बिलकुल नहीं होती। इसमें यह कारण पाया गया है कि रोग कारिणी शक्ति का प्रभाव केवल अस्थि मज्जा पर ही होता है। इसी से वृद्धि नहीं देखी जाती, परन्तु ऐसा बहुत कम होता है। हां, एक देशिक अवश्य देखा जाता है, जैसे अस्थि व्रण, अस्थि प्रदाह में जहां कि व्रण या प्रदाह हो रहा है दिखाई देता है।

हम पीछे बतला चुके है कि सितारगु तीन प्रकार के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होते हैं। १. सिताणु बहुमींगी वाले, २. सिताणु एकमींगी वाले बड़े, ३. सिताणु वक्रमींगी वाले। प्रत्येक व्याधि में यह सब एक साथ बढ़ते होंगे, ऐसा नहीं होता। प्रत्युत भिन्न-भिन्न रोगों में भिन्न-भिन्न प्रकार के श्वेताणुओं की वृद्धि देखी जाती है। यथा

१. किसी रोगाणु जन्य प्रदाह में जबकि उक्त प्रदाह में पूय उत्पन्न होगई हो, यथा फुफ्फुस प्रदाह और ज्वरों में वह श्वेताणु बढ़ते हैं जो अम्ल और क्षारीय द्रवों से रंगीन हो जाते हैं।

२. और कुकुर कास(हुपिंगकफ) अस्थिविद्रूपता,उपदंश और बच्चों के हरे पीले दस्त (तालुकंटक), रक्तस्राव रसौली, लसिक स्नेहमयी में वह सिताणु वृद्धि करते हैं जो वक्र मींगी वाले होते हैं।

३. विषम ज्वर, श्यामा जार ज्वर, प्रवाहिका जैवी (अमीबाई) आदि, विषम ज्वर जो उतर-उतर कर फ़िर चढ़ जाता है (रेलैप्सिग फीवर), सीतला आदि में स्वाभाविक एक मींगी वाले श्वेताणु वृद्धि करते हैं।

४. श्वास, विचर्चिका, सन्धिवात, मूत्राम्ल वृद्धि, आध्मान, पूयरक्तता [पाईमियां], उदरकृमि, साधारण क्षय आदि में बहु मींगी सिताणु बढ़ते हैं।

उक्त वृद्धि से लाभ

सिताणुओं की शरीर में वृद्धि का लाभ यह है कि जब कोई जैवी विष या जैवों की वृद्धि होने लगती है तो उस समय इनके द्वारा शरीर में क्षमता शक्ति प्राप्त करने का प्रयत्न होता है और यही शरीर के प्रत्येक रणस्थल पर पहुँचकर शत्रु का सामुख्य लेते हैं। इनके द्वारा प्रतिविष बनकर जब बढ़ता है तो उस समय शरीर पर विजय के चिन्ह (नीरोग्यता) दिखाई देने लगती है। इनका प्रत्येक रोगावस्था में बढ़ना जीवन संरक्षण के लिए आवश्यक है।

वृद्धि का क्रम

जिस तरह उदर खाली होने पर क्षुधा के लिए सम्वेदन होता है और स्नायुमण्डल की प्रेरणा से उदरदरी में स्राव होने लगता है तथा उदरदरी रह-रहकर गतिशील होती हुई क्षुद्बोध कराती है। ठीक इसी तरह जब कि रोग के कारण शरीर में क्षीणता बढ़ती है तो उसका सम्वेदन मस्तिष्क पर होता है और मस्तिष्क स्नायुमण्डल द्वारा उसका बोध अस्थिमज्जा, प्लीहा और लसिका ग्रन्थि को कराता है। जिस समय अस्थिमज्जा कोषों को सिताणु उत्पादन की सूचना मिलती है उसमें विशेष गतिशीलता आती है और सिताणुओं की मींगी से श्वेताणुओं का सम्वर्द्धन आरम्भ हो जाता है और जैसे-जैसे वह सिताणु मींगी सिताणुओं में परिवर्तित होते रहते हैं अपने स्थान से खिसक-खिसक कर रक्तप्रवाह में आते जाते हैं और भिन्न-भिन्न श्वेताणुओं के रूप को प्राप्त होकर रणस्थली की ओर वेग से पहुँच जाते हैं। इस तरह जब तक रोगाणु या उसका विष नष्ट नहीं होता यह सिताणु उत्पादन क्रम बराबर जारी रहता है।

सिताणु क्षीणता

श्वेताणु क्षीणता उस अवस्था का नाम है जबकि रक्त में श्वेताणुओं की मात्रा साधारण स्थिति से बहुत घट जाती है। यह दोष प्रायः अत्यधिक रक्तपात, रक्त स्राव से होता है और कभी-कभी मन्थर ज्वर के आरम्भ में, खसरा में, तीव्राम्लीय प्राशावजन्य फुफ्फुस प्रदाह, श्यामाजार, डेन्जू ज्वर तथा अन्य रक्त विकार में जिसमें प्लीहा वृद्धि होती है तथा दूसरी तरफ यकृत शोथ हो जाता है। जलोदर और श्वास प्रणाली के रोग यथा दमा आदि में और कई औषधियों के सेवन से यथा कुनैन, एट्रोपीन आदि के अत्यधिक सेवन से भी श्वेताणु क्षीण होकर मर जाते हैं और जब तक उक्त विकारों का प्रभाव बना रहे उत्पन्न होते ही मरते रहते हैं।

श्वेताणु वृद्धि

प्लीहा, अस्थिमज्जा, या लसिका ग्रन्थि इन तीनों में या इनमें से किसी में रोगाणुओं की वृद्धि होती है तो रक्त में श्वेताणुओं की संख्या अत्यधिक हो जाती है। सबसे पूर्व १८४५ में एक डाक्टर ने इस रोग की ओर चिकित्सकों का ध्यान खींचा था और सिताणु वृद्धि को देखकर उसने रक्त में पीप की उपस्थिति का अनुमान किया था। इसीलिये उसने इसका पूयरक्तता (पाइमियां) नाम दिया था। किन्तु इसी वर्ष एक दूसरे चिकित्सक ने इसको अच्छी तरह देख-समझ कर वास्तविक कारण को ढूंढा।

श्वेताणु वृद्धि प्रकार

इसके दो भेद निश्चय किये गये है। यद्यपि दो भेदों से भिन्न इसके और भी प्रकार हैं तथापि उनको बहुतों ने इन्हीं के अन्तर्गत किया है। इसी से हम दो भेद मज्जिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सितारगु वृद्धि तथा लसिक सितारगुं वृद्धि नाम से इनका वर्णन दे रहे हैं।

१. मज्जिक सितारगु वृद्धि

कुछ रोगियों में तो रक्त केवल गाढ़ा और फीके वर्ण का हो जाता है और अर्ध तरल रहता है अर्थात् अधिक गाढ़ा हो जाता है। उस समय देखने से ऐसा ज्ञात होने लगता है मानो रक्त और पीप दोनों का मिश्रण है। किन्तु उन रोगियों में जिनमें रोग अत्यधिक बढ़ चुका हो उनका रक्त बिल्कुल पीपवत् हो जाता है। अर्थात इसमें सितारगुओं की संख्या इतनी बढ़ जाती है कि रक्त पीप रूप दिखाई देने लगता है। ऐसे समय श्वेतारगुओं की संख्या प्रति घन सहस्रांश लम्बन में एक लाख तक बढ़ीहुई पाई जाती है। इसमें प्रत्येक प्रकार के श्वेतारगुओं की वृद्धि रक्त में मिलती है। चाहे यह प्रकार स्वाभाविक हो या अस्वाभाविक। आरम्भिक रोगावस्था में प्रायः प्रथम सितारगु बढ़ते हैं जो वहु मींगी होते हैं। तथा यह मिश्रित घोल में रंग जाते हैं। परन्तु जैसे जैसे रोग बढ़ता जाता है और सितारगु बढ़ते जाते हैं, वैसे-वैसे अस्थिमज्जा के एक विशेष सितारगु अन्य प्रकार के श्वेतारगुओं से संख्या में अधिक हो जाते हैं। अर्थात प्रत्येक प्रकार के श्वेतारगु जो रक्त में विद्यमान रहते हैं इनकी संख्या तीस से लेकर साठ प्रतिशत तक बढ़ जाती है। वह सितारगु भी अधिक संख्या में पाये जाते हैं जो क्षारीय द्रव में रंगीन हो जाते हैं। कभी-कभी इसमें लसिक सितारगु भी दिखाई देते हैं। पश्चात एक मींगी वाले सितारगुओं का प्रादुर्भाव होता है। इस रोग में प्लीहा भी खूब बढ़ जाती है—यहाँ तक कि इसका भार आठ-आठ दस-दस सेर तक पहुँच जाता है और प्रायः ऐसा होता है कि अपने आस-पास के मांसावयवों से यह लगकर जुड़ जाती है। ऐसे समय प्लीहा को व्यतस्त काट में देखा जाय तो वह पीत वर्ण की दिखाई देती है। और इसके पार्श्व भाग में तथा और स्थलों पर तन्तुयुक्तभाग अधिक बढ़ जाता है और इसके वास्तविक अवयवों का रूप बदल जाता है। प्लीहा के भीतर स्थान-स्थान पर पीत वर्ण के मृतप्राय अवयवों के भाग दिखाई देने लगते हैं जो प्रायः रक्तवाही तन्तुओं के मार्ग संकुचित हो जाने या रक्त जम जाने के कारण उत्पन्न होते हैं। इस रोग में अस्थिमज्जा कोष अधिक फूल व बढ़ जाता है और इनमें अत्यधिक तन्तु समूह उत्पन्न हो जाते हैं। उस समय इसमें मज्जिक सितारगु भी अधिक संख्या में पाये जाते हैं। उस समय मज्जा का रूप देखने पर मलाई जैसा दिखाई देता है। यकृत, वृक्क और हृदय के भीतरी अवयवों में वसा संचय का विकार होता है, मूत्र में मूत्राम्ल बढ़ जाता है। इस अवस्था में रक्त को निकालकर रख दें और फिर परीक्षा करें तो रक्त में मूत्राम्ल के चमकदार रवे दिखाई देते हैं जो पहलूदार होते हैं।

इसका रक्तस्राव (Haemophilia) प्रायः श्लैष्मिक कला के निर्बल हो जाने के कारण होता है। वह स्राव नेत्र की श्लेष्मिक कला तक से होते देखा जाता है।

यह रोग बहुत तीव्रता से बढ़ता है और इसमें रक्त-स्राव अत्यधिक होता है। इस रोग में रक्त के भीतर विशेष प्रकार का परिवर्तन होता है और इसमें मज्जिकारगुओं की संख्या अधिक बढ़ जाती है।

लसिकारगु वृद्धि

इस व्याधि में समग्र शरीर की लसिका ग्रन्थियां बढ़ जाती हैं और प्रायः देखा जाता है कि क्षुद्रान्त्र के लसिका सम्बन्धी तन्तु तक बढ़ जाते हैं। इससे भिन्न जहां कहीं लसिका ग्रन्थियां होती हैं सब बढ़ जाती हैं। ग्रंथियां कभी-कभी इतनी बढ़ जाती हैं कि अखरोट के दाने के बराबर हो जाती हैं: इन ग्रन्थियों का सूक्ष्म निरीक्षण करने पर दिखाई देता है कि इसके प्रत्येक विभाग एक से ही बढ़े हैं और इसमें लसिकारगु भरे हुए होते हैं। इसमें भी प्लीहा बढ़ जाती है और सितारगु की संख्या भी अत्यधिक होती है। इस रोग में सितारगुओं की संख्या अत्यधिक बढ़ जाती है, जिनमें लसिकारगु ८०-९० प्रतिशत होते हैं। कुछ रोगियों में वक्र मींगीवाले, बड़ी मींगी वाले सितारगु भी अधिक देखे जाते हैं। प्रायः इन रोगियों में रक्तारगुओं की संख्या घट जाती है और रक्त द्रव का सापेक्षिक मान भी घट जाता है अर्थात $\frac{३}{४}$ से लेके $\frac{१}{३}$ तक घट जाता है। उक्त रोग दो प्रकार का है एक तीव्र दूसरा जीर्ण, किन्तु इससे भिन्न इस रोग में और भी भेद देखे जाते हैं।

तीव्र रक्तजनक लसिकारगु वृद्धि

यह रोग बहुत अधिक होता है और हर अवस्था के मनुष्यों में देखा जाता है और स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक होता है और भिन्न-भिन्न रोगियों में रक्त का रूप भिन्न-भिन्न देखा जाता है। कई मनुष्यों में प्रति सप्ताह परीक्षा करने पर उनमें भी अन्तर दिखाई देता है। यह रोग जितनी तीव्रता से बढ़ता है उतने ही अधिक इसमें हीन, अपूर्ण लसिकाणु रक्त में पाये जाते हैं। इसलिये अधिक तीव्र नाशकारी अवस्था में लसिकाणु ही होते हैं। किन्तु चक्राणु प्रायः कम होते हैं। इसमें अस्थिमज्जा प्रायः नरम पड़कर गल जाती है और रक्त स्राव त्वचा के भीतर भी होता है। भिन्न-भिन्न स्थानों में तथा श्लेष्मिक कला द्वारा भी होता है तथा आन्तरिक ग्रन्थियों यकृत प्लीहा हृदयादि में भी रक्त स्राव देखा जाता है। इस रोग में रक्त स्राव की अधिकता देखकर बहुत से चिकित्सकों को भूल से रक्तस्राव रोग होने का भ्रम हो जाता है। लसिकाणु वृद्धि के बहुत से लक्षण रक्त विषाक्तता तथा रक्तस्थ पूयोत्पादी जैवों की प्रबल वृद्धि से भी अधिक मिलते हैं। किन्तु इस व्याधि को उत्पन्न करने वाले अब तक कोई जैव नहीं देखे गये।

लसिकांडकी (Hodgkins disease)

१८३२ में इस रोग को सबसे पूर्व डाक्टर हाजकिन ने देखकर निश्चित किया था। इसीलिये इसको उन्हीं के नाम से सम्बोधित किया गया है। इसमें बिना दर्द के लसिका ग्रन्थियां बढ़ने लग जाती हैं और इसके साथ ही साथ यकृत, प्लीहा, वृक्क, वृषण, फुफ्फुस व अस्थिमज्जा के लसिकाणु जनक अवयवों के भिन्न-भिन्न भाग भी बढ़ जाते हैं। यह रोग प्रथम तो अदृश्य रूप में उदर की लसिका वाहनी ग्रंथियों में उत्पन्न होता है, तत्पश्चात् धीरे-धीरे बढ़कर ग्रीवा, वंक्षण, कक्षा आदि की प्रत्येक लसिका ग्रन्थियों में फैल जाता है। और शरीर की प्रत्येक लसिका ग्रंथि इस रोग से ग्रसित हो जाती है। परीक्षा करने पर इस रोग के ग्रंथि विवर्द्धन और शोथ में अन्तर पाया जाता है। इसमें ग्रन्थियां बढ़कर चिकनी अंडाकृति कठिन किन्तु लचकदार रहती हैं, और इनके ऊपर की त्वचा भी अपनी असली अवस्था में रहती है। ग्रन्थियां त्वचा से संलग्नित भी नहीं होती। कभी-कभी यह अवश्य देखा जाता है कि जिस स्थान पर कई लसिका ग्रन्थियां होती हैं वह सब बढ़ती है तो परस्पर मिलकर अवश्य एक बन जाती है। यदि इनको मध्य से काटा जाय तो इनका वर्ण भीतर से भूरा श्वेत दिखाई देता है। उस समय इसको सूक्ष्म वीक्षण यन्त्र से देखा जाय तो गिल्टियों के असली अवयवों के स्थान पर एक अत्यन्त सूक्ष्म तन्तुओं का समूह (जाल) दिखाई देता है जिनके मध्य में अनेक सिताणु एक मींगी वाले फंसे होते हैं। इनसे भिन्न एक मींगी लसिकाणु तथा कभी-कभी वृहदाणु भी पाये जाते हैं जिनके भीतर एक या दो मींगी देखी जाती है। अन्त में इसके जो अवयव सूक्ष्म तन्तु समूह में बदले हुए होते हैं वह तन्तु समूह धीरे-धीरे मोटे तन्तुओं में अर्थात बन्धक तन्तुओं में परिवर्तित होते चले जाते हैं।

रक्त की अवस्था—रोगारम्भ में तो रक्त अपनी असली अवस्था में होता है किन्तु जैसे-जैसे रोग बढ़ता है रक्त की असली अवस्था में अन्तर आता जाता है और कुछ दिन में ही रक्त की मात्रा घटने लग जाती है और हरित पाण्डुता के चिन्ह दिखाई देने लगते हैं। इसमें सिताणु संख्या में नहीं बढ़ते किन्तु रक्ताणु घट जाते हैं। पर जब लसिका ग्रन्थियां अधिक शोथ युक्त होती हैं तो उस समय सिताणुओं की वृद्धि होती है। यह रोग पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक होता है। और जब रोगी निर्बल हो जाता है तो फिर असाध्य हो जाता है। इसके सम्बन्ध में रोग वृद्धि को देखकर निश्चय किया जाता है कि यह जैवी रोग है।

लसिकांग वर्धन (Chloroma)

यह व्याधि बहुत न्यून होती है, एक चिकित्सक ने निम्नलिखित चिन्ह इसमें पाये हैं। नैत्रिक श्लेष्मिक कला, मस्तिष्कावरक तथा शरीर की आन्तरिक श्लेष्मिक कला की लसिकावाही तन्तुओं में विकार संचय होता है, और वह बढ़ जाते हैं। इनका वर्ण हरित हो जाता है और अस्थि मज्जा में प्लीहा व लसिका ग्रन्थि तथा उदरस्थ बड़ी ग्रन्थियों की लसिकावाही जाल में लसिका संचित हो जाती है और उनमें लसिकाणुओं की संख्या भी बहुत अधिक पाई जाती है। जो लसिकावाही जाल बढ़ जाते हैं उनमें स्नेही पदार्थ ही संचित हुए-हुए देखे जाते हैं।

उक्त शरीर-रचना-सम्बन्धी ज्ञान तथा निदान का जो विषय प्रत्यक्षतया देखा-समझा जा चुका है, किसी रोगी को देखकर उसे वास्तव में क्या रोग है? इसको समझने

[शेष पृष्ठ १४२ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मस्तुलुंग की करामात

यदि कहीं हमारे आचार्यों को मस्तुलुंग की सही-सही करामात का ज्ञान हो जाता तो सम्भव था जिस रूप में आत्म सत्ता की उन्होंने स्वतन्त्र कल्पना खड़ी की थी, यह कभी न होती। शरीर में चलते हुये जीवन के कार्य-व्यापार की व्यवस्था का ठीक-ठीक ज्ञान न होने के कारण ही एक अदृश्य आत्म सत्ता का विचार सामने आया था। "इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःख ज्ञानात्मनो लिंगम्।" इच्छाएं कहां से उठती हैं? द्वेष या अप्रीति का निर्णय करना किस अंग का विषय है, प्रयत्न के लिये प्रेरणा कहाँ से उठती है? दुःख, सुख की अनुभूति का केन्द्र कहां पर है? ज्ञान कि सम्वेदन की धारा कहां से वहती है? इत्यादि चेतना के लक्षण हम किसी आत्म जैसी अदृश्य सत्ता के सिर न थोपते यदि मस्तुलुंग को जान लेते। मस्तुलुंग (मस्तिष्क) की करामात का तो पता यूनानी चिकित्सकों को अवश्य लग गया था किन्तु सही पता इन्हीं दो शताब्दियों के भीतर हुआ, फिर भी पूरी तरह नहीं। क्योंकि एक तो इसकी बनावट ऐसी नरम पिलपिली है जिसकी सूक्ष्मता से छान-बीन होनी कठिन है। दूसरे वह कपाल के भीतर ऐसे स्थान में सुरक्षित है जहां कपाल खोल कर उसकी स्थिति का अध्ययन करना अभी तक पूर्णतया सम्भव नहीं हो सका। इस समय तक तो जो प्रयोग हो रहे हैं अन्य प्राणियों के कपाल को खोलकर उनके मस्तिष्क के भिन्न-भिन्न भागों को काटकर शरीर के चलते कार्य-व्यापार में क्या व्याघात आता है? इसका अध्ययन करते चले आने से हो रहे हैं। उन्होंने कपाल खोल कर जब उसके भीतर के भाग को देखा तो उन्हें पता लगा कि यह दो भागों में विभक्त है। साथ ही इसके पीछे के हिस्से में एक और छोटा उपमस्तिष्क भी है। उपमस्तिष्क का नाम धम्मिलक भी है। प्रयोगकर्त्ताओं ने कबूतर का उपमस्तिष्क निकाल दिया तो उन्होंने देखा कि कबूतर खड़ा नहीं रह सकता, न वह चल फिर ही सकता है। अर्थात शरीर सन्तुलन बनाये रखना इस अंग का काम मालूम हुआ। किन्तु जिन कबूतरों, बिल्लियों का उपमस्तिष्क निकाल देने पर वे जीवित रहे कुछ समय बाद दिखाई दिया कि वे फिर धीरे-धीरे उठने और खड़ा होने लगे हैं। फिर कुछ समय बाद चलने में भी समर्थ हो गये। अर्थात शरीर को सन्तुलित रखकर उसे गति दे सके। किन्तु दिखाई दिया कि जो गतिशील हुए भी वह अधिक चलने-फिरने में समर्थ नहीं हुए। जल्दी ही उनमें थकावट आ जाती थी। इन प्रयोगों से वे अच्छी तरह जान सके कि पेशियों के जो कार्य-व्यापार हैं वह धम्मिलक से सम्बन्धित हैं। पेशियों को गति देना, उनके संकोच को बनाये रखना, गतिकाल में उन्हें दृढ़ बनाये रखना और कार्य-काल में सशक्त रखना, परस्पर पेशियों के गति में सहयोग व नियमितता बनाये रखना ताकि जीवन के कार्य सम्पादन में बाधा न हो, वे इसके सम्बन्ध की अनेक बातें जान सके।

मस्तिष्क के सम्बन्ध में भी इसी तरह अनेकों प्रयोग कर उन्होंने देखा कि इसके किसी विशिष्ट भाग को काटकर नष्ट कर दिया जाय तो अनेक शारीरिक-मानसिक कार्य व्यापारों में अन्तर आ जाता है। जंगली हिरन चित्तल के मस्तिष्क का कुछ भाग काटकर निकाल दिया गया और वह जब ठीक हो गये, उनमें इतना भारी परिवर्तन आगया कि जो मनुष्य को देखकर दूर भाग जाते थे अब उनके अन्दर से भय की भावना जाती रही। वह पालतू पशुवत् व्यवहार करने लगे। उनमें डर जरा भी नहीं रहा। एक बन्दर जिसके मस्तिष्क का कुछ भाग निकाल दिया गया था उसके अन्दर विवेक जाता रहा। वह गरम लोहे पर बार-म्बार हाथ रखता था, जब गरम लगता चट हटा लेता, किन्तु वह भूल जाता था कि इसे अभी छूने से जला था। वह उसको बारम्बार हाथ लगाता फिर भागता था। इसी तरह एक बिल्ली के मस्तिष्क का विशेष भाग काट कर निकाल दिया गया। उसे जब खाना दिया गया वह पहचान ही नहीं सकी कि मेरे आगे खाना रखा है। कुछ पक्षियों के इसी तरह मस्तिष्क के कुछ भाग जब निकाल दिये गये तो वह यह नहीं समझ सके कि जो चीज उन्हें खाने को दी गई है वह खाने के योग्य है, या नहीं। फल खाने वाला तोता मछली को मुंह में डालने लगा। कबूतर कील खाने की चेष्टा करने लगा। एक बिल्ली का विशेष मस्तिष्क भाग काट देने पर उसे जब छड़ी से मारा गया तो वह गुर्राई जरूर पर बदला लेने की भावना उसमें नहीं रही। इस तरह पशुओं, पक्षियों अनेक प्राणियों के मस्तिष्क के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिन्न-भिन्न भाग काट कर अनेक शारीरिक-मानसिक कार्य व्यापारों का किस भाग से क्या सम्बन्ध है ? इसको बहुत अच्छी तरह देखा व जाना जा सका ।

मस्तिष्क के पिछले तल में एक अण्डे की शक्ल की गांठ होती है। यह गांठ छोटे से छोटे और बड़े से बड़े प्रत्येक प्राणी में होती है। इसको आज्ञाग्रन्थि कहते हैं। इसके भिन्न-भिन्न भागों को काटकर उसका शरीर व मानसिक स्थिति पर क्या प्रभाव होता है ? इसको अच्छी तरह देखा व जाना गया। इस ग्रंथि के पिछले हिस्से में दो छोटी-छोटी गांठें सी दिखाई देती हैं। देखा गया इनमें से एक में से होकर दृष्टि नाडी सूत्र निकल कर पिछले हिस्से में जाते हैं। यदि इसे काटकर निकाल दिया जाय तो प्राणियों की देखने की शक्ति नष्ट हो जाती है। यदि इसके दूसरे हिस्से को काट दें तो त्वचा की स्पर्श शक्ति जाती रहती है। और गहराई तक मांस में सूई चुभावें तो उसका अनुभव पशु नहीं करते। इसी तरह इस आज्ञाग्रन्थि में दो अग्र भाग ग्रन्थि से बने होते हैं। इनमें से एक में से नाड़ी सूत्र नासिका की ओर पीछे से होकर जाते हैं, यदि इसे काटकर निकाल दिया जाय तो प्राणी को फिर गन्ध का ज्ञान नहीं होता। जो प्राणी गन्ध से अपनी खुराक मालूम कर लेते हैं उनके बगल में उनका भुक्त पदार्थ रखा रहे तो उसकी गन्ध उन्हें नहीं आती। इसी तरह इसका दूसरा अगला भाग काट कर निकाल दिया जाय तो शरीर की चेष्टाओं में अन्तर पड़ जाता है और प्राणी अच्छी तरह दौड़-भाग नहीं सकता। अर्थात् एच्छिक नियंत्रण जाता रहता है। यह भी देखा गया है कि यदि किसी प्राणी की यह आज्ञाग्रन्थि काट कर निकाल दी जाय तो बहुत कुछ ज्ञानेन्द्रियों के कार्य-व्यापार व सुख-दुःख का अनुभव जाता रहता है और क्रोध, दुःख, प्रसन्नता, खिन्नता आदि की अनुभूति नहीं रहती।

इस आज्ञाग्रन्थि से आगे का भाग मूल मस्तिष्क कहलाता है। यह भाग बिलकुल अखरोट की गिरी जैसी बनावट का होता है। किन्तु जितनी अधिक उसकी परिधा, सीता में उभार व गहराई मानव-प्राणी के मस्तिष्क में होती है इतनी अन्य प्राणियों में नहीं होती। यही नहीं, इस मस्तिष्क की बनावट दो स्तरों की देखी जाती है। अन्दर मज्जिक स्तर उसके ऊपर धूसर स्तर चढ़ा होता है। अन्य प्राणियों में तो मज्जिक भाग ही अधिक होता है उस पर धूसर का जो वल्कल होता है वह प्रायः भिन्न-भिन्न विकसित अविकसित प्राणियों में दो या तीन तहों में बंटा बहुत पतली झिल्ली सा पाया जाता है। इन स्तरों को बड़ी सावधानी से उन प्राणियों के मस्तिष्क से उतार कर उनके द्वारा शरीर क्रिया-व्यापार व मानसिक क्रिया-व्यापार का अच्छी तरह अध्ययन किया गया है। यदि प्राणियों के मस्तिष्क का यह पतला धूसर स्तर उतार दिया जाय तो संज्ञाओं का बोध अर्थात ज्ञानेन्द्रियों के कार्य-व्यापार नष्ट हो जाते हैं। और इसके साथ ही इसके नीचे का दूसरा स्तर हटा दिया जाय तो शरीर में होने वाली समस्त चेष्टाओं-गतियों का निरोध हो जाता है। और यदि इसके नीचे का तीसरा स्तर भिन्न कर दिया जाय तो शरीर के भीतर जितने भी अनैच्छिक व्यापार भोजन पचाना, हृदय की गति, फुफ्फुस की गति आदि सब बन्द हो जाते हैं अर्थात प्राणी मर जाता है।

पशुओं के मस्तिष्क के इस धूसरी स्तर के ऊपर मनुष्य के मस्तिष्क में दो स्तर और विकसित हुए पाए जाते हैं। अर्थात् मनुष्यों के मस्तिष्क के धूसर वर्ण वाले पांच स्तरों में बंटे होते हैं। इनमें से पहले स्तर द्वारा ही स्मृति बुद्धि, विचार, विवेक, मनन, चिन्तन आदि के व्यापार चलते देखे जाते हैं। जो व्यक्ति जितने अधिक बुद्धिमान, विचारशील होते हैं उनका यह विवेकी स्तर उतना ही अधिक मोटा होता है जिनकी मन्द-बुद्धि होती है उनका यह स्तर बहुत पतला झिल्ली सा होता है। अन्य वन्य प्राणियों में तो इस विवेकी स्तर का नितान्त अभाव होता है। इसके नीचे करणेन्द्र स्तर होता है। जहां मनोभावों के आदान-प्रदान उत्थान की समस्त क्रियाओं का सम्पादन होता है। इसी स्तर पर बैठा मन समस्त शरीर पर नियन्त्रण रखता है व शारीरिक व मानसिक क्षेत्र के समस्त कार्यों पर अंकुश बनाये रखता है।

प्रयोग कर्त्ताओं ने अनेक अवसरों पर जब किसी रुग्ण मनुष्य के मस्तिष्क की जांच का अवसर आया उन्होंने विवेक स्तर और करणेन्द्र स्तरों के सम्बन्ध में जो परिणाम प्राप्त किये वह निम्न हैं। जिन बालकों में उक्त दोनों स्तरों का विकास पूर्णतया नहीं होता वे बालक निर्बुद्धि होते हैं। यह भी देखा गया है कि कुछ रोगों में वृद्धावस्था के आने पर जिन व्यक्तियों की स्मरणशक्ति चली जाती है, मरने पर उनके मस्तिष्क का निरीक्षण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने से पता लगा है कि इनके उक्त स्तर पतले हो जाते हैं अर्थात् उन स्तरों की कोषाएं मर जाती हैं। इसी से वह स्तर क्षीण होकर जब पतले हो जाते हैं तो स्मरण-शक्ति, विचार, विवेक सब घट जाते हैं। तभी तो कहा है कि वृद्धों की प्रकृति बिल्कुल बालकों जैसी हो जाती है। अर्थात् उनकी बुद्धि-विवेक में जब ह्रास होता है, तो वे बालकों जैसी स्थिति में आ जाते हैं।

जिन व्यक्तियों को उन्माद हो जाता है उनके मस्तिष्क की परीक्षा लेकर जाना गया है कि उनके उक्त स्तरों में ही विकार या क्षीणता आती है, तभी उनका विचार-विवेक जाता रहता है। जिन व्यक्तियों के उक्त स्तर निकाल दिये गये हैं उनके समस्त ज्ञानेन्द्रियों के व्यापार चतुष्ट अन्तःकरण के कार्य-व्यापार सब नष्ट हो गये हैं।

इन प्रयोगों के आधार पर यह निश्चित रूप से जान लिया गया है कि चेतना के या आत्मा के जो लक्षण शास्त्रकारों ने दिये हैं उन लक्षणों का प्रादुर्भाव-तिरोभाव मस्तिष्क के भिन्न-भिन्न स्तरों से व विभागों से सम्बन्धित है। जिसके विकास से चेतना का विकास और जिसके ह्रास से चेतना के समस्त लक्षणों का ह्रास हो जाता है।

अनुसन्धान के लिए नया मार्ग खुला—इन प्रयोगों के लगातार होते रहने पर वैज्ञानिकों को मस्तिष्क सम्बन्धी जटिलताओं को समझने के साधन मिलते चले गये। इस समय अनुसन्धानकर्ता इस स्थिति में पहुँच गये हैं कि मनुष्य के कपाल को खोलकर मस्तिष्क को नंगा करके उसके एक-एक स्तर के एक-एक भाग का गम्भीरता-पूर्वक अध्ययन कर सकते हैं। यह व्यवस्था वाशिंगटन के एक उपनगर मेरिलैण्ड के बेथेण्डा नामक स्थान पर विद्यमान यूनाइटेड स्टेट्स नेशनल इन्सिटट्यूट आफ हैल्थ नामक संस्था में हुई है। इस संस्था में २० के लगभग अनुसन्धान कर्त्ता मस्तिष्क के एक-एक भाग का बड़ी गम्भीरता से अध्ययन कर रहे हैं। उनके अध्ययन के परिणाम जो सामने आये हैं वे बड़े महत्व के हैं। हम पाठकों को इसकी कुछ जानकारी देने के अर्थ ही यहां कुछ पंक्तियां दे रहे हैं।

उन्होंने मस्तिष्क के स्तरों की जांच कर यह मालूम कर लिया है कि मस्तिष्क का जो मज्जिक स्तर है वह तो चूहा, सांप से लेकर हाथी, घोड़ा तक के प्राणियों में एक जैसा है। केवल अन्तर है तो उनके शरीराकार के लघु-दीर्घ रचना के अनुसार छोटा-बड़ा है। किन्तु छोटे-बड़े प्राणी में जीवन के लिये जो समस्त प्रक्रियाएं उसके द्वारा सम्पादित होती हैं वह एक जैसी ही हैं। अर्थात् मस्तिष्क की वास्तविक गठन की दृष्टि से उसमें कोई अन्तर नहीं है। इसको तो वह मूल मस्तिष्क का नाम देते हैं। इसके ऊपर जो धूसर वर्ण का वल्कल (स्तर) पाया जाता है इस बल्कल की रचना अवश्य भिन्न-भिन्न कक्षा व श्रेणी के प्राणियों में विभिन्नता से मिलती है। यह तीन स्तरों में से कुछ में एक कुछ में दो तथा कुछ में तीन स्तर तथा गौरीला, चिपेन्जी जैसों में चौथा स्तर और मनुष्यों में पांचवा स्तर मिलता है। इन्हीं स्तरों के कारण मस्तिष्क में घाई, सीता की गहराई आदि बढ़ी हैं। यह स्तर वास्तव में मूल मस्तिष्क से भिन्न विकसित हुआ है। और इसे वह दूसरे मस्तिष्क का नाम देते हैं। जिन प्राणियों में जितना अधिक बौद्धिक विकास पाया जाता है अनुसन्धान कर्ताओं का कथन है कि उन प्राणियों में यही धूसर स्तरों की भिन्न-भिन्न तहें उसके अनुरूप ही अधिक विकसित हुई हैं।

मनुष्य और पशुओं में अन्तर—

आहार निद्रा भय मैथुनं व सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
ज्ञानोहितेषा मधिको विशेषः ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः।

भारतीय विद्वानों ने जो सामान्यतः यह निरूपण किया था कि आहार, निद्रा, भय, मैथुन प्रवृति यह पशुओं और मनुष्यों में एक सी हैं। मनुष्यों में कोई बात इन प्राणियों से अधिक है तो वह एकमात्र ज्ञान, विवेक, विचारशीलता ही है। यह अन्तर क्यों है? क्योंकि मनुष्य मनुष्य है, पशु पशु। यह अन्तर उसी मस्तुलुंग की करामात है। अनुसन्धानकर्ता बतलाते हैं कि आहार, निद्रा, भय, मैथुन जैसी जन्मजात या स्वाभाविक प्रवृत्तियों का सम्बन्ध तो मज्जिकस्तर से है, इसीलिये यह क्या पशु क्या मनुष्य सबों में आत्मरक्षा तथा वंशरक्षा का साधन उक्त मज्जिक स्तर से एक सा सबों को मिला हुआ है। किन्तु करणेन्द्र व विवेक स्तर का विकास भिन्न-भिन्न श्रेणी व कक्षा तथा वंश के प्राणियों में भिन्न-भिन्न परिमाण में हुआ है। सर्वाधिक इसका विकास किसी में हुआ है तो वह एकमात्र मानव प्राणी ही ऐसा प्राणी है जिसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करणेन्द्र व विवेकी स्तर इतने अधिक विकसित हो चुके हैं जिसके कारण ही इसका ज्ञान, विवेक बढ़कर विज्ञान में परिणत हो चुका है। इसी से यह पशुजगत् से बहुत दूर हट गया है।

दो मस्तिष्क की कल्पना—इन अनुसन्धान-कर्त्ताओं ने अपने प्रयोगों द्वारा अच्छी तरह देखा है कि इस समय तो मनुष्यों में यह विवेकी स्तर इतना अधिकाररूढ़ हो चुका है कि प्रत्येक जीवन सम्बन्धी शरीर व मानसिक व्यवस्था में इसी स्तर का पूर्ण नियन्त्रण है। इसीलिये उन्होंने इसके कार्य-व्यापार की उपमा अश्व और उस पर सवार रहने वाले से दी है। डाक्टर पौल और डा० मेक-लीन का कथन है कि शरीर के कार्य-व्यापार की दृष्टि से इस मस्तिष्क के दोनों स्तरों में घोड़े और सवार जैसा सम्बन्ध दिखाई देता है, बिल्कुल यही सम्बन्ध मज्जिक स्तर और विवेकी स्तर में पाया जाता है।

वह कहते हैं कई बार कारण पाकर जिस तरह घोड़ा डर सकता, भड़क उठता है और सवार को लेकर भाग भी खड़ा होता है, कभी उसे पटक भी दे सकता है। किंतु ऐसी स्थिति आने पर विवेकी स्तर चट सावधान होकर स्थिति की गम्भीरता को समझ चतुर सवार की तरह डरे, भड़के घोड़े को साध लेता है। ठीक इसी तरह यह विवेकी स्तर अधिक बार पाशविक प्रवृत्तियों को दबा कर उस मूल मस्तिष्क की क्रियाओं पर पूर्ण शासन करता रहता है। वह दृष्टान्त देते हैं—मान लीजिये एक व्यक्ति किसी कारण से उत्तेजित हो जाता है। उत्तेजना के समय अन्तः ग्रन्थि स्राव की मात्रा बढ़ जाती है। अन्तःस्थ ओज का प्रभाव हृदय पर, मांसपेशियों पर पड़ता है जिसके कारण हृदय की गति बढ़ जाती है, हाथ-पैरों की पेशियां लड़ाई-झगड़े के लिये बारम्बार उत्तेजित होती हैं। यह व्यापार मज्जिक स्तर की प्रेरणा से होने लगते हैं किन्तु विवेकी स्तर इस उत्तेजना के कारण पर गम्भीरता से चिन्तन करता है उसके परिणाम को देखता समझता है। इसी-लिये वह चट हृदय व मांसपेशियों को शान्त करने के लिये अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की उत्तेजना को रोकने के लिये हृदय व मांसपेशियों की गति को शान्त करने के लिये मज्जिक स्तर की प्रेरणाओं को बन्द करता है।

इस तरह अमेरिकी नेशनल इन्स्टिट्यूट आफ हैल्थ के अनु-सन्धानकर्त्ता मानसिक क्रियाओं की अज्ञात बातों के सम्बन्ध में बड़ी सूक्ष्मता से जांच कर रहे हे। इस समय उनके पास काफी साधन हैं इसीलिये वह मस्तिष्क के प्रत्येक भाग की जब तक पूरी-पूरी जांच नहीं कर लेते उनके परीक्षण जारी रहेंगे। जहां पर अपार धन है, जहां सब तरह की सुविधाएं व साधन उपलब्ध हैं वह मस्तुलुंग की करामात को न पावेंगे तो कौन पावेगा? ज्ञान को विज्ञान के रूप में लाने का यही एकमात्र मार्ग है।

यदि मस्तिष्क की पूरी करामात का ज्ञान हो गया तो आत्मसत्ता काफ़ूर बन कर उड़ जायगी यह निश्चय है।

[शेष पृष्ठ १३८ का]

के लिये किसी चिकित्सक को नव्य ज्ञान से रोग की स्थिति को समझने की क्या जरूरत नहीं? क्या हम उक्त विवे-चन को पढ़कर अपने शरीर-रचना विषय व निदान विषय को पूर्ण कह सकते हैं? आयुर्वेद को विद्यमान स्थिति में पूर्ण बताना अपने को और वैद्य-समाज को धोका देना है। यदि हम इस समय के विवर्धित ज्ञान-विज्ञान को लेकर छात्रों को विद्यमान स्थिति के योग्य नहीं बनाते तो वैद्य समाज को याद रखना चाहिये कि जनसमाज इतना मूर्ख नहीं है कि निदान के लिये डाक्टर के पास जाकर चिकि-त्सा के लिये वैद्य के पास आवेगा। जिस चिकित्सा-पद्धति का चिकित्सक रोगी का सन्तोष करेगा निश्चय ही रोगी उसे तब तक नहीं छोड़ेगा जब तक जरा भी लाभ मिलता रहेगा। यदि डाक्टर से छुटे किसी रोगी को वैद्य अपनी चिकित्सा से ठीक कर देता है तो इसमें उसके शरीर-रचना ज्ञान व निदान का महत्व नहीं है। आखिरकार दो सहस्र वर्ष की आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति पुरानी होने से औषध सम्बन्ध में जो अनुभव हमें अपने पूर्व पुरुषों से प्राप्त हुए हैं वह हमारी लाज रखे हुए हैं, वरना इस समय के विव-र्धित ज्ञान-विज्ञान के सामने हमारा ज्ञान न होने के बराबर है। इसलिये आयुर्वेदोन्नति की हित कामना रखने वालों को इससे लाभ उठाना चाहिये। वरना 'समय चूकि पुनि का पछताने'। बाबा तुलसी की इस नसीहत को कभी भूलना नहीं चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजीर्ण-ज्वर या भुक्त-विष ज्वर क्या है ?

आयुर्वेद ग्रन्थों में ज्वर के अनेक भेद किये हैं। उन ज्वरों में से मात्रा से अधिक भोजन खा जाने पर जो ज्वर हो जाता है जिसे अलोपैथी वाले फूड पाइजन ज्वर कहते हैं, उसे आयुर्वेदज्ञ किस नाम से जानते थे ? आज हम इस पर कुछ विचार करेंगे।

हमारे देखने में आया कि कुछ आदमी शादियों में गये और "परान्नं दुर्लभं लोके" समझ कर खूब दबा-दबा कर खाया और अजीर्ण होकर ज्वर, दस्त, सिरदर्द वगैरह की बीमारी खरीद ली। खा जाना आसान है, उसका पचाना आसान नहीं। वह तो शरीर-व्यवस्था के आधीन बात है। पेट के अन्दर कोई दावानल तो रहता नहीं कि जितनी उसे आहुति दी जाय सबों को भस्म कर डालेगा। पचन-व्यवस्था तो कोष्ठाग्नि से नहीं चलती, ऐसा जो समझते हैं वह बेसमझी करते हैं। खाद्य की पचन-व्यवस्था कुछ रसों के मिश्रण से चलती है। रसों का निर्माण कुछ एक ग्रन्थियां करती हैं। यह रस विशेष रासायनिक रचना के होते हैं। क्योंकि भोजनीय द्रव्यों के जो रूप होते हैं वे एक तरह के नहीं होते, दूसरे वे शरीर की रचना से भिन्न होते हैं। शरीर उन्हें ग्राह्य बनाना चाहता है, इसलिये उन भोजनीय द्रव्यों के रासायनिक रूपों को बदलना चाहता है, उन ग्रंथियों के रसों में यह विशेषता होती है कि जब वे भुक्त द्रव्यों में जाकर मिलें तो उनके मिलने पर शरीर के स्थिर ताप में वे घुलने लगते हैं और घुलकर अपना पहला रासायनिक रूप त्यागने लगते हैं और नये रूप में आने लगते हैं। यही परिवर्तन पचन-व्यवस्था कहाती है। उन रसों में जो पचाने वाली शक्ति होती है उसे विकर (Enzymes) कहते हैं। इस विकर की अत्यन्त छोटी-छोटी कणिकाएं होती हैं। यह कणिकायें अपने से सैकड़ों हजारों गुणा भुक्त द्रव्य की कणिकाओं के रासायनिक रूपों को बदलने में समर्थ होती हैं किन्तु इनकी परिवर्तनकारी शक्ति कुछ देर के बाद समाप्त हो जाती है। मान लीजिये हम जो भोजन नित्य खाते हैं उसमें शार्करी श्रेणी के द्रव्यों की मात्रा २० तोला है। शार्करी श्रेणी के द्रव्यों में माड़ी, चीनी, निशास्ता आदि अनेक शार्करी वस्तुएं होती हैं, जिन्हें लालारस का विकर द्राक्ष शर्करा में बदलवा चाहता है। मान लीजिये २० तोला शर्कराओं को बदलने के लिये १ माशा विकर की जरूरत है, क्योंकि हम अन्दाजन नित्य एक बार में इतने ही शर्करा श्रेणी के द्रव्य खाते हैं। इसीलिये इसे पचाने में १ माशा विकर जब खर्च होता है, तो उस ग्रन्थि को उतना ही रस बनाने का अभ्यास हो जाता है। इस तरह हमारे शरीर के अन्दर बहुत सी अन्तःरस स्रावी ग्रन्थियां हैं वह सभी भिन्न-भिन्न प्रकार के विकर और ओज (Hormones) बनाया करती हैं। यह सब विकर और ओज विशेष-विशेष रासायनिक रूप के द्रव्य होते हैं जिनका शरीर में भिन्न-भिन्न प्रकार का कार्य-व्यापार होता है। चूंकि यह विकर विशेष रासायनिक रूप के ही उन ग्रन्थियों द्वारा बनाये जाते हैं। उनके निर्माण में समय लगना भी आवश्यक है, इसीलिये जो ऐसी चीजें किसी सजीव अंग के द्वारा बनाई जाती हैं, वह एक निश्चित मात्रा में ही बना करती हैं। मनुष्य जिस तरह एक मर्यादा के भीतर ही काम करने की शक्ति रखता है, इसी तरह अंग प्रत्यंग भी एक मर्यादा के भीतर काम करने की शक्ति रखते हैं। जब मर्यादा के भीतर कोई वस्तु बनती है तो उसका काम भी मर्यादा के भीतर ही होगा।

अब, इस व्यवस्था के प्रकाश में देखना है कि एक व्यक्ति नित्य प्रति अपने घर पर तीन पाव मिश्रित भोजन खाता है। उससे उसकी तृप्ति हो जाती है। उस तीन पाव भोजन में २० तो शार्करी पदार्थ, १० तोला अस्रजनीय और ५ तोला स्नेही द्रव्य रहते हैं। बाकी उसमें जल का भाग होता है। इस २० तोला शार्करी पदार्थों की शर्कराओं को द्राक्ष शर्करा में बदलने के लिये १ माशा विकर की जरूरत होती है। इतनी मात्रा २० तोले लार में मिलकर जितनी देर भोजन करने में लगते हैं प्रति ग्रास के साथ वह लाला के तरल में मिलकर भुक्त द्रव्यों में मिलता चला जाता है। भोजन १५-२० मिनट में खाया जाता है। इतनी देर तक ही लाला ग्रन्थियों में जो लाला रस संचित रहता है, वह निकल जाता है, अब और लाला रस तथा विकर का निर्माण लाला ग्रन्थि की कोषाएं क्षणों में तो कर नहीं लेतीं, उसके निर्माण में कई घंटे का समय चाहिये।

गौ और भैंसें जो दूध देती हैं उनमें दूध भी दुग्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्माता ग्रन्थियों में ही बना करता है और स्तनों की छोटी-छोटी थैलियों में भरता रहता है। एक गौ प्रभात को पाँच सेर दूध देती है और शाम को भी इतना ही। तो कोई यह चाहे कि दोपहर को भी इतना ही दूध वह दे, तो कभी नहीं दे सकती। दोपहर को दुहा जाय तो ढाई सेर ही दूध देगी, क्योंकि जब १२ घन्टे में ५ सेर दूध देगी तो ६ घन्टे में उन दुग्ध ग्रन्थियों का उसी रफ्तार से काम करने के कारण आधा ही बन पावेगा।

ठीक यही बात शरीर की अन्य अन्तःस्रावी ग्रंथियों के कार्य-व्यापार पर घटती है। कोई भी जीवित प्राणी का अंग जितना काम नित्य कर सकता है वह उतना ही करेगा। अभ्यास से इसमें वृद्धि और कार्य की कमी से ह्रास भी होता है, जो एक क्रम से ही घटता बढ़ता है। ऐसा कभी नहीं होगा कि लाला ग्रंथि १२ घन्टे में २० तोला लार और १ माशा विकर जो निर्माण करती है एकाएक उसकी मात्रा बढ़ जाय। यदि हम आप किसी के घर निमन्त्रण पर पहुँच गये और वहां अच्छे-अच्छे मिष्टान्न व पकवान सामने आये देखकर खूब खाते चले गये और २० तोला शार्करी द्रव्यों के स्थान पर ४० तोला खा गये और १० तोला अस्रजनीय द्रव्यों के स्थान पर २०-३० तोला मांसल भोजन में अस्रजनीय द्रव्य खा गये, तो यह खाया हुआ भोजन उस सीमित मात्रा में निकलने वाले लाला रस विकर व ओझरी विकर से कभी नहीं पचेगा। न इस ४० तोला शार्करी द्रव्यों को वह विकर द्राक्ष शर्करा में बदलेगा। यदि मांड़ी, निशास्ता जैसे द्रव्य ज्यादा खाये गये हों और यह बहुशर्करोजों (माड़ी स्टार्च आदि) से एक द्विशर्करोजों में पहले बदल कर तब द्राक्ष शर्करा में उन्हें जाना हो तो ऐसी दशा में यदि इसको बदलने वाला विकर उतना लाला ग्रन्थि से स्रव कर उक्त भुक्त द्रव्य में न मिले तो वह माड़ी या निशास्ते वाली खाई गई चीजें जैसे हलवा, मैदे की पूरियाँ आदि इनका सितसार उदर की गरमाई से घुलकर फिर लेई की शक्ल में बदल जाता है। जब माड़ी या निशास्ते की खाई चीजें अर्थात् बहुशर्करोज एक या द्वि शर्करोज में न बदलें तो वह उसी तरह लेई बनती है जैसे दफ्तरी मैदा में पानी मिला कर उसे घोलकर जब अग्नि पर पकाता है तो वह लेई बन जाती है। यहां भी बिना परिवर्तित हुये सितसार से लेई बन जाती है। इसके चिपकने पर आमाशय की गति में बाधा आ जाती है, तभी तो पेट में दर्द होता है। जब पेट दर्द का कारण पूछा जाता है तो बीमार कहता है—वैद्य जी खाना स्वाददार था, ज्यादा खा गया हूँ, कोई चटपटा चूरन दीजिये। वैद्य जी उसे चूरन देते हैं। जैसे-जैसे चूरन वह चाटता है मुंह में से लार और उस लार में मिला विकर जब पेट में पहुँचता है, यदि वह विकर शक्तिशाली हो तो उस लेई में मिलकर उसे शर्करा के रूप में बदलने लगता है। शर्कराओं में चिपकने का गुण नहीं होता, इसलिये तो वह आमाशय से छुटते ही जल में घुलती लेही बनती, ग्रहणी में पहुंच जाती है। यदि उदर की दीवारों में लगी हुई सारी लेई छुट जाय तो दर्द उसी समय बन्द हो जाता है. और वैद्य के चूरन की तारीफ होती है। यदि दर्द बन्द न हो तो दूसरी तीसरी दवा खाता है। इस लेई को वैद्य जी का चूरन नहीं पचाता, प्रत्युत लार का विकर शर्करा में बदल देता है। चूरन तो लार को स्रवाने में सहायक होता है। क्योंकि खट्टे, नमकीन, मिर्च मसाले यह सब अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के उत्तेजक हैं। इनसे उत्तेजना पाकर ग्रन्थि रसों में से स्राव बह पड़ते हैं। यह तो सभी का अनुभव है कि खटाई या चटनी देखकर ही लार टपकने लग पड़ती है।

आंखों ने चटनी देखी उसके स्वरूप और स्वाद का अनुभव मस्तिष्क को हुआ। मस्तिष्क ने उस रसस्रावी ग्रन्थि को सूचना दी कि चटनी सामने है उसने उस चटनी की तीक्ष्णता को कम करने के लिये पहले से ही स्रव कर इस बात को प्रमाणित किया कि इसे मुंह में आने दो, मैं इसे पतला करके आगे जाने दूंगी। तीक्ष्ण चीजें अन्दर जाकर बुरा प्रभाव न डालें इससे बचाव के लिए ही यह सब प्रकृति प्रदत्त व्यवस्था है। इस प्रकृति प्रदत्त व्यवस्था में जब हम सीमोल्लंघन कर व्याघात डाल देते हैं तो उस समय शरीर के अंग उपांग उस सीमा से अधिक काम को करने में असमर्थ हो जाते हैं।

हमने भोजन मात्रा से अधिक खा लिया, वह सदा के विद्यमान पाचक रसों की पचाने वाली विकर शक्ति से अधिक था। इसीलिए ऐसा भुक्त द्रव्य जब तक न पचे वह पहले तो आमाशय से ही आगे नहीं जाता। वह समय से अधिक रुकता है। भुक्त द्रव्य आमाशय में अधिक देर पड़ा रहे तो वह उसी रूप में कभी बना नहीं रह सकता। क्योंकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदरदरी तो भुक्त द्रव्य को बदलने और उसे शरीर के योग्य बनाने की रसायनशाला है। रसायनशाला के उस पात्र में डाला हुआ पदार्थ जिस पर रासायनिक क्रिया ने होना है, यदि परिवर्तक पदार्थ उचित मात्रा में आकर मिलें तो उस बदलने वाले पदार्थ में इच्छित व उचित परिवर्तन होंगे, यदि उस परिवर्तक पदार्थ की मात्रा न्यूनाधिक हो तो कभी भी इच्छित परिवर्तन नहीं होंगे। वह पदार्थ एक रूप से दूसरे रूप में बदलेगा अवश्य पर इच्छित नहीं होगा।

अधिक मात्रा में खाये भोजन में जब उचित विकर उसमें नहीं मिलते तो भुक्त द्रव्य का जो रूप बदलता है वह शरीर के लिए उपयोगी नहीं होता। प्रत्युत वह हानिकर होता है। जो शरीर की व्यवस्था को बिगाड़ने वाला हो जिसके अन्न प्रणाली में अधिक देर बने रहने पर शरीर को अधिक हानि पहुंचने की सम्भावना हो ऐसे द्रव्यों को शरीर अपने भीतर रुकने नहीं देता। उसे वह शीघ्र निकालने का प्रयत्न करता है। यदि वह भुक्त द्रव्य अभी आमाशय से आगे नहीं बढ़ा तो आमाशय उसे वमन द्वारा बाहर करने का प्रयत्न करता है या ग्रहणी की ओर धकेल देता है। यदि वह अपक्व भोजन आंतों में पहुंच गया हो तो वह शरीर में प्रवेश के योग्य नहीं होता, इसीलिए आंतों की गति बढ़ जाती है और वह उसे मल मार्ग से निकालने का प्रयत्न करती हैं। दस्त या रेचन इसी बात के प्रमाण हैं कि भुक्त द्रव्य में उचित परिवर्तन नहीं हो पाया इसी से वह ग्राह्य नहीं था, तभी बाहर निकालने का प्रयत्न हुआ।

ऐसे समय के वमन या रेचन में निकले अपक्व पदार्थों का रसायन शाला में विश्लेषण हुआ है, एक-दो बार नहीं सैकड़ों बार। उस विश्लेषण के परिणाम बताते हैं कि इस अपक्व द्रव्य में ऐसे रासायनिक सन्धान उठ खड़े होते हैं जो विषरूप होते हैं अर्थात् वह पदार्थ रक्त परिभ्रमण में पहुँच जांय तो सबसे बुरा प्रभाव शरीर के ताप नियंत्रक केन्द्र पर पड़ता है, स्नायु मण्डल पर पड़ता है, और अधिक बढ़े तो लोहित कोषाओं तथा अन्य अंगों उपांगों पर पड़ता है।

परीक्षाओं से ज्ञात हुआ है कि ऐसे विकृत हुए उदरस्थ पदार्थों को अन्न प्रणाली बाहर निकालने का भरसक प्रयत्न करती है फिर भी उसका कुछ न कुछ अंश जब बृहदान्त्र के आचूषकों द्वारा चूसा जाता है और वह रक्त में मिल जाते हैं तो उसी के प्रभाव से ताप नियन्त्रक केन्द्र की व्यवस्था बिगड़ जाती है। इसी से ज्वर हो जाता है। यदि उस उदरस्थ विकृत पदार्थ में सन्धान के समय वायुओं की भी उत्पत्ति हो रही हो तो यह वायवीय द्रव्य भी रक्त में प्रवेश कर रक्त परिभ्रमण के साथ सिर की ओर जब जाते हैं तो वहां से वापस नहीं होते। वायवीय पदार्थों की गति सदा ऊर्ध्व की ओर रहती है इनका बढ़ना ही शिरःशूल, सर्वाङ्ग पीड़ा आदि को उत्पन्न करता है।

एक अजीर्ण ही वमन, रेचन, शिरःशूल, सर्वाङ्ग पीड़ा और ज्वर में प्रधान कारण है। इसको हमारे आचार्यों ने अच्छी तरह समझा था। तभी तो ज्वर के कारणों में इसे मुख्य माना था, यथा—

दोषो जीर्णज्वरं कुर्यात् क्षिप्त्वाग्नि कोष्ठतत्त्वचाः।
सो अष्टधातेः प्रथक् द्वन्द्वैः सर्वे रागान्तुकयोऽपिच।

ज्वर का कारण अजीर्ण है। अजीर्ण होने पर कोठे की अग्नि त्वचा की ओर निकाल दी जाती है, इसी से ज्वर हो जाता है। वह आठ प्रकार का है। यह शास्त्रीय प्रमाण उपरोक्त व्याख्या की ओर संकेत करता है। हमारा यह अनुभव है कि प्रत्येक व्यक्ति में अजीर्ण की स्थिति एक जैसी नहीं होती। किसी में अजीर्ण की स्थिति उत्पन्न होते ही यदि आमाशय ने सारे भुक्त द्रव्य को बाहर निकाल दिया तो अधिक उपद्रव उत्पन्न नहीं होते। एक आध दिन में ही मनुष्य प्रकृतिस्थ हो जाता है। जिसके भुक्त द्रव्य अजीर्ण दोष से दूषित हो अन्न प्रणाली में पहुँच जाते हैं, यदि वह विकृत द्रव्य मल मार्ग से शीघ्र निकाल दिये जांय तो भी उपद्रव कम ही उत्पन्न होते हैं। और दो तीन दिन में तबियत ठीक हो जाती है और कहीं अजीर्ण जन्य भुक्त द्रव्य अधिक समय तक अन्न प्रणाली में बने रहें तो उनमें कई प्रकार के सन्धान उठ खड़े होते हैं। आप देखते हैं जहां कूड़ा-कर्कट फेंका जाता है वहां वह दो चार घन्टे में ही सड़ने लगता है, और बदबू छोड़ देता है। हमारी अन्न प्रणाली में अनेकों प्रकार के जीवाणु, कीटाणु सदा ही बने रहते हैं। यदि अपक्व द्रव्य उन तक पहुँच जाय तो उन कीटाणुओं का कार्य-व्यापार बड़े वेग से आरम्भ हो जाता है और उस अपक्व द्रव्य में बड़े वेग से सन्धान उठ खड़ा होता है। सन्धान का अर्थ है उस अपक्व द्रव्य के अनेक अयोग्य, अग्राह्य ऐसे विषाक्त पदार्थों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पादन है जो शरीर के भीतर पहुँचकर उस पर बुरा प्रभाव डालते हैं। इसी से ज्वर, पीड़ा, स्तब्धता क्षुधानाश होकर शरीर की चलती व्यवस्था भंग होती है।

प्राचीन काल में इस बात को देखने-जांचने के साधन नहीं थे कि अजीर्ण जन्य अपक्व द्रव्य जब उदरदरी में अधिक काल तक बने रह कर सड़ते हैं तो उनके सड़ने से कितने प्रकार के विषाक्त रूप वाले नये द्रव्य उत्पन्न हो जाते हैं और उनमें कितने तरल रूप के होते हैं, कितने वायवीय रूप के। साधनों के अभाव में ही हमने वायवीय रूप के द्रव्य को वायु का प्रकोप और तरलीय रूप के द्रव्यों को पित्त का प्रकोप और श्लिषीय रूप के द्रव्यों को देखकर कफ का प्रकोप मान लिया था। इन्हीं दोषों के आधार पर जो लक्षण शरीर में दिखाई दिये उन्हें उन दोषों के कुपित होने का कारण समझा था।

इस बात को तो उन्होंने माना कि खाद्य द्रव्य के पचन में व्याघात आ जाने के कारण भोजन जब नहीं पचता अजीर्ण की स्थिति उत्पन्न हो जाती है तभी कोष्ठ की अग्नि अपने स्थान से निकाल दी जाती है। वही ज्वर के रूप में प्रकट होती है। पर ऐसा तो शरीर के भीतर होता नहीं। न तो ग्रहणी में कहीं अग्नि रहती है, न अजीर्ण होने पर वह वहां से हटा दी जाती है। जब उदर दरी में अग्नि की विद्यमानता का कोई प्रमाण नहीं मिलता तो प्राचीन व्याख्या निराधार हो जाती है। इसके साथ ही जो ज्वर के आठ भेद बताये गये हैं, वह ज्वर-काल में जो लक्षण प्रकट होते हैं उन लक्षणों को देख कर बनाये गये हैं।

शरीर में पीड़ा, स्तब्धता, अंगड़ाई वगैरह लक्षणों को देखकर वात का अधिक कोप माना गया था। मुंह का कड़ुवा होना, तृषा, दाह आदि लक्षणों को देखकर पित्त का कोप समझा गया था। वास्तव में यह सब लक्षण उक्त दोषों के कुपित होने के कारण नहीं थे, प्रत्युत अन्नाशय, मलाशय में पड़े उस मल में जो सड़ान्ध उत्पन्न हो रही थी उसके जो सूक्ष्म विषाक्त अंश वहां से चलकर शरीर के भीतर पहुंच रहे थे, वे अयोग्य-अग्राह्य अनेक विषाक्त रूप वाले उन पदार्थों के प्रभाव से ही भिन्न २ प्रकार के लक्षण उत्पन्न हो रहे थे।

प्रत्येक व्यक्ति में अजीर्ण जन्य अनेक विकारों का स्वरूप एक जैसा कभी नहीं होता, न हो सकता है। क्योंकि हर एक के खान-पान में न्यूनाधिकता हो सकती है। फिर अजीर्ण की दशा किसी में तत्काल किसी में देर से उत्पन्न हो सकती है और वह किसी में कुछ घन्टे किसी में कई दिन रह सकती है। इससे भिन्न प्रत्येक व्यक्ति के मलाशय में व अन्त्राशय में जो कीटाणु निवास करते हैं वह भी एक ही प्रकार के नहीं होते। और भिन्न-भिन्न कीटाणु भिन्न-भिन्न प्रकार के सन्धान द्वारा भिन्न २ प्रकार के विषाक्त द्रव्य उत्पन्न करते हैं। जब विषाक्त द्रव्य भिन्न २ प्रकार के अर्थात भिन्न २ रासायनिक रूप के हों तो उन सबों का शरीर पर प्रभाव एक दूसरे से भिन्न ही होगा। कोई दाहकारी होगा तो कोई शरीर की कोषाओं की क्रियाओं को रोकने वाला होगा। जैसा जिसका प्रभाव होगा उससे वैसे ही शरीर में लक्षण उत्पन्न होंगे। इन लक्षणों को देखकर हमने जो त्रिदोष की धारणा बना ली थी वह किसी प्रयोग के आधार पर नहीं थी। वह तो अनुमान जन्य कल्पना थी।

जब हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि एक व्यक्ति ने मात्रा से अधिक खाना खाया और वह बीमार पड़ गया। उसके अधिक खाने से पेट में जो भुक्त द्रव्य पड़े रहे या उसमें जो परिवर्तन आये इसे तो हमें प्रत्यक्ष रूप में देखना चाहिये था। और हमें यह समझना चाहिये था कि खाद्य द्रव्यों के ठीक पचने पर उनमें जो परिवर्तन आता है उनके कितने रूप व प्रकार होते हैं और ठीक-ठीक भोजन न पचे तो उस स्थिति में खाद्य द्रव्यों के रूप में जो परिवर्तन आते हैं उनके कितने रूप व प्रकार बनते हैं और उनमें से कितने अन्त्राशय मार्ग से शोषित होकर रक्त में प्रवेश कर सकते हैं, कितने नहीं। जिनका प्रवेश शरीर के भीतर हो जाता है उन विषाक्त द्रव्यों से शरीर में कैसे लक्षण उत्पन्न होते हैं यह सब प्रत्यक्ष रूप में देखने-समझने की बातें थीं। किन्तु इन सब बातों को हम प्रयोगशाला में ही देख व समझ सकते हैं। जिन बातों को देखा व समझा जा सकता हो उसको केवल दो सहस्र वर्ष पूर्व की गई कल्पना के आधार पर मानना और उस पर चलना बुद्धिमानी नहीं है।

इस समय जिसे फूड पाइजन्स कहा जाता है, यही

[शेष पृष्ठ १४८ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिक जगत् उन्नति की ओर

अदृश्य वस्तुओं को तोलने वाली तुला

पाठक उक्त शीर्षक पढ़ कर आश्चर्य कर सकते हैं। जो वस्तु दृश्यमान नहीं अर्थात् इतनी सूक्ष्म है जिसे नेत्र नहीं देख सकते यथा—"जालान्तर्गते भानु सूक्ष्मं यद्दृश्यतेरजः। तस्य षष्टि तमोभागः परमाणु स उच्यते"। जिस परमाणु की कल्पना आयुर्वेदज्ञों ने की थी उसे समझने के लिये उन्होंने बताया कि किसी सूक्ष्म छेद के भीतर से जब प्रकाश की किरणें अंधेरे कमरे में प्रवेश करती हैं तो उस प्रकाश रेखा में उड़ती हुई रज की सूक्ष्म कणिकाएं दिखाई देने लगती हैं। उस सूक्ष्म कणिका का साठवां भाग परमाणु है अर्थात यह पदार्थ का परमसूक्ष्म रूप है जो आंख से दिखाई नहीं देता। यह तौल कर नहीं अनुमान से निश्चय किया था, क्योंकि प्रथम तो वह रज की कणिका इतनी सूक्ष्म है जो अन्धेरे कमरे में आई प्रकाश रेखा में ही दिखाई देती है। उस रज का साठवां भाग तो दृश्य जगत के परे की चीज है ही। उसे भला कोई किस तरह तोल सकता है।

आयुर्वेदज्ञों ने सूक्ष्म मात्रा में विद्यमान पदार्थ को परमाणु कह कर उसे सूक्ष्मता की इकाई माना था। ऐसी अदृश्य या इससे भी सूक्ष्म वस्तुओं को तोलने के साधन ढूंढे जा जाकेंगे, यह किसी के स्वप्न में भी आने वाली बात नहीं थी। किन्तु वैज्ञानिक जगत् जब सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणु की आन्तरिक रचना तक पहुँच गया और इन सब के वास्तविक स्वरूप को भी जान लिया गया तो उस परमाणु की अन्तर रचना की सहायता से अदृश्य वस्तुओं को तोलने उनका ताप, चाप, मात्रा ज्ञात करने का विचार सामने आया।

यह तो पाठक पिछले अंक में पढ़ चुके होंगे कि वैज्ञानिकों ने मौलिक तत्वों के समस्थानिक (आइसोटोप्स) जब ढूँढ़ लिये तो उनको परमाणु भंजनी भट्टी में रख कर गमया रश्मि से पूरित किया गया और उन्हें मनुष्यों के देह में पहुंचा कर उनसे बने यौगिकों की जांच होने लगी तभी उन सक्रिय परमाणुओं की मात्रा को भी ठीक-ठीक मालूम करने का प्रयत्न होने लगा। परमाणु दृश्य जगत् की चीज तो है नहीं, वह तो त्रसरेणु से कई सौ गुणा छोटा है। ६० भाग तो हमारा अनुमान मात्र था, उस अदृश्य वस्तु को किस तरह तौली जाय? इसकी खोज की जाने लगी। खोजते-खोजते वैज्ञानिकों ने वैक्रान्त की बनी ऐसी सूक्ष्म तुला का निर्माण कर लिया जिसे हम अपनी आंखों द्वारा कठिनता से देख पाते हैं। वह तुला ऐसी हलकी है जो परमाणु के भार से विचलित हो जाती है जिसके द्वारा मात्रा का ज्ञान हम अपनी आंखों से नहीं कर सकते, प्रत्युत सूक्ष्म दर्शक से देखकर उसकी मात्रा को जाना गया है।

यह तुला अमेरिका की जियोग्राफिक सोसाइटी ने तैयार की है और सूक्ष्म परमाणविक ज्ञान रखनेवाले विशेषज्ञ ही इस तुला से काम ले सकते हैं। यह तुला ऐसे कांच के बक्स में बन्द की हुई है जिसके भीतर हवा का कण भी प्रवेश नहीं कर सकता। जब इस पर किसी तत्त्व की मात्रा को जांचना होता है तो बड़े चक्करदार मार्ग से उसे ले जाया जाता है जिसके साथ हवा के अणु प्रवेश नहीं कर सकते। जब वैक्रान्त तुला पर तत्त्व के परमाणु रख दिये जाते हैं तो उस तुला पर पड़े दबाव को सूक्ष्मदर्शक से देखकर उसकी मान-मात्रा को मालूम कर लेते हैं।

इस तुला द्वारा अणुओं के कम्पन से उत्पन्न चाप और उसके समय को इतना नहीं जाना सके है जो इससे पहले कभी नहीं जाना जा सका था। संसार किस द्रुत गति से आगे बढ़ रहा है इसकी कल्पना करना कठिन है।

079508

वृक्क बदल दिया गया

आज दो वर्ष की बात है, बोस्टन शहर के पीटरबेंड अस्पताल के डाक्टरों ने देखा कि एक रिचर्ड हैरिक नामक व्यक्ति का एक गुर्दा खराब होकर काम करने से रह गया था। वह धीरे-धीरे सख्त होता हुआ पत्थर हो गया था। उस आदमी का एक भाई रोनाल्ड जुड़वां था अर्थात् दो भाई परस्पर जुड़े हुए थे, जिन दोनों के दो-दो गुर्दे थे। डाक्टरों ने उससे कहा यदि तुम अपने भाई रोनाल्ड से कहो कि एक गुर्दा वह तुम्हें दे दे तो उसका गुर्दा निकालकर तुम्हारे लगाया जा सकता है। उसका भाई मान गया। २८ दिसम्बर १९५६ में उसका गुर्दा निकाल कर रिचर्ड हैरिक के खराब गुर्दे की जगह बदल दिया गया। यह शल्यक्रिया सफलता पूर्वक हो गई और उन जड़वां रोनाल्ड के तीन गुर्दों से दोनों भागों का काम ठीक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलता रहा। उन्हें उस गुर्दे की कमी से कोई त्रुटि उत्पन्न नहीं हुई। जिन ६ डाक्टरों ने मिलकर यह शल्य क्रिया की थी उनका कहना है कि इस बात का सही ज्ञान तो दो वर्ष बाद ही लगेगा कि बदला हुआ गुर्दा स्थायी रूप से प्रकृतिस्थ होकर काम कर रहा है या नहीं। सूचना आई है कि डाक्टरों ने परीक्षा करके मालूम कर लिया है कि बदला हुआ गुर्दा सही काम करता है और रिचर्डहैरिक का स्वास्थ्य बिलकुल ठीक हो गया है।

शल्य चिकित्सा इतनी समुन्नत होती जा रही है कि नेत्र की पुतली, वृक्क, वृषण-ग्रन्थियां, अस्थि, मांस और त्वचा तक काट कर अब आसानी से बदले जा रहे हैं। अमेरिका में तो नेत्र बैंक भी खुल गये हैं, जहां मृत होने वाले व्यक्ति अपने नेत्र मरने के समय दान कर देते हैं जिसे मृत होते समय डाक्टर निकाल कर रख लेते है और अन्धों के नेत्र निकाल कर उसके स्थान पर इन्हें चढ़ा देते हैं। अन्धों को दिखने लग जाता है। अब तो हृदय जैसे प्रधान अंगों को बदलने का भी प्रयत्न हो रहा है। त्वचा काट कर दूसरों को लगा देना तो सरल काम हो गया है।

एकात्मवादी जरा इस नई शल्य चिकित्सा पद्धति की विशेषता को देखें कि यह लोग किस तरह एक की आत्मा को काट कर दूसरे में जोड़ देते हैं। क्या यह प्रयोग एकात्मवाद सिद्धान्त के मूल पर कुल्हाड़ा नहीं रख रहे हैं?

झुन्झनूं जिला वैद्य सम्मेलन

झुन्झनूं जिला वैद्य सम्मेलन की कार्य समिति का तृतीयाधिवेशन बाबा जयरामदास जी की अध्यक्षता में बड़ागांव, शेखावाटी में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर आचार्य नित्यानन्दजी ने जिले की जड़ी बूंटियों के सर्वेक्षण पर प्रकाश डाला। विरंचीलाल जी आयुर्वेदाचार्य ने जिले के विकास खंडों की स्वास्थ्य समस्याओं के हल के लिये आयुर्वेद को अपनाने का परामर्श दिया। श्रीमती सरला बहिन ने स्त्रियों में आयुर्वेद को लोकप्रिय बनाने के उपाय बतलाये।

झुन्झनूं जिला वैद्य सम्मेलन के आगामी सप्तम वार्षिक अधिवेशन के लिये चूड़ी अजीतगढ़ का निमन्त्रण पत्र स्वीकार कर लिया गया। सभापतित्व के लिये पांच वैद्यों के नाम घोषित किये गये।

कैलाशचन्द्र
संयुक्त मंत्री
झुन्झनूं जिला वैद्य सम्मेलन

[शेष पृष्ठ १४६ का]

हमारा प्राचीन अजीर्णोद्भूत विष है जिससे ज्वर आदि अनेक उपद्रव उत्पन्न होते हैं। यह ज्वर और उपद्रव अवधि बन्धी नहीं होते। इसीलिये साधारण ज्वरों में इनकी गणना होती है। और जब एक कष्ट में दूसरा नया कष्ट उत्पन्न हो जाता है, साधारण ज्वर में विशेष अवधि बन्धी ज्वर उत्पन्न हो जाता है तो उसमें वही पहला कारण नहीं होता, प्रत्युत नये ज्वर में नया ही कारण उस कष्ट के मध्य उत्पन्न हो जाता है। इसे प्राक् कारण से उद्भूत नहीं मानना चाहिये, क्योंकि नये लक्षण का होना नये रूप में नये ही कारण से होता है।

जब अजीर्ण के कारण शरीर की व्यवस्था भंग हो जाती है, ज्वरादि लक्षण प्रकट होते हैं, ऐसे समय शरीर निर्बल हो जाता है। व्यवस्था भंग होने से उसकी प्रतिरोध शक्ति भी घट जाती है। तभी अवसर पाकर विशेष-विशेष ज्वरोत्पादक जीवाणु कीटाणुओं, के लिये शरीर में बढ़ने और नया रोग उत्पन्न करने का अच्छा अवसर मिल जाता है। तभी तो अवधि बन्धी या दूसरे तीव्र प्रकार के ज्वरों का रूप प्रकट होता है। हमारे यहां भी इस बात को माना है।

प्रतिश्यायो भवेत् कासः कासः संजायते क्षयः।

एक बीमारी होते ही तत्समीपी दूसरी और दूसरी के बाद तीसरी उत्पन्न हो सकती है। क्योंकि ऐसी अवस्था में शरीर की प्रतिरोधक शक्ति घट जाती है तभी दूसरी बीमारियों को पनपने का अवसर मिल जाता है।

प्रत्येक बीमारी का मूल कारण पचन-व्यवस्था का बिगड़ना है। इसी बात को हमारे आचार्यों ने देखकर सूत्र रूप में संकेत किया था—"उदरं व्याधि मन्दिरम्।" पेट ही सारी बीमारियों का घर है। अर्थात खान-पान व्यवस्था भंग करने पर जब पेट खराब हो जाता है अर्थात खाये हुए पदार्थ ठीक रूप में नहीं पचते तो उनके अंशांशों का शरीर में प्रवेश ही प्रत्येक साधारण बीमारी का कारण होता है। इसीलिये तो उदर बीमारी का घर ठहरा। इसे सदा साफ शुद्ध स्वच्छ रखना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्युत् की भट्ठियां और औषध निर्माण की मशीन !!

हम अभी तक धातु भस्में उपलों की अग्नि में तय्यार करते हैं। उपलों की आंच देने में यह त्रुटि सदा रहती रही है कभी आंच कम कभी अधिक लग जाती है, इसके नियन्त्रण के जो भौतिक साधन बताये हैं उन्हें अपनाने पर भी यह त्रुटि दूर नहीं होती, इसीलिये अन्य साधन ढूंढने पड़े। उनमें से विद्युत् की भट्ठियां सर्वोत्तम सिद्ध हुईं। विद्युत्भट्ठी में ताप नियन्त्रण की पूर्ण व्यवस्था होती है, जितनी भी मात्रा में आंच देना चाहें आप प्रसन्नता से दे सकते हैं। प्रत्येक धातु भस्में बनाने पर देखा गया है कि उन्हें एक जैसी आंच नहीं चाहिये। किस धातु भस्म को कितनी आंच देना है ? इसका सही-सही ज्ञान आप हमारे लिखे भस्म विज्ञान नामक ग्रन्थ में प्राप्त कर सकते हैं।

और वह भस्में विद्युत् भट्ठी पर ही एक मात्रा में आंच देकर बन सकती हैं इसका अनुभव लिया जा रहा है और उस पर एक भिन्न ग्रन्थ तैयार हो रहा है। हमने ऐसी विद्युत् भट्ठियां निर्माण की हैं जिन पर धातु भस्म और कूपी-पक्व रस दोनों ही बन सकते हैं। छोटे बड़े कई आकार की भट्ठियां तय्यार करके उन पर अनुभव ले रहे हैं जो वैद्य इन भट्ठियों का उपयोग करेंगे वह निश्चिन्त बैठे हुए भस्में व कूपी-पक्व रस निर्माण कर सकते हैं। जिन्हें भट्ठी लगाने की इच्छा हो वह पत्र-व्यवहार करें।

और आज-कल औषधियों की मांग इतनी बढ़ गई है कि हाथ से औषधियां कूट, पीस कर उतनी जल्दी रस, वटी तय्यार नहीं होतीं जितनी मशीनों से होती हैं। हाथ तो लगातार घंटा, आधा घंटा काम कर सकते हैं फिर थक जाते हैं पर मशीन तो लगातार ८-९ घंटा या जितनी देर चाहें उन्हें चलावें क्या वह थकने वाली हैं ? फिर खूबी सबसे बड़ी हमारी मशीनों में यह है कि जिस तरह आयुर्वेद के ग्रन्थों में औषधियों की कुटाई, पिसाई और घोटाई (भावना) का जो विधान दिया है जिससे औषधियों का सार भाग गरम न हो कर वह नष्ट नहीं होते, बिल्कुल उसी विधि के अनुसार हमारी मशीनों से कुटाई, पिसाई घुटाई होती है और औषधियां घुट कर इतने सूक्ष्म अणु-अंशों में आ जाती हैं कि जिनका प्रभाव शीघ्र होता है। प्रत्येक मशीन बिजली की शक्ति से चलने वाली है। मशीनें निम्न हैं :--

चट्टू मशीन, ढोल मशीन, खरल मशीन, गोली मशीन, टिकिया मशीन, पालिश मशीन, आसव छानने की मशीन फिल्टर आदि। अधिक मात्रा में औषध निर्माण-कर्ता यह मशीनें हमारे कारखाने में आकर देखें और सारी व्यवस्था समझ कर अपने यहां यह मशीनें लगाएं।

निवेदक---मैनेजर पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी,

६०-६१ अकाली मार्केट, अमृतसर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं० डी-७२०

078408

शिवा गुटिका

(दिव्य रसायन)

वैद्यों ने चक्रदत्त या योगरत्नाकर का रसायनाधिकार पढ़ा होगा या भारत भैषज्य रत्नाकर पढ़ा होगा इन ग्रन्थों में शिवा गुटिका एक शिलाजीत सूर्य तापी का योग आया है जिसे कुछ वनस्पतियों, जीवनीय गणों की औषधियों द्वारा ग्रीष्म काल के आतप में भावना देकर उसकी मलाई उतारने का विधान है फिर उसमें कुछ और औषधियां डाल कर गुटी बनाई जाती है। वहां लिखा है इसे एक वर्ष तक सेवन करना चाहिये उसके निम्न लाभ लिखे हैं :—

दारुण आमवात, आढ्यवात, यक्ष्मा, पांडु, संग्रहणी, गुल्म, कुष्ठ, जड़ता, शून्यता, नपुन्सकता, उम्माद, मृगी, कृशता, भगन्दर, नेत्ररोग, शिरोरोग, उदर रोग, कर्णरोग, कंठरोग, फुफुसरोग, हृदयरोग आदि विविध रोगों में लाभ करती है।

एक हमारे मित्र जिन्हें कर्णनाद और सिर में चक्कर आते थे, सिर हल्का उड़ता सा, मन अस्थिर रहता था बीमारी किसीकी समझ में नहीं आ रही थी एक वयोवृद्ध वैद्य के बताने पर उन्होंने उक्त योग की औषध लेकर विधि पूर्वक बनाया और उन्हों ने चार महीना सेवन किया ६० वर्ष की अवस्था में वे बिल्कुल ठीक हो गये। उन्होंने मुझे भी खाने का आग्रह किया, क्योंकि आज तीन वर्ष हुए मैं एक अंगरेजी दवाई (हार्मोन्स) की बनी दो गोलियाँ खा बैठा, उनका मेरे मस्तिष्क पर इतना बुरा प्रभाव पड़ा कि पढ़ने में मेरा दिमाग चट थक जाता। मैं १०-१० घंटे लगातार पढ़ने लिखने का काम करने वाला आदमी था, बड़ी परेशानी में पड़ा बड़े इलाज किये, पर कोई लाभ नहीं हो रहा था कई किताबें लिखते लिखते अधूरी रही हुई थीं, कैसे पूरी हों ? बड़ी चिन्ता थी। मैंने उनके कहने पर ३ महीना लगातार उक्त गुटिका खाई धीरे धीरे मेरी हालत ठीक होते होते बिल्कुल ठीक हो गई।

एक कनफटा योगी मेरे पास आया, उसे ५ वर्ष से मूत्र कृच्छ्र था उसने किसी साधु से ४ खुराक संखिया भस्म की खा ली थीं, बस तब से उसका मूत्र कम हो गया था और भूख बन्द हो गई थी बड़े इलाज किये थे पर लाभ नहीं हो रहा था, मैंने उस से कहा तुम भी दो चार महीना शिवा गुटिका खा लो, शायद इससे तुम्हें लाभ हो उसने चार महीने खाई और बिल्कुल ठीक हो गया।

ग्रन्थकारों ने इसे रसायन लिखा है, किसी रोग से, किसी विष प्रभाव से, जरावस्था से किसी भी तरह शरीर की जब कार्य व्यवस्था बिगड़ जाय, शरीर की कोषाएं निर्बल विकृत हो जायं तो ऐसी दशा में रसायन औषधियां उस के स्वास्थ्य को बिल्कुल ठीक कर देती हैं, रसायन इसी का अर्थ है। यह हमने अपने पर प्रयोग कर प्रत्यक्ष देखा और अपने मित्र पर देखा। रसायन औषध दो चार दिन खाने वाली नहीं होतीं। इन्हें तो दो चार महीने ही खाना चाहिये। शास्त्र में इसकी मात्रा बहेड़े के दाने के बराबर लिखी है, मगर हमने ४ रत्ती की गोलियां बनाई थीं और दो दो गोलियां दोनों समय खाते थे। ५ तोला गुटिका एक मास के लिये होती है। हमने विक्रयार्थ इसके ५ तोला के पैकट बनाये हैं जिसका मूल्य ५ रु० रखा है आशा है जीर्ण वृद्ध रोगी इसका उपयोग कर फलाफल से सूचना देंगे।

पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी
अकाली मार्केट, अमृतसर
ब्रांच—खारी बावली, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2008

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar